हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

[भाग २]

श्री नेमिचन्द्र शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

आदरणीय श्रीमान् पं० नाथूरामजी प्रेमी

के

करकमलो

मे

सादर

समर्पित

श्रद्धावनत

नेमिचन्द्र शास्त्री

दो शब्द

साहित्य ही मानवताका पोषक और उत्थापक है। जिस साहित्यमे यह गुण जितने अधिक परिमाणमे पाया जाता है, वह साहित्य उतना ही अधिक उपादेय होता है। जैन साहित्यमें आत्मशोधक तत्त्वोकी प्रचुरता है, यह वैयक्तिक और सामाजिक दोनो ही प्रकारके जीवनको उन्नत बनानेकी पूर्ण क्षमता रखता है। अतः जैन साहित्यको केवल साम्प्रदायिक कहना नितान्त भ्रम है। यदि किसी धर्मविशेषके अनुयायियो-द्वारा रचे गये साहित्यको साम्प्रदायिक माना जाय तो फिर शाकुन्तल, उत्तररामचरित, रामचरितमानस और पद्मावत जैसी सार्वजनीन कृतियॉ भी साम्प्रदायिक सीमासे मुक्त नहीं की जा सकेगी। अतः विश्वजनीन साहित्यका मापदण्ड यही है कि जो साहित्य समान रूपसे मानवको उद्बुद्ध कर सके, जिसमे मानवताको अनुप्राणित करनेकी पूर्ण क्षमता हो तथा जिसके द्वारा आनन्दानुभूति सम्भव हो सके। जैन साहित्यमें इन सार्वजनीन भावो और विचारोकी कमी नही है। सत्य अखण्ड है, यह किसी धर्मविशेषके अनुयायियोके द्वारा विभक्त नही किया जा सकता है। और यही कारण है कि हिन्दी साहित्यमे एक ही अखण्ड भावधारा प्रवाहित होती हुई दिखलायी पडती है। भेद केवल रूपमात्रका है। जिस प्रकार कूप, सरोवर, सरिता और समुद्रके जलमे जलरूपसे समानता है, अन्तर केवल आधार या उपाधिका है, उसी प्रकार साहित्यमे एक ही शाश्वत सत्य अनुस्यूत है, चाहे वह जैनो-द्वारा लिखा गया हो, चाहे बौद्धो-द्वारा अथवा वैदिको-द्वारा। किसी धर्मविशेषके अनुयायियो द्वारा रचित होनेसे साहित्यमे साम्प्रदायिकता नही आ सकती। साहित्यका प्राण सत्य सबके लिए एक है, वह अखण्ड है और शाश्वत।

सौन्दर्य भी सबके लिए समान ही होता है। एक सुन्दर वस्तुको देखकर सभी समान आह्लाद होता है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि सौन्दर्यानुभूतिके लिए सहृदय होनेकी आवश्यकता है। यद्यपि प्रकृतिभेदसे एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न प्रकारके गुण या दुर्गुण उत्पन्न करती है, फिर भी उसका सत्यरूप सबके लिए समान ही होता है। साहित्यमें भेद करनेके अर्थ हैं, मानवतामें भेद करना। अतएव हिन्दी जैन साहित्यका अध्ययन, अनुशीलन और विवेचन भी समग्र हिन्दी साहित्यके समान होना चाहिए। जब तक आलोचकोंकी दृष्टिसे यह वैषम्यका पर्दा ओझल नहीं होगा, तब तक साहित्यके क्षेत्रमें एक अखण्ड साम्राज्य स्थापित नहीं हो सकता।

प्रस्तुत हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलनमे मात्र साहित्यकी शृखलाको जोडनेका आयास किया है। यत. यह साहित्य अब तक आलोचको द्वारा उपेक्षित रहा है। अब समय ऐसा प्रस्तुत है कि साहित्यके क्षेत्रमे किसी भी प्रकारका भेद करना मानवतामे भेद करना कहा जायगा। इस रचना-द्वारा मनीषियोको हिन्दी जैन साहित्यके अध्ययनकी प्रेरणा मिलेगी तथा 'साहित्यकी शृखलाकी टूटी कडियोको जोडनेमे पूरी सहायता मिलेगी। महाकवि बनारसीदास, भैया भगवतीदास, कवि भूधरदास, कवि दौलतराम, कवि वृन्दावनदास हिन्दी साहित्यके लिए गौरवकी वस्तु है। इन कवियोने चिरन्तन सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जना की है।

इस द्वितीय भागमे आधुनिक काव्य एव प्राचीन और नूतन गद्य साहित्यपर परिशीलनात्मक प्रकाश डाला गया है। गद्यके क्षेत्रमे जैन साहित्यकार बहुत आगे बढे हुए है। श्री प० दौलतरामजी ने खडी बोली के गद्यके विकासमे बडा सहयोग दिया है। इनका गद्य बहुत विकसित है। चौदहवी और पन्द्रहवीं शताब्दीमे जैन विद्वानोने टीका और वचनिकाओ द्वारा गद्यको व्यवस्थित रूप दिया है। हॉ, यह बात अवश्य है कि हिन्दी जैन साहित्यके निर्माणका क्षेत्र जयपुरके आस-पासकी भूमि होनेके कारण भाषापर ढूढारीका प्रभाव है। आगरा और दिल्लीके निकट

लिखे गये गद्यमे व्रजभापाके साथ खडी बोलीका रूप भी झॉकता हुआ दिखलायी पडता है। यदि निष्पक्ष रूपसे हिन्दी गद्य साहित्यका इतिहास लिखा जाय तो जैन लेखकोकी उपेक्षा नही होनी चाहिए। अभी तक लिखे गये इतिहासो और आलोचना-ग्रन्थोमे जैन कवियो और वचनिका-कारोकी अत्यन्त उपेक्षा की गयी है।

वर्तमान हिन्दी जैन काव्यधारामे अवगाहन करते समय मुझे सभी आधुनिक जैन कवियोकी रचनाऍ नही मिल सकी है, अतः आधुनिक कृतियोपर यथेष्ट रूपसे प्रकाश नही डाला गया होगा तथा इसकी भी सभा-वना है कि अनेक महानुभावोकी रचनाऍ विचार करनेसे यो ही छूट गयी हो। भारतेन्दुकालीन कई ऐसे जैन कवि है, जिनकी रचनाऍ भाव और भापाकी दृष्टिसे उपादेय है। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओमे ये रचनाऍ प्रका-शित होती रही है। बहुत टटोलनेपर भी मुझे इस कालकी पर्याप्त सामग्री नही मिल सकी है।

प्राचीन गद्य साहित्यपर और अधिक विस्तारकी आवश्यकता है, पर साधनाभाव तथा इस विपयपर स्वतन्त्र एक रचना लिखनेका विचार होनेका कारण विस्तार नही दिया गया है। नवीन गद्य साहित्यमे निबन्ध-के क्षेत्रमे अनेक लेखक बन्धु हैं, जिन्होने इस क्षेत्रका विस्तार करनेमे अपना अमूल्य योग दिया है। परन्तु ये निबन्ध इधर-उधर बिखरे पड़े है, अतः उनका जिक्र करना छूट गया होगा। श्री महेन्द्र राजा, श्री प्रो० देवेन्द्रकुमार, प्रो० प्रेमसागर, श्री बाबूलाल जमादार, अध्यात्मरसिक ब्र० रत्नचन्द्रजी सहारनपुर, अनेक ग्रन्थोके लेखक वर्णी श्री मनोहरलालजी, प० सुमेरचन्द्र न्यायतीर्थ, श्री महेन्द्रकुमार साहित्यरत्न, प० हीरालाल कौशल शास्त्री प्रभृति अनेक बन्धुओके निबन्धोका परिचय देना छूट गया है। ये नवयुवक हिन्दी जैन साहित्यकी उन्नतिमे सतत सलग्न है। इनमेसे कई महानुभाव तो कहानीकार और कवि भी है।

यद्यपि मैंने अपनी तुच्छ शक्तिके अनुसार लेखकोकी रचनाओपर

निष्पक्ष भावसे ही विचार व्यक्त किये हैं, फिर भी सभव है कि मेरी अल्पज्ञताके कारण न्याय होनेमे कुछ कमी रह गयी हो।

उन सभी ग्रन्थकारोंके प्रति अपना आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनकी रचनाओसे मैंने सहायता ली है। विशेषतः श्री प० नाथूरामजी प्रेमीका, जिनकी रचना 'हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास'से मुझे प्रेरणा मिली तथा परिशिष्टमें कवि और साहित्यकारोका परिचय लिखनेके लिए सामग्री भी।

इस द्वितीय भागके कार्योंमे भी प्रथम भागके सभी सहायक-बन्धुओसे सहायता मिली है, अत. मै उन सबके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

जैन सिद्धान्त भवन
श्री महावीर जयन्ती
१९५६

—नेमिचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

[भाग २]

आठवाँ अध्याय

वर्तमान काव्यधारा और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ

हिन्दी जैन साहित्यकी पीयूषधारा कल-कल निनाद करती हुई अपनी शीतलतासे जन-मनके सतापको आज भी दूर कर रही है। इस बीसवी शताब्दीमे भी जैन साहित्यनिर्माता पुराने कथानकोको लेकर ही आधुनिक शैली और आधुनिक भाषामे ही सृजन कर रहे है। भक्ति, त्याग, वीरनीति, शृगार आदि विषयोपर अनेक लेखकोकी लेखनी अविराम रूपसे चल रही है। देश, काल और वातावरणका प्रभाव इस साहित्यपर भी पडा है। अतः पुरातन उपादानोमे थोडा परिवर्तन कर नवीन काव्य-भवनोका निर्माण किया जा रहा है।

महाकाव्योमे वर्द्धमान इस युगका श्रेष्ठकाव्य है। इसके रचयिता यशस्वी कवि अनूप शर्मा एम. ए. है। इस महाकाव्यकी शैली सस्कृत

वर्द्धमान

काव्योके अनुरूप है। सस्कृतनिष्ठ हिन्दीमे वशस्थ, द्रुतविलम्बित और मालिनी वृत्तोमे यह रचा गया है। उसमे नख-शिखवर्णन, प्रभात, सध्या, प्रदोप, रजनी, ऋतु, सूर्य, चन्द्र आदिका वर्णन प्राचीन काव्योके अनुसार है।

इस महाकाव्यका कथानक भगवान् महावीरका परम-पावन जीवन है। कविने स्वेच्छानुसार प्राचीन कथावस्तुमे हेरफेर भी किया है। दो-

कथावस्तु

चार स्थलोकी कथावस्तुमे जैनधर्मकी अनभिज्ञताके कारण वैदिक-धर्मको ला बैठाया है। भगवान्की बाल्क्रीडाके समय परीक्षार्थ आये हुए देवरूपी सर्पका दमन ठीक कृष्णके कालिय-दमन के समान कराया है। सर्पकी भयकरता तथा उसके कारण प्रकृति-विक्षुब्धता भी लगभग वैसी ही है। कवि कहता है।

प्रचण्ड दावानलकी शिखा यथा,
प्रलम्ब है धूम नगाधिराज-सा।
अरण्य कोई वन-बीच दु.सहा,
महान् आपत्ति उपस्थिता हुई॥

—पृ० २८१

इसी प्रकार भगवान महावीरकी केवलज्ञानोत्पत्तिके पश्चात् उनकी आत्माका कुबेर-द्वारा स्वर्गमे ले जाना, और वहाँसे आदि शक्तिको लेकर पुन. आत्माका लौट आना, और शरीरमे प्रवेश करना बिल्कुल विलक्षण कल्पना है। इसका जैन कथावस्तुसे बिल्कुल मेल नहीं बैठता है। क्योकि जैनधर्म तो प्रत्येक आत्माको स्वत. अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यका भाण्डार मानता है। जबतक आत्मापर कर्मोंका पर्दा पडा रहता है तबतक उसकी ये शक्तियाँ आच्छन्न रहती है। कर्म-कालिमाके हटते ही आत्मा शुद्ध निकल आती है। उसकी सारी शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं और वह स्वय भगवान् बन जाती है। कोई आत्मा तभीतक भिखारी है जबतक वह कषाय और वासनाके कारण स्वभावसे पराङ्मुख है। केवल-ज्ञान होनेपर आत्मा पूर्ण ज्ञानी हो जाती है। उसे कहींसे भी शक्ति लेनेकी आवश्यकता नहीं पडती।

विवाहके प्रसगको लेकर कविने श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्यताओ-का सुन्दर समन्वय किया है। श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार भगवान् महा-वीरने विवाह किया है और दिगम्बर मान्यता उन्हे अविवाहित रहना स्वीकार करती है। कविने बडी चतुराईके साथ स्वप्नमें भगवान्का विवाह कराकर उभय मान्यताओमे सामञ्जस्य किया है।

भगवान् महावीरने दीक्षा ग्रहण कर दिगम्बर रूपमे विचरण किया यह दिगम्बर मान्यता है और श्वेताम्बर मान्यतामे जिनदीक्षा लेनेके उपरान्त भगवान्का देव दूष्य धारण करना माना जाता है। कविने इन मान्य-ताओका भी सुन्दर सामजस्य करनेका प्रयत्न किया है। कवि कहता है—

अहो अलंकार विहाय रत्न के,
अनूप रत्नत्रय भूपितांग हो।
तने हुए अम्बर अंग-अंग से,
दिगम्बराकार विकार शून्य हो॥
समीप ही जो परदेव दूष्य है,
नितान्त श्वेताम्बर सा बना रहा।
अग्रंथ निर्द्वन्द महान संयमी,
बने हुए हो निजधर्म के ध्वजी॥

वस्तु-वर्णनमे महाकाव्यकी दृष्टिसे घटना-विधान, दृश्ययोजना और परिस्थिति-निर्माण—ये तीन तत्त्व आते है। वर्द्धमानकी कथावस्तुमे प्रायः दृश्य-योजना तत्त्वका अभाव है। घटनाविधान और परिस्थिति-निर्माण इन दोनो तत्त्वोकी बहुलता है। कविने इस प्रकारका कोई दृश्य आयोजित नहीं किया है जो मानवकी रागात्मिका हृत्तन्त्रीको सहज रूपमे झंकृत कर सके। घटनाओका क्रम मन्थर गतिसे बढता हुआ आगे चलता है जिससे पाठकके सामने घटनाका चित्र एक निश्चित क्रमके अनुसार ही प्रस्तुत होता है।

महाकाव्यकी आधिकारिक कथावस्तुके साथ प्रासगिक कथावस्तुका रहना भी महाकाव्यकी सफलताके लिए आवश्यक अग है। प्रासगिक कथाएँ मूलकथामे तीव्रता उत्पन्न करती है।

वर्द्धमान काव्यमे अवान्तर कथा रूपमे चन्दनाचरित, कामदेवसुरेन्द्र-सवाद तथा कामदेव-द्वारा वर्द्धमानकी परीक्षा ऐसी मर्मस्पर्शी अवान्तर कथाएं है, जिनसे जीवनके आनन्द और सौन्दर्यका आभास ही नहीं होता प्रत्युत सौन्दर्यका साक्षात्कार होने लगता है।

जगत् और जीवनके अनेक रूपो और व्यापारोपर विमुग्ध होकर कविने अपनी विभूतिको चमत्कारपूर्ण ढगसे आविर्भूत किया है। भावोको

प्रभावोत्पादक बनाने और उनकी प्रेषणीयताकी वृद्धिके लिए समास, सन्धि और विशेषण पदोका प्रयोग बहुलतासे किया है। रसविवर्द्धन, रस-

शैली और काव्य-चमत्कार

परिपाक और रसास्वादन करानेकी क्षमता इस काव्यकी शैलीगत विशेपता है। यद्यपि कविने सस्कृतके समासान्त पदोका प्रयोग खुलकर किया है, परन्तु उच्चारण सगति और ध्वनि अक्षुण्णरूपमे विद्यमान है। सस्कृतगर्भित पदोके रहनेपर भी कृत्रिमता नही आने पायी है। यद्यपि आद्योपान्त काव्यमे सस्कृतके क्लिष्ट शब्दोका प्रयोग किया गया है तो भी पदलालित्य रहनेसे काव्यका माधुर्य विद्यमान है।

क्रियापदोमे भी अधिकाश क्रियाएँ सस्कृतकी ज्योकी त्यो रख दी गई है। जिससे जहाँ-तहाँ विरूपता-सी प्रतीत होती है।

शैलीके उपादानोमे विभक्तियोका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। विभक्तियोका यथास्थान प्रयोग होनेसे चमत्कार उत्पन्न होता है। सस्कृतनिष्ठ शैलीमेसे जानेके कारण—"सदर्प कादम्बिनि गर्जने लगी" जैसे विभक्तिहीन पद इस काव्यमे अनेक आये है, जिससे कठोरता और क्लिष्टता है।

इस महाकाव्यमे कविने अपनी कवयित्री प्रतिभा द्वारा त्रिशलाके शारीरिक सौन्दर्य, हाव-भाव और वेश-भूषा आदिके चित्रणमे रमणीयताकी सृष्टि की है। पाठक सौन्दर्यकी भावनामे मग्न हो अपनी सत्ताको भूल रसमग्न हो जाता है पर त्रिशलाका यह शृगारिक वर्णन मनोविज्ञानकी दृष्टिसे अनुचित है। क्योकि भगवान् महावीरके पूर्व नन्द्यवर्धनका जन्म हो चुका था अत' द्वितीय सतानके अवसरपर महाराज सिद्धार्थ और त्रिशलाकी रगरेलियॉ पाठकके हृदयपर प्रभाव नही छोडती। इन पदोंमें कल्पनाकी उडान और भावसचारकी तीव्रता हमारे सम्मुख एक भव्यचित्र प्रस्तुत करती है। निम्न पक्तियॉ दर्शनीय है—

विरचिने अद्भुत युक्तिसे उसे,
सुधामयी शक्ति प्रदान की सुधा।

विलोचनोंमें विष दग्ध वाण की,
कटाक्ष में मृत्युमयी कृपाण की ॥
सरोज द्रोही रस शून्य देह है,
सुगन्धसे हीन शशाक ख्यात है।
न साम्य पाती त्रिशलामुखेन्दु का,
मलीमसा प्राकृत चन्द्रकी कला ॥

इस काव्यमें रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, व्याजोक्ति, श्लेष, अनुप्रास, भ्रातिमान आदि अलकारोकी अद्भुत छटा प्रदर्शित की है।

निम्न पद्य दर्शनीय है—

सरोज सा वक्त्र सुनेत्र मीन से,
सीवारन्से केस सुकंठ कम्बु-सा।
उरोज ज्यों कोक सुनाभि भौर सी,
तरंगिता थी त्रिशलान्तरंगिणी ॥

—स० १ प० ८१

वर्तमान काव्य सिद्धार्थसे अत्यधिक अनुप्राणित है। महाराज सिद्धार्थ तथा शुद्धोदनकी रूप गुणोंकी साम्यता बहुत अशोमें एक है। सिद्धार्थमें यशोधराके रूप, सौन्दर्य, उरोज, मुख आदिका जैसा वर्णन किया है वैसा ही वर्द्धमानमें त्रिशलाके मुख, नेत्र, उरोज आदिका भी। गौतम बुद्धकी कामघोषणाकी प्रतिच्छाया महाराज सिद्धार्थकी कामघोषणा है। उदाहरणार्थ देखिये—

अन्य काव्यों का प्रतिविम्ब

सुकामिनी जो अब मानिनी रही,
मनोजकी है अपराधिनी वही।
चतुर्दिशा दामिनि व्याज व्योममें,
समा गयी कामनृपाल-घोषणा ॥

—वर्द्ध० स० २ प० १७

न मानिनी जो अब मान त्यागती,
मनोज की है अपराधिनी वही।
पयोदमाला मिस विज्जुके यही,
प्रसारती काम-नृपाल घोषणा ॥

—सि० पृ० १०८

संस्कृत काव्योंमें भट्टि, कुमारसम्भव और रघुवंशसे अनेक स्थलोंमें भावसाम्य है। वर्द्धमानका १० वॉ सर्ग उमरखय्यामसे अनेक अंशोंमें साम्य रखता है।

यह महाकाव्य भाव, भाषा, काव्य-चमत्कार आदि सभी दृष्टियोंसे प्राय. सफल है।

खण्डकाव्य

वर्तमान युगमें जैन कवियोंने खण्डकाव्यों-द्वारा जगत् और जीवनके विभिन्न आदर्श और यथार्थका समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। "खण्ड-काव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च" अर्थात् खण्डकाव्यमें जीवनके किसी पहलूकी झॉकी रहती है। अतः जैनकवियोंने पुरातन मर्मस्पर्शी कथानकोंका चयन कर रचना-कौशल, प्रबन्धपटुता और सहृदयता आदि गुणोंका समवाय किया है। जिससे ये काव्य पाठकोंकी सुपुप्त भावनाओंको सजग करनेका कार्य सहजमें सम्पन्न करते हैं। जीवनके किसी पक्षको अधिक महत्त्व देना और पाठककी उसके प्रति प्रेरणा उत्पन्न करना, जिससे पाठक उस भावसे अभिभूत होकर कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए प्रवृत हो जाय।

राजुल, विराग, वीरताकी कसौटी, बाहुबली, प्रतिफलन एवं अंजना-पवनंजय काव्य इस युगके प्रमुख खण्डकाव्य है। काव्यसिद्धान्तोंके आधारपर इन खण्डकाव्योंमेंसे कुछका विवेचन किया जायगा।

इस खण्डकाव्यके रचयिता नवयुवक कवि बालचन्द्र जैन एम० ए० हैं। कविने पुरातन आख्यानको लेकर जैन संस्कृतिको मानवमात्रके लिए जीवनादर्श बनानेका आयास किया है। भगवान् नेमिनाथकी आदर्श पत्नी—विवाह नहीं हुआ, पर नेमिनाथके साथ होनेवाला था, अतः संकल्पमात्रसे ही जिसने नेमिकुमारको आत्मसमर्पण कर दिया था साथ ही संसारसे विरक्त होकर जिसने आत्म साधना की उस राजुलदेवीके जीवनकी एक झाँकी इस काव्यमें दिखलायी गई है। यह काव्य दर्शन, स्मरण, विराग, विरह और उत्सर्ग इन पाँच सर्गोंमें विभक्त है।

राजुल[1]

काव्यके प्रथम सर्ग 'दर्शन'का प्रणयन कल्पनासे हुआ है, जिसने कथाको मर्मस्थलकी तीव्रता प्रदान की है। कविने जूनागढ़के राजा उग्रसेनकी कन्या राजुल और यादव-कुल-तिलक द्वारिकाधिपति समुद्रविजयके पुत्र नेमिकुमारका साक्षात्कार द्वारिकाकी वाटिकामें मदोन्मत्त जनमर्दन हाथीसे नेमि-द्वारा वसन्त विहारके लिए आयी हुई राजुलकी रक्षा करानेपर किया है। साक्षात्कारकी यह प्रथम घटना ही प्रणय-कलिकाके रूपमें परिणत हो गई है और दोनोंकी आँखें परस्पर एक दूसरेको ढूँढ रही थीं। राजुलको वसन्त-विहारकर जूनागढ लौट जानेपर प्रेमकी अन्तर्वेदना स्मृतिके रूपमें फलीभूत होकर पीड़ा दे रही थी। इधर द्वारिकामें नेमिकुमारके कोमल हृदयमें राजुलकी मधुर स्मृति टीस उत्पन्न कर रही थी। दोनों ओर पूर्वराग इतना तीव्र हो उठा कि दोनों मिलनेके लिए अधीर थे। आगे चलकर यही पूर्वराग अरुण आभा होकर ही विवाहके रूपमें उदित होना चाहता था, किन्तु नियतिका विधान इससे विपरीत था। द्वारिकासे बारात सजधजकर चली, मार्गमें मधुर मिलनकी कल्पना नेमिकुमारको आत्मविभोर कर रही है। अकस्मात् एक घटना घटित होती है, उन्हें मूक पशुओंका चीत्कार सुनायी पड़ता है

कथावस्तु

1. सन् १९५४, प्रकाशक—साहित्य साधना समिति, काशी।

जिससे उनका ध्यान राजुलसे हटकर उस ओर आकृष्ट हो जाता है। मालीसे नेमिकुमार पशुओकी करुणगाथा जानकर द्रवित हो जाते है। वासनाका भूत भाग जाता है और वे पशुशालामे जाकर विवाहमे अभ्यागतोके भक्षणार्थ आये हुए पशुओको बन्धन मुक्तकर स्वय बन्धन मुक्त होनेके लिए आत्मसाधनाके निमित्त गिरनार पर्वतकी ओर प्रस्थान कर देते है।

इधर नेमिकुमारके विरक्त होकर चले जानेसे राजुलकी वेदना बढ जाती है। वह सुकुमार कलिका इस भयकर थपेडेको सहन करनेमे असमर्थ हो मूर्छित हो जाती है। नाना तरहसे उपचार करनेपर कुछ समय पश्चात् उसे होश आता है। माता-पिता ऑखकी पुतलीकी चेतना लौटी हुई देखकर प्रसन्न हो समझाते हैं कि बेटी, अन्य देशके सुन्दर, स्वस्थ और सम्पन्न राजकुमारसे तुम्हारा विवाह कर देंगे, नेमिकुमार तपाराधनाके लिए जगलमे गये तो जाने दो। अभी कुछ नही बिगडा है, तुम अपना प्रणय बन्धन अन्यत्र कर जीवन सार्थक करो। राजुलने रोकर उत्तर दिया—

"सम्भव अब यह तात कहाँ" राजुल रो बोली ;
बने नेमि जब मेरे औ' मै उनकी हो ली।
भूलूँ कैसे उन्हे, प्राण अपने भी भूलूँ,
खोजूँगी मैं उन्हे वनो गिरिमे भी डोलूँ॥
किया समर्पित हृदय आज तन भी मै सौपू,
जीवनका सर्वस्व और धन उनको सौपूँ॥
रहे कही भी किन्तु सदा वे मेरे स्वामी ;
मैं उनका अनुकरण करूँ बन पथ-अनुगामी॥

इस प्रकार राजुल भारतीय शीलके पुरातन आदर्शको अपनानेके निमित्त गिरनार पर्वतपर नेमिकुमारके पास जा आर्यिकाके व्रत ग्रहणकर तपश्चर्यामे लीन हो आत्म साधना करती है।

राजुलकाव्यकी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ वाटिकामे नेमिकुमार और राजुल-का साक्षात्कार तथा जगमर्दन हाथीसे नेमिकुमार-द्वारा राजुलकी रक्षा

समीक्षा

एव राजुलका विरह और उसका उत्सर्ग कविने प्रथम साक्षात्कारके अनन्तर बडे कौशलके साथ राजुलके आराध्यको बिलगकर प्रेमकी भावनाको घनीभूत किया है। एक बार प्रेमिका और प्रेमी पुनः स्थायी प्रेमके बन्धनमे बँधनेके निकट पहुँचते है और यही प्रत्याशा राजुलको एक क्षणके लिए प्रकाश प्रदान करती है। परि-स्थितिकी विषमताके कारण उसका आराध्य उसे छोड चल देता है, तो वह उत्पन्न हुए तीव्र भावोका अप्राकृतिक सकोच एव दमन न कर मुग्धा बन जाती है और "हाय" कहकर धडामसे पृथ्वीपर गिर पडती है।

विरहिणी राजुलकी इस अवस्थाको देखकर माता-पिता एव दासियाँ कातर हो जाती है और युक्तियो-द्वारा निष्ठुर प्रेमीसे विमुख करनेका प्रयत्न करती है, पर राजुलको अपने पवित्र दृढ सकल्पसे हटानेमे सर्वथा असमर्थ रहती हैं। कविने सखियोको राजुलके मुखसे क्या ही सुन्दर उत्तर दिलाया है—

"वे मेरे फिर मिलें मुझे, खोजूँगी कण-कण मे"

वियोगिनी राजुल अर्ध-विस्मृत अवस्थामे प्रलाप करती है। राजुलकी मनोदशा उत्तरोत्तर जटिल होती जाती है, वह आदर्श और कामनाके झूलेमे झूलती हुई दिखलाई पडती है—कभी-कभी वह आत्म-विस्मृत हो जाती है—इस समय उसके हृदयमे आदर्शजन्य गौरव और प्रेमजन्य उत्कठाका द्वन्द ही शेष रहता है तथा ग्लानि और असमर्थताके कारण वह कह उठती है—

अब न रही हैं सुखद वृत्तियाँ, शेष बची है मधुर स्मृतियाँ।
उन्हे छिपा हृत्तलमे अपना जीवन जीना होगा॥

आगे चलकर राजुलका विरह वेदनाके रूपमे परिणत हो जाता है; जिससे उसमे आदर्श गौरवको छोड स्वार्थकी गन्ध भी नही रहती। वह अपनेमे साहस बटोरकर स्वार्थ और कमजोरीपर विजय प्राप्त करती हुई कहती है—

तुमने कब तुझको पहिचाना।
देखा मुझको बाहिरसे ही मेरे अन्तरको कब जाना।
× × ×
नारी ऐसी क्या हीन हुई!
तन की कोमलता ही लेकर नरके सम्मुख क्या दीन हुई।

आगे चलकर राजुलका वह कार्य आत्मसाधनाके रूपमे परिवर्तित हो गया है। जीवनकी विभूति त्याग काव्यकी नायिका राजुल और नायक नेमिकुमारके चरितमे सम्यक् रूपेण विद्यमान है। जैन संस्कृतिके मूल आदर्श दु.खोपर विजय प्राप्तकर आत्माकी छुपी हुई शक्तियोको विकसित कर वरमाला बन जाना का इसमे निर्वाह किया गया है। भौतिक वातावरणको त्याग और आध्यात्मिकताके रूपमे परिवर्तित तथा वासनामय जीवनको विवेक और चरित्रके रूपमे परिवर्तित दिखलाया गया है।

भाव और भाषाकी दृष्टिसे यह काव्य साधारण प्रतीत होता है। लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ताका भाषामे पूर्णतया अभाव है। हॉ, भावोकी खोज अवश्य गहरी है। एकाध स्थानपर अनुप्रासकी छटा रहनेसे भाषामे माधुर्य आ गया है—

कल-कल छल-छल सरिताके स्वर, संकेत शब्द थे बोल रहे।
× × ×
ऑखोमे पहले तो छाये, धीरेसे उरमे लीन हुए।

प्रथम रचना होनेके कारण सभी सम्भाव्य त्रुटियॉ इसमे विद्यमान है। फिर भी इसमे उदात्त भावनाओकी कमी नही है। भाव, भाषा आदि दृष्टियोसे यह अच्छी रचना है।

विराग

यह एक भावात्मक [1]खडकाव्य है। पुरातन महापुरुषोका जीवन प्रतीक वर्त्तमान जीवनको अपने आलोकसे आलोकित कर सत्पथका अनुगामी बनाता है। कवि धन्यकुमार जैन "सुधेश" ने इसी सन्देशकी अभिव्यजना की है।

विराग जीवनकी आदर्श गाथाकी चार पक्तियोपर अपनी प्रतिभा और सात्त्विक कल्पनाका रङ्ग चढाकर ऐसा महत्त्व प्रदान करता है जो समस्त जीवनके चरित्रपर अपनी अमर आभा विकीर्ण करनेमे समर्थ है। इस काव्यमे भगवान् महावीरकी वे अटल विराग भावनाएँ प्रकट की गई है, जिनमे विश्वकी करुणा, सहानुभूति, प्रेम और निस्वार्थ त्यागका अमर सन्देश गूँजता है। वस्तुतः इस काव्यमे काव्यानन्दके साथ आत्मानन्दका भी मिश्रण हुआ है। लोकानुरागकी भावनाको क्रियात्मक मूर्तिमान रूप दिया गया है। धीरोदत्त नायकका सफल चित्रण इस काव्यमे हुआ है।

कथानक

कथावस्तु सक्षित है, यह पॉच सर्गोमे विभक्त है। प्रातःकाल रवि-किरणे कुडलपुरके प्रासाद-शिखरोपर अठखेलियॉ करती हुई कुमार महावीरके शयनकक्षपर पहुँची। रश्मियोका मधुर स्पर्श होते ही कुमारकी निद्रा भग हुई। उनके हृदयमे ससारके प्रति विराग और प्रिय माता-पिताकी इच्छाओके प्रति अनुरागका द्वन्द्व होने लगा। यह मानसिक सघर्ष चल ही रहा था कि कुमारके पिता आ पहुँचे। पिताका उद्देश्य कुमार महावीरको विवाहित जीवन व्यतीत करनेके लिए राजी कर लेना था। अत. उन्होने पहले कुमारका मादक यौवन, फिर कोमलागी राजकुमारियोका आकर्षण, राज्यलक्ष्मी और अपनी तथा कुमारकी माताकी लौकिक सुखकी कामनाएँ उनके समक्ष प्रकट की। अटलप्रतिज्ञ महावीरका मन जब इस प्रलोभनो-

---

1. प्रकाशक:—भारतवर्षीय दि० जैन संघ, मथुरा।

की ओर आकृष्ट नहीं हुआ तो पिताने भावावेशमे आकर अपने पदका उल्लघन करते हुए अनेक सरस और आदर्शकी बाते कही। जब पिता अपने वात्सल्य और स्वत्वसे पुत्रको विवाह करनेके लिए तैयार न कर सके तो वह भिक्षुक बन याचना करने लगे। विराग विजयी हुआ और पिताको निराश हो अपने भवनमे लौट जाना पडा। त्रिशलासे सिद्धार्थने सारी बाते कह दी।

त्रिशला अनन्त विश्वास समेटे पुत्रके पास आयी। आते ही पुत्रके समक्ष विश्वकी विषमताका दृश्य उपस्थित किया और मातृ-हृदयकी उत्कट अभिलाषा, आशा और अरमानोको निकालकर रख दिया। माताने अन्तिम अस्त्र अश्रुपतनका भी प्रयोग किया। रानीको अपने ऑसुओपर असीम गर्व था। पर कुमार महावीर हिमालयकी अडिग चट्टानकी भॉति अचल रहे। मॉ! इच्छासागरका जल अथाह है, इसकी धारा रुक नही सकती। अनन्त इच्छाओकी तृप्ति कभी नहीं हुई है, यही महावीरका सीधा-सा उत्तर था। नारीके समान विश्वके ये मूक प्राणी जिनके गलेपर दुधारा चल रही है, मेरे लिए प्रेमभाजन है। मॉको कुमारके उत्तरने मौन कर दिया। पुत्रके तर्क और प्रमाणोके समक्ष मॉको चुप हो जाना पडा।

एक दिन योगीके समान कुमार महावीर जग-चिन्तनमे ध्यानस्थ थे, उसी समय पिताकी पुकार हुई। पिताने पुत्रके सम्मुख अपनी वृद्धावस्थाकी असमर्थता प्रकट करते हुए राज्यके गुरुतर भारको सम्भालनेकी आज्ञा दी। पिताके इस अनुरोधमे करुणा भी मिश्रित थी, किन्तु महावीरका विराग ज्योका त्यो रहा। उनकी ऑखोके समक्ष विश्वके रुदन और क्रन्दन मूर्तिमान होकर प्रस्तुत थे, अत. राज्यका वैभव उन्हे अपनी ओर आकृष्ट न कर सका।

करुणासागर कुमारने पशुओका मूक क्रन्दन सुना, उन्हे दग्ध रुधिरकी धाराओंका दुर्गन्ध मिला, वलिके दृश्य नाचने लगे और राज्यभवन

काटने लगा। धीरे-धीरे महलसे उतरे और राज्य-वैभवको ठुकराकर चल पडे उस पथकी ओर जहॉ विश्वकी करुणा सञ्चित थी, जहॉ पहुँचकर मानव भगवान् बनता है। जिसके प्राप्त किये बिना मानवता उपलब्ध नही होती। समस्त वस्त्राभूषणोको लक्ष्य-प्राप्तिमे बाधक समझ दिगम्बर हो गये। आत्मशोधनके लिए प्रयत्न करने लगे। पश्चात् जननायक बन भगवान् महावीरने सामाजिक जीवनका प्रवाह एक नयी दिशाकी ओर मोडा।

समीक्षा

साधारणतः यह अच्छा खण्डकाव्य है। कविने मातृवात्सल्यका स्वाभाविक निरूपण किया है। यद्यपि इस दृष्टिका यह प्रथम प्रयास है, अतः सम्भाव्य त्रुटियोका रहना स्वाभाविक है, फिर-भी सवादोमे कविको सफलता मिली है। कुछ स्थलो पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि मातृहृदयको कविने निकालकर ही रख दिया है। माता अपनी ममताका विश्वासकर धडकते हुए हृदय और अश्रुपूरित नेत्रोसे पुत्र कुमारके पास जाते ही पूछती है—"तुम बहते, इस समय कौनसे रसमे"। मॉका हृदय पुत्रपर विश्वास ही नही रखता है, परन्तु अज्ञात भविष्यकी आशंकाकर मॉ सिहर उठती है और पुत्रसे पूछ बैठती है—

इन पशुओ को तो जलना, पर तुम भी व्यर्थ जलोगे।
है मरण भाग्यमे जिसके, क्या उसके लिए करोगे॥

× × × ×

फिर क्यो तुम इनकी चिन्ता, करते हो मेरे हीरे।
इस भॉति विरागी बनकर, मम हृदय डालते चीरे॥

जब कुमारको इतनेपर भी पिघलता हुआ नही देखती है तो मॉके हृदयकी विकलता और पिपासा और वृद्धिगत हो जाती है अतः उसके मुखसे निकल पडता है—

मत दु:खी करो तुम मुझको, दे उत्तर ऐसा कोरा ।
मानो न मोह को मेरे, तुम अति ही कच्चा डोरा ॥

वाणीमे ओज, नयनोमे करुणाकी निर्झरिणी तथा प्राणोमे क्रन्दन भरे हुए पशुओकी हूकसे व्यथित महावीरके मुखसे निकली उक्तियॉ श्रोता एव पाठकोके हृदय-तारोको हिला देनेमे समर्थ है। अपने तर्कसम्मत विचारोको सत्यका चोगा पहनाकर करुणार्द्र महावीर कह उठते है—

ये एक ओर हैं इतने, औ अन्य ओर है नारी ॥
अब तुम्ही बताओ इनमे, से कौन प्रेम अधिकारी ॥
आकृतियॉ इनकी सकरुण, दिखती हैं सोते जगते ।
तब ही तो रमणी से भी रमणीय मुझे ये लगते ॥

कविने इसमे नारी-आदर्शको अक्षुण्ण रखनेका पूरा प्रयास किया है। नारी वही तक त्याज्य है, जहॉतक वह असत् और असयमित जीवन व्यतीत करनेके लिए प्रेरित करती है। जब नारी सहयोगी बन जीवनको गतिशील बनानेमे सहायक होती, तब नारी वासनामयी रमणी नहीं रहती, किन्तु सच्चा साथी बन जाती है। जीवन-साधनामे शिथिलता उत्पन्न करनेवाली नारी आदर्श नारी नही है। अत. सीता, राजुल और राधाका आदर्श रखता हुआ कवि नारीके आदर्श रूपकी प्रतिष्ठा करता हुआ कहता है—

फिर नर के लिए कभी भी, नारी न बनी है बाधा ।
बतलाती है यह हमको, सीता औ राजुल राधा ॥
दु:ख मे भी करती सेवा, संकट में साहस भरती ।
पति के हित मे है जीती, पति के हित में है मरती ॥

'विराग' का कवि नारीके सम्बन्धमे चिन्तित है। वह आज नारी परतन्त्रताको श्रेयस्कर नहीं मानता है। अतः चिन्ता व्यक्त करता हुआ कहता है—

बनती कठपुतली पतिकी, जिस दिन कर होते पीले।
पति इच्छा पर ही निर्भर, हो जाते स्वप्न रंगीले॥
केवल विलास सामग्री, ही मानी जाती ललना।
गृहिणी को घर मे लाकर, वे समझा करते चेरी॥
× × ×
कब नारी अपने खोये, स्वत्वोको प्राप्त करेगी।
कब वह निज जीवन पुस्तक, का नव अध्याय रचेगी॥

कुमार महावीर राजसिहासनकी सत्तासे उत्पन्न दोषोके प्रति विद्रोहात्मक चिन्तन करते है। इस चिन्तनमे कवि आजकी राजनीतिसे पूर्ण प्रभावित है। अतः युगका चित्र खीचता हुआ कवि कहता है—

पूँजीपति इनके आश्रित, रह सुखकी निद्रा सोते।
पर श्रमिक कृषक गण जीवन भर दुखकी गठरी ढोते॥
× × ×

समानता, करुणा, स्नेह और सहानुभूतिके अमर छीटोसे यह काव्य ओत-प्रोत है। पापके प्रति घृणा और पापीके प्रति करुणा तथा उसके उद्धारकी सद्‌भावना इसमे पूर्णरूपसे विद्यमान है। कवि कहता है—

दुष्पाप अवश्य घृणित है, पर घृणित नही है पापी।
यदि सद्‌व्यवहार करो वह, बन सकता पुण्यप्रतापी॥

विरागकी शैली रोचक, तर्कयुक्त और ओजपूर्ण है। भाव छन्दोमे बॉधे नही गये है, अपितु भावोके प्रवाहमे छन्द बनते गये है। अतः कवितामे गत्यवरोध नही है। हॉ एकाध स्थलपर छन्दोभग है, पर प्रवाहमे वह खटकता नही है। भाषा सरल, सुबोध और भावानुकूल है।

स्फुट कविताएँ

विचार-जगत्‌मे होनेवाले आवर्तन और विवर्तन, प्रवर्तन और परिवर्तन के आधारपर इस बीसवी शतीकी स्फुट जैन कविताओका सम्यक् वर्गीकरण

करना असम्भव-सा है। इस युगकी स्फुट कविताओको प्रधान रूपसे पुरातन प्रवृत्ति और नूतन प्रवृत्ति इन भागोमे विभक्त किया जा सकता है।

पुरातन

पुरातन-प्रवृत्तिके अन्तर्गत वे रचनाएँ आती है, जिनमे लोक हृदयका विश्लेषण तो है, पर कलारानीका रूप सँवारा नही गया है। उसके अधरो मे मुस्कान और ऑखोमे औदार्यकी ज्योतिकी क्षीण रेखा विद्यमान है। दार्शनिक पृष्ठभूमिकी विशेषताके कारण आचारात्मक नियमोका विधि निषेधात्मक निरूपण ही किया गया है। भाव, भाषा सभी प्राचीन है, शैली भी पुरातन है। इस प्रकारकी कविता रचनेवालोमे इस युगके आद्य कवि आरा निवासी बाबू जगमोहनदास है। आपका 'धर्मरत्नोद्योत' नामक ग्रन्थ प्रकाशित है। इसकी कविता साधारण है, पर भाव उच्च है।

श्री बाबू जैनेन्द्रकिशोर आराने भजन-नवरत्न, श्रावकाचार दोहा, वचन-बत्तीसी आदि कविताएँ लिखी है। आप समस्यापूर्ति भी करते थे, आपकी इस प्रकारकी कविताओपर रीति-युगकी स्पष्ट छाप है। नख शिख वर्णनके कुछ पद्य भी आपके उपलब्ध है, ये पद्य सरस और श्रुतिमधुर है।

कविवर उदयलाल, ब्र० शीतलप्रसाद, हसवा निवासी लक्ष्मीनारायण तथा लक्ष्मीप्रसाद वैद्यकी आचारात्मक कविताएँ भी अच्छी है। इन कविताओमे रस, अलकार और काव्यचमत्कारकी कमी रहनेपर भी अनुभूतिकी पर्याप्त मात्रा विद्यमान है।

श्री मास्टर नन्हूराम और झालरापाटन-निवासी श्री लक्ष्मीबाईकी कविताओमे माधुर्य गुण अधिक है। आचारात्मक और नैतिक कर्त्तव्यका विश्लेषण इन कविताओमे सुन्दर ढगसे किया गया है। सप्तव्यसनकी बुराइयोका प्रदर्शन कविता और सवैयोमे सुन्दर हुआ है। दर्शन और आचारकी गूढ बातोको कवियोने सरस रूपसे व्यक्त किया है।

प्रद्युम्नकुमार, वीर यशोधर कुमार, कर्मवीर जम्बूकुमार एव धर्मवीर अकलकदेवका बालचरित्र अकित किया गया है।

वर्णनात्मक कविताओमे जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'की 'अज सम्बोधन', नाथूराम 'प्रेमी' की 'पिताकी परलोकयात्रापर', भगवन्त गणपति गोयलीय की 'सिद्धवरकूट', गुणभद्र 'आगास' की 'भिखारीका 'स्वप्न', सूर्यभानु 'डॉगी' की 'ससार', शोभाचन्द्र 'भारिल्ल' की 'अन्यत्व, अयोध्याप्रसाद गोयलीयकी 'जवानोका जोश', बा० कामताप्रसादकी 'जीवन-झॉकी', लक्ष्मीचन्द्र एम० ए० की "मै पतझरकी सूखी डाली", शान्तिस्वरूप 'कुसुम'की 'कलिकाके प्रति', लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशान्त'की 'फूल', खूबचन्द 'पुष्कल'की 'भग्नमन्दिर', पन्नालाल 'वसन्त'की 'त्रिपुरी की झॉकी', वीरेन्द्रकुमार एम० ए० की 'वीर वन्दना', घासीराम 'चन्द्र' की 'फूलसे', राजकुमार साहित्याचार्यकी 'आह्वान', ताराचन्द 'मकरन्द' की 'ओस', चन्द्रप्रभा देवीकी 'रणभेरी', कमला देवीकी 'रोरी', कमलादेवी राष्ट्रभाषाकोविदकी 'हम है हरी-भरी फुलवारी' शीर्षक कविताका समावेश होता है। इनमे अधिकाश कविताएँ ऐसी है, जिनमें वर्णनके साथ भावात्मकता भी पूर्णरूपसे विद्यमान है।

भावात्मक मुक्तक रचनाएँ वे ही मानी जा सकती है, जिनमे अनुभूति अत्यन्त मार्मिक हो। कवि सासारिकतासे उठकर भाव-गगनमे विचरण करता दृष्टिगोचर हो। अन्तर्वृत्तियोका उन्मीलन हो, पर बाह्य-जगत्के सुधार-परिष्कारोकी चर्चा न की गयी हो।

वैराग्य, भक्ति, प्रणय और सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जना ही जिसका चरम लक्ष्य रहे और जिसकी आरम्भिक पक्तिके श्रवणसे ही पाठकके हृदयमे सिहरन, प्रकम्पन और आलोडन-विलोडन होने लगे, वह श्रेष्ठ भावात्मक मुक्तक रचना कही जा सकती है। अतएव भाव-विह्वलता, विदग्धता और सकेतात्मकताका इस प्रकारकी कवितामे रहना परम आवश्यक है। आधुनिक जैन कवियोमे श्रेष्ठ भावात्मक काव्य लिखनेवाले प्रायः नहीं

नवाँ अध्याय

हिन्दी जैन गद्य साहित्यका क्रमिक विकास और विभिन्न प्रवृत्तियाँ

हिन्दी जैन गद्य साहित्य : पुरातन

(१४वीं शती से १९वीं शती तक)

जिसमें वाक्योंकी नाप तौल, शब्द और वाक्योंका क्रम निश्चित न हो, तथा जो प्रतिदिनकी बोलचालकी भाषामें लिखा जाय, उसे गद्य कहते हैं। प्रतिदिनके व्यवहारमें प्रयुक्त होनेके कारण पद्यकी अपेक्षा गद्य अधिक प्रचलित है। परन्तु हिन्दीके समस्त साहित्यमें पद्यात्मक साहित्यका प्रचार सुदूर प्राचीनकालसे चला आ रहा है। मानव स्वभावतः संगीतप्रिय होता है, अतएव उसने अपने भाव और विचारोंकी अभिव्यक्ति भी संगीतात्मक पद्योंमें की। यही कारण है कि गद्यात्मक साहित्यकी अपेक्षा पद्यात्मक साहित्य प्राचीन है। जैन लेखकोंने पद्यात्मक साहित्यका सृजन किया, पर गद्यात्मक साहित्य भी विपुल परिमाणमें लिखा। [illegible] [illegible] [illegible]

अनन्तानन्त स्वरूप जीवद्रव्व अनन्तानन्त स्वरूप अवस्था लिये वर्तहि। काहु जीवद्रव्यके परिनाम काहु जीवद्रव्य और स्यो मिलइ नाही। याही भाँति एक पुद्गल परमानू एक समय माहि जा भाँतिकी अवस्था धरे, सो अवस्था अन्य पुद्गल परमानू द्रव्यसौ मिलै नाहीं। तातैं पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी अन्य अन्यता जाननी।"

परमार्थवचनिकाकी भाषाकी अपेक्षा इनकी 'उपादान निमित्तकी चिट्ठी' की भाषा अधिक परिष्कृत है। यद्यपि ढूँढारी भाषाका प्रभाव इनकी भाषा पर स्पष्ट लक्षित है, तो भी इस चिट्ठीकी भाषामे भाव प्रवणता पर्याप्त है। वाक्योके चयनमे भी लेखकने बडी चतुराईका प्रदर्शन किया है। नमूना निम्न है—

"प्रथमहि कोई पूछत है कि निमित्त कहा, उपादान कहा ताको व्यौरौ—निमित्त तो सयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताकौ व्यौरौ—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान, ताकौ व्यौरौ—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेद कल्पना।"

उपर्युक्त उद्धरणोसे स्पष्ट है कि बनारसीदासके गद्यमे भावोके व्यक्त करनेकी पूर्ण क्षमता है। पाठक उनके विचारोसे गद्य-द्वारा अभिज्ञ हो सकते है।

सवत् १७०० के आस-पास अखयराज श्रीमाल हुए। इन्होने 'चतुर्दश गुणस्थान चर्चा' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ तथा कई स्तोत्रोकी हिन्दी वचनिकाएँ लिखी। लेखकने सैद्धान्तिक विषयोको बडे हृदय-ग्राह्य ढगसे समझाया है। यद्यपि वाक्योके सगठनमे त्रुटि है, पर शब्दचयन सार्थक है। तत्सम शब्दोका प्रयोग बहुत कम किया है। दूरान्वय गद्यमे नही है। लेखकने व्यजनावग्रहको समझाते हुए लिखा है—

जो अप्रगट अवग्रह होई सो व्यञ्जनावग्रह कहिये। अप्रगट जे पदार्थसे तत्काल जान्या न जाई। जैसे कोरे वासन पर पानीकी बूँदें

किये है। छोटे-छोटे समासोका प्रयोग कर अभिव्यजनाको शक्तिशाली बनानेका पूर्ण प्रयास किया गया है।

कविवर रूपचन्द पाण्डे महाकवि बनारसीदासके अभिन्न मित्र थे। इन्होने बनारसीदासके नाटक समयसारपर हिन्दी गद्यमे टीका लिखी है। इनकी गद्य शैली बनारसीदासकी गद्य शैलीसे मिलती-जुलती है। वाक्य-गठनमे कुछ सफाई प्रतीत होती है। रूपचन्दने सस्कृतके तत्सम शब्दोके साथ जतन, पहार, विजोग, बखान जैसे तद्भव शब्दोका भी प्रयोग किया है। अरबी-फारसीके चलते हुए शब्द दाग, दुसमन, दगा आदिको भी स्थान दिया है। भावाभिव्यञ्जनमे सफाई और सतर्कता है।

इनके वाक्य अधिकतर लम्बे होते है, परन्तु अन्वयमे क्लिष्टता नही है। सरलता और स्पष्टता इनके गद्यकी प्रधान विशेषता है। प्रचलित शब्दोके प्रयोग-द्वारा भाषामे प्रवाह और प्रभाव दोनो ही को उत्पन्न करनेकी चेष्टा की गयी है। शुष्क विषयमे भी रोचकता उत्पन्न करनेका प्रयास स्तुत्य है। भाषा और शैली-सम्बन्धी अव्यवस्था और अस्थिरताके उस युगमे इस प्रकारके गद्यका लिखा जाना लेखककी प्रतिभा और दूरदर्शिताका परिचायक है। इनके गद्यका नमूना निम्न है—

"जैसे कोई पुरुष पहारपर चढिकै नीचौ दृष्टि करै तब तलहटीको पुरुष तिस पहारीको छोटो-सो लागै, अरु तलहटी वारौ पुरुष तिहि पहार वारौको लखै देखै तो पहार वारौ छोटो-सो लागै। पीछे दोनो उतरिकै मिलै तब दुहोको भ्रम भागै। तैसे अभिमानी पुरुष ऊँची गरदन राखनहारो और जीवको लघु पदको दाग दै इतनै छोटे तुच्छ करि जानै।"

१८वी शताब्दीके मध्य भागमे दीपचन्द कासलीवालका जन्म हुआ। इन्होने सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश भाषाके ग्रन्थोका हिन्दीमे अनुवाद न कर स्वतन्त्ररूपसे जैन हिन्दी गद्य साहित्यकी श्रीवृद्धि की। इनकी अनुभव प्रकाश, चिद्‌विलास, गुणस्थानभेद आदि धार्मिक रचनाएँ प्रसिद्ध है। इनकी गद्यशैली सयत है, वाचक शब्दोके अतिरिक्त लक्षक शब्दोका

इनकी सख्या अल्प ही है, फिर भी इन्होने गद्यको सशक्त और भाव व्यक्त करनेमे सक्षम बनाया है ।

ध्वनि-योजना, शब्द-योजना, अनुच्छेद-योजना और प्रकरण-योजना का प० दौलतरामने पूरा निर्वाह किया है। भावोकी कटुता अथवा स्निग्धताके कारण अनुकूल ध्वनि-वर्णोका सगठन करनेमे इन्होने कोर-कसर नही की है । कोमल, ललित और मधुर भावोकी अभिव्यक्तिके लिए तदनुकूल ध्वनियोका प्रयोग किया है। अनुवादमे यही इनकी मौलिकता है कि ये युद्ध, रति, शृङ्गार, प्रेम आदिके वर्णनमे अनुकूल ध्वनियोका सन्निवेश कर सके है । शब्द इनके सार्थक और भावानुकूल है, एक भी निरर्थक शब्द नही मिलेगा । व्याकरणके नियमोपर ध्यान रखा गया है, किन्तु ब्रज, ढूँढारी और खडी बोलीका मिश्रितरूप रहनेके कारण व्याकरणके नियमोका पूर्णरूपसे पालन नही किया गया है और यही कारण है कि क्रियापद विकृत और तोडे-मरोटे गये है। वाक्योका गठन इस प्रकारसे किया गया है, जिससे गद्यमे अस्वाभाविकता और कृत्रिमता नही आने पायी है। वाक्य यथासम्भव छोटे-छोटे और एक सम्पूर्ण विचारके द्योतक है।

एक ही प्रसगसे सम्बद्ध एक विचारधाराको स्पष्ट करनेके लिए अनुच्छेद योजना की जाती है । लेखकने घटनाकी एक शृङ्खलाकी कडियोको परस्पर आबद्ध करनेकी पूरी चेष्टा की है। अनुच्छेदके अन्तमे विचारकी अग्रगतिका आभास भी मिल जाता है ।

अनुवादक होनेपर भी प० दौलतरामने प्रकरणोका सम्बन्ध ऐसा सुन्दर आयोजित किया है, जिससे वे मौलिक रचनाकारके समकक्ष पहुँच जाते है । अनुवादमे श्लोकोके भावको एक सूत्रमे पिरोकर कथाके प्रवाहको गतिशीलता दी है। पद्मपुराणके अनुवादमे तो लेखक अत्यन्त सफल है । इनकी गद्यशैलीका नमूना निम्न है—

"भरत चक्रवर्ती पदकूँ प्राप्त भए, अर भरतके भाई सब ही मुनि-

व्रत धार परमपदको प्राप्त हुए, भरतने कुछ काल छैखण्डका राज्य किया, अयोध्या राजधानी, नवनिधि चौदह रत्न प्रत्येककी हजार-हजार देव सेवा करें, तीन कोटि गाय, एक कोटि हल, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, अठारा कोटि घोडे, बत्तीस हजार मुकुटवन्द राजा अर इतने ही देश महासम्पदाके भरे, छियानवे हजार रानी देवागना समान, इत्यादि चक्रवर्तीके विभवका कहाँतक वर्णन करिये। पोदनापुरमे दूसरी माताका पुत्र बाहुबली सो भरतकी आज्ञा न मानते भए, कि हम भी ऋषभदेवके पुत्र हैं किसकी आज्ञा मानें, तब भरत बाहुबलीपर चढ़े, सेना युद्ध न ठहरा, दोऊ भाई परस्पर युद्ध करें यह ठहरा, तीन युद्ध थापे, १ दृष्टियुद्ध, २ जलयुद्ध अर ३ मल्लयुद्ध।"

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि खड़ी बोलीके गद्यके विकासमे इनकी गद्य शैलीका कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मुनि वैराग्यसारने संवत् १७५९ मे 'आठ कर्मनी १०८ प्रकृति' नामक गद्य ग्रन्थकी रचना की थी। शैली और भाषा दोनोंपर अपभ्रंशका पूरा प्रभाव है। 'न' के स्थानपर 'ण', दूसरेके स्थानपर 'बीजउ' का प्रयोग तथा द्वित्व वर्ण विशिष्ट भाषा पायी जाती है।

१९ वीं शताब्दीके आरम्भमें कवि भूधरदासने 'चरचासमाधान' नामक गद्य ग्रन्थ लिखा है। यद्यपि इसमें विभक्तियाँ ढूँढारी हैं, पर भाषा खड़ी बोलीके अत्यासन्न है। गद्यशैली स्वस्थ और भावाभिव्यक्तिमें सक्षम है। इसमें लेखकने धार्मिक शंकाओंका निराकरण कर सिद्धान्त निरूपण किया है। इनके गद्यका नमूना निम्न प्रकार है—

"उपदेश कार्य विषै तो आचार्य मुख्य हैं। पाठ पठनमें उपाध्याय मुख्य हैं। संयमके साध विषै साधुकी बडी शक्ति है। मौनावलम्बी और विरक्त हैं, यातें साधुपद उत्कृष्ट है। समानपने साधु तीनोंको कहिये। विशेष विचार विषै साधुपदको ही जानना। याते आचार्य उपाध्यायको साधु कहो। साधूको आचार्य उपाध्याय न कहिये"।

सवत् १८२० मे चैनसुखने शतश्लोकी टीका और इनसे पहले दीपचन्दने बाल्तन्त्र भापा वचनिका लिखी। इन ग्रन्थोका गद्य ढूँढारी भापा का है और शैली भी इसी भापाकी है। वाक्योके गठनमे शिथिल्ता है।

उन्नीसवी शतीके मध्यभागमे 'अबउचरित' नामक भापा ग्रन्थ अमरकल्याणने लिखा। इनके गद्यपर अपभ्रंश भापाका स्पष्ट प्रभाव है, कही-कही तो वाक्यप्रणाली और शब्द योजना अपभ्रंशकी ही है।

किसी अज्ञात लेखकका 'जम्बू कथा' ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इसकी गद्य रचना पुरानी ढूँटारी भापामे है। छोटे छोटे वाक्योमे विपयकी व्यजना स्पष्ट रूपसे हुई है। शैलीमे जीवटपना है। सस्कृतके तत्सम शब्दो का प्रयोग खुल्कर किया है।

सवत् १८५८ मे ज्ञानानन्दने श्रावकाचार लिखा। इनका गद्य बहुत ही व्यवस्थित और विकासोन्मुखी है। नमूना निम्न है—

"सर्व जगत्की सामग्री चैतन्य सुभाव विना जडत्व सुभावमे धरे फीकी, जैसे लून विना अलौनी रोटी फीकी। तीसो ऐसे ग्यानी पुरुप कौन है सो ज्ञानामृत कै छोड उपाधीक आकुलतासहित दुपनै आचरै कदाचित न आचरै।"

उन्नीसवी शताब्दीमे ही धर्मदासने इष्टोपदेश-टीका लिखी। इनका गद्य खडी बोलीका है। विभक्तियॉ पुरानी हिन्दीकी है, तथा उनपर राजस्थानी और व्रजभापाका पूरा प्रभाव है। भापा साफ सुथरी और व्यवस्थित है। नमूना निम्न है—

"जैसे जोगका उपादान जोग है वा धतुराका उपादान धतुरा है आम्रका उपादान आम्र है अर्थात् धतुराके आम नही लागै अर आम्रके धतुरा नाही लागै, तैसैही आत्माके आत्माकी प्राप्ती सम्भव है। प्रश्न—प्राप्तकी प्राप्ती कौण दृष्टान्त करि सम्भवै सो कहो। उत्तर—जैसे कठमें मोती माला प्राप्त है अर भरमसे भूलिकरि कहैके मेरी मोतीकी माला गुम गई—मेरी मोकूँ प्राप्ती कैसे होवै।"

१९ वीं शताब्दीमें ही स्वनामधन्य महापण्डित टोडरमलका जन्म हुआ। इन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा द्वारा जैन सिद्धान्तके श्रेष्ठतम ग्रन्थ गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणसार, त्रिलोकसार, आत्मानुशासन आदि ग्रन्थोंका हिन्दी गद्यमें अनुवाद किया। अनुवादके अतिरिक्त ढूँढारी भाषामें मोक्षमार्गप्रकाशकी रचना की। यह मौलिक ग्रन्थ विषयकी दृष्टिसे तो महत्त्वपूर्ण है ही, पर भाषाकी दृष्टिसे भी इसका अधिक महत्त्व है। ढूँढारी भाषा होनेपर भी गद्यके प्रवाहमें कुछ कमी नहीं आने पायी है तथा ऊँचेसे ऊँचे भावोंकी अभिव्यञ्जना भी सुन्दर हुई है। भाव व्यक्त करनेमें भाषा सशक्त है, शैथिल्य बिल्कुल ही नहीं है। गद्यका नमूना निम्न प्रकार है—

"बहुरि मायाका उदय होतैं कोई पदार्थकौं इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकरि ताकी सिद्धि किया चाहै; रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल करै, ठिगनेके अर्थि अपनी अनेक अवस्था करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावै इत्यादि रूप छल करि अपना अभिप्राय सिद्ध किया चाहै या प्रकार मायाकी सिद्धिके अर्थि छल तौ करै अर इष्टसिद्ध होना भवितव्य आधीन है, बहुरि लोभका उदय होतैं पदार्थनिकौं इष्ट मानि तिनकी प्राप्ति चाहै, वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि स्त्री-पुत्रादि सचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनकौं तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै या प्रकार लोभ करि इष्टप्राप्तिकी इच्छा तौ होय अर इष्ट प्राप्ति होना भवितव्य आधीन है"।

१९ वीं शतीके उत्तरार्धमें पं० जयचन्दने सर्वार्थसिद्धि वचनिका [१८६१], परीक्षामुख वचनिका [१८६३] द्रव्यसंग्रह वचनिका [१८६३], स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा [१८६६], आत्मख्याति समयसार [१८६४], देवागम स्तोत्र वचनिका [१८६६], अष्टपाहुड वचनिका

[१८६७], ज्ञानार्णव टीका [१८६८], भक्तामर चरित्र [१८७०], सामायिक पाठ और चन्द्रप्रभ काव्यके द्वितीय सर्गकी टीका, पत्र-परीक्षा-वचनिका आदि ग्रन्थ रचे। टीकाओकी भाषा पुरानी ढूँढारी है, फिर भी विषयका स्पष्टीकरण अच्छी तरह हो जाता है। उदाहरणार्थ निम्न गद्यांश उद्‌धृत है—

"यहाँ कार्यके ग्रहणतैं तो कर्मका तथा अवयवीका अर अनित्यगुण तथा प्रध्वंसाभावका ग्रहण है। वहुरि कारणको कहते हैं, समवायी समवाय तथा प्रध्वसके निमित्तका ग्रहण है। वहुरि गुणतै नित्य गुणका ग्रहण है अर गुणी कहते है गुणके आश्रयरूप द्रव्यका ग्रहण है। वहुरि सामान्यके ग्रहणतैं पर, अपर जातिरूप समान परिणामका ग्रहण है। 'तथैव, तद्वत्' वचनतैं अर्थरूप विशेषनिका ग्रहण है। ऐसे वैशेषिकमती मानै है जो इन सबके भेद ही है, ये नाना ही है, अभेद नाहीं हैं। ऐसा एकान्तकरि मानै है। ताकूँ आचार्य कहै है कि ऐसा माननेतें दूषण आवै है"।

२० वी शतीके प्रारम्भमे प० सदासुखदास, पन्नालाल चौधरी, प० भागचन्द्र, चपाराम, जौहरीलाल शाह, फतेहलाल, शिवचन्द्र, शिवजीलाल आदि कई टीकाकार हुए। इन टीकाओसे जैन हिन्दी साहित्यमे गद्यका प्रचलन तो हुआ, पर गद्यका प्रसार नही हो सका।

आधुनिक गद्य साहित्य

[२०वी शती]

जैन लेखक आरम्भसे ही ऐसे भावोको, जिनमे जीवनका सत्य, मानव कल्याणकी प्रेरणा और सौन्दर्यकी अनुभूति निहित है, उपयोगी समझ स्थायी बनानेका यत्न करते आ रहे है। मानव भावनाओकी अभिव्यक्तिका सग्रह नवीन रूपसे इस शताब्दीमे गद्यमे जितना किया गया है उतना पद्यमे नही। कारण स्पष्ट है कि आजका मानव तर्क और भावनाके साम-

उसमें ही विकासका मार्ग पाता है, अतः आधुनिक युगमें ऐसा साहित्य ही अधिक उपयोगी हो सकता है, जिसमें बुद्धिपक्षकी तार्किकता भी पर्याप्त मात्रामें विद्यमान रहे। जीवनकी विवेचना तथा मानवकी विभिन्न समस्याओंका सर्वाङ्गीण और सूक्ष्म ऊहापोह गद्यके माध्यम द्वारा ही सम्भव है। इस बीसवीं शताब्दीमें विषयके अनुरूप गद्य और पद्यके प्रयोगका क्षेत्र निर्धारित हो चुका है। कथा-वर्णन, यात्रा-वर्णन, भावोंके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, समालोचना, प्राचीन गौरव-विवेचन, तथ्य-निरूपण आदिमें गद्य शैली अधिक सफल हुई है।

इस शताब्दीमें निर्मित जैन गद्य साहित्यके रत्न साहित्य कोषकी किसी भी रत्नराशिसे कम मूल्यवान और चमकीले नहीं हैं। यद्यपि इस शताब्दीके आरम्भमें जैन गद्य साहित्यका श्रीगणेश वचनिकाओं, निबन्ध और समालोचनाओंसे होता है तो भी कथासाहित्य और भावात्मक गद्य साहित्यकी कमी नहीं है। आरम्भके सभी निबन्ध धार्मिक, सांस्कृतिक और खण्डन-मण्डनात्मक ही हुआ करते थे। कुछ लेखकोंने प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंका हिन्दी गद्यमें मौलिक स्वतंत्र अनुवाद भी किया है, पर इन अनुवादकोंकी भाषा और शैली भी १८वीं और १९वीं शतीकी भाषा और शैलीसे प्रायः मिलती-जुलती है। पंडित सदासुखने रत्नकरण्डश्रावकाचारकी भाषा और तत्त्वार्थसूत्रकी भाषा—अर्थ प्रकाशिकायी रचना इस शतीके आरम्भमें की है। पन्नालाल चौधरीने वसुनन्दि श्रावकाचार, जिनदत्त चरित्र, तत्त्वार्थसार, यशोधरचरित, पाण्डवपुराण, भविष्यदत्तचरित आदि २५ ग्रन्थोंकी भाषावचनिकाएँ लिखी हैं। मुनि आत्मारामने स्वतन्त्र भावनात्मक साहित्यका [illegible] हिन्दी गद्यमें किया है। इनकी भाषामें पंजाबीपना है। पण्डित [illegible] रत्नकरण्डश्रावकाचार, धर्मसंग्रहश्रावकाचार आदि [illegible], [illegible] सन् १९१५ में पद्मनन्दि पञ्चविंशतिकाकी [illegible], [illegible] सुकुमालचरित, महीपाल[illegible] [illegible] सिद्धान्तसार और [illegible]

वचनिकाएँ , जयपुरनिवासी पारसदासने ज्ञानसूर्योदय और सारचतुर्विंशतिकाकी वचनिकाएँ, मन्नालाल वैनाडाने स० १९१३मे प्रद्युम्न चरित्र की वचनिका, शिवचन्द्रने नीतिवाक्यामृत, प्रश्नोत्तरीश्रावकाचार और तत्त्वार्थसूत्रकी वचनिकाएँ एव शिवजीलालने चर्चासग्रह, वोधसार, दर्शनसार और अध्यात्मतरगिणी आदि अनेक ग्रन्थोकी वचनिकाएँ लिखी है। यहाँ नमूनेके लिए पडित सदासुख, शिवजीलाल आदि दो एक वचनिकाकारोके गद्यको उद्धृत किया जाता है—

"वहुरि दयादान ऐसा जानना जो बुभुक्षित होय, दरिद्री होय, अन्धा होय, लूला होय, पाँगला होय, रोगी होय, अशक्त होय, वृद्ध होय, वालक होय, विधवा होय, तथा वावरा होय, अनाथ होय, विदेशी होय, अपने यूथतें सगतैं विछुडि आया होय, तथा वन्दीगृहमे रुक्या होय, वन्ध्या होय, दुष्टनिका आतापतें भागि आया होय, लुट आया होय, जाका कुटुम्ब मर गया होय, भयवान होय ऐसा पुरुप होहू वा स्त्री होहू तथा वालक होहू वा कन्या तथा तिर्यंच होहू, इनकी क्षुधा तृपा शीत उष्ण रोग तथा वियोगादिकनिकरि दुःखित जानि करुणाभावतैं भोजन वस्त्रादिक दान देना सो करुणा दानमे हू उनका जाति कुल आचरणादिक जानि यथायोग्य दान करना।"

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, सदासुख वचनिका

वचनिकाओकी भापापर ढूँढारी भापाका प्रभाव स्पष्ट रूपसे विद्यमान है। स्वतन्त्र रचनाओमे मुनि आत्मारामकी रचनाएँ भापाकी दृष्टिसे अधिक परिमार्जित है। यद्यपि इनकी भापापर राजस्थानी और पजावी भापाका प्रभाव है, तो भी भापामे भावोको अभिव्यक्त करनेकी पूर्ण क्षमता है।

"यह जो तुम्हारा कहना है सो प्यारी भार्या, वा मित्र मानेगा, परन्तु प्रेक्षावान् कोई भी नही मानेगा, क्योंकि इस तुमारे कहनेमें कोई भी प्रमाण नही, परन्तु जिसका उपादान कारण नही वो

व्याख्या उनके पिछले जन्मके किसी कर्मके सहारे कर देता है। इसी विधानके कारण जैन कहानियोका जातकोसे मौलिक अन्तर हो जाता है। यद्यपि रूप-रेखामे ये कहानियाँ भी बौद्ध कहानियोके समान है, तो भी मौलिक अन्तर यह हो जाता है कि जैन कहानियाँ वर्तमानको प्रमुखता देती है। भूतकालको वर्तमानके दु.ख-सुखकी व्याख्या करने और कारण निर्देशके लिए ही लाया जाता है। बौद्ध जातकोमे वर्तमान गौण है, भूतकाल—पूर्वजन्मकी कहानी प्रमुख होती है। जैन कहानियोके इसी स्वभावके कारण उनमे कहानीके अन्दर कहानी मिलती है, जिसमे कहानी जटिल हो जाती है। हिन्दीमे जैन कहानियाँ लिखी गयी हैं, किन्तु वे प्रकाशमे नही आ सकी है।"[1]

जैनकथा साहित्यकी सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे पहले कथा मिलती है, पश्चात् धार्मिक या नैतिक ज्ञान, जैसे अगूर खानेवालेको प्रथम रस और स्वाद मिलता है, पश्चात् बल—वीर्य। जो उपन्यास या कहानी विचार बोझिल और नीरस होती है तथा जहाँ कथाकार पहले उपदेशक बन जाता है, वहाँ कलाकारको कथा कहनेमे कभी सफलता नहीं मिल सकती। जैन कहानियोमे कथावस्तु सर्वप्रथम रहती है, पश्चात् धर्मोपदेश या नीति। इनमे समाज विकास और लोकप्रवृत्तिकी गहरी छाप विद्यमान है। वस्तुत. जैन कथाएँ नीतिबोधक, मर्मस्पर्शी और आजके युगके लिए नितान्त उपयोगी है। इनमे व्यापक लोकानुरजन और लोकमगलकी क्षमता है।

उपन्यास

इस शताब्दीमे कई जैन लेखकोंने पुरातन जैन कथानकोंको लेकर सरस और रमणीय उपन्यास लिखे है। इन उपन्यासोंमे जनताकी आध्यात्मिक आवश्यकताओका निरूपणकर उसके भावजगत्के धरातलको

---

१ ब्रजलोक साहित्यका अध्ययन।

ऊँचा उठानेका पूरा प्रयास विद्यमान है। वर्तमानमे जनताका जितना आर्थिक शोषण किया जा रहा है, उससे कहीं अधिक आध्यात्मिक शोषण। समाज निर्माणमे आर्थिक शोषण उतना बाधक नही, जितना आध्यात्मिक शोषण। आर्थिक शोषणसे समाजमे गरीबी उत्पन्न होती है, और गरीबीसे अशिक्षा, भावात्मक शून्यता, अस्वास्थ्य आदि दोष उत्पन्न होते है। परन्तु आध्यात्मिक ह्रास होनेसे जनताका भाव-जगत् ऊसर हो जाता है, जिससे उच्च सुखमय जीवनकी अभिलाषापर शका और सन्देहोका तुषारा-पात हुए बिना नहीं रह सकता। आत्मविश्वास और नैतिक बलके नष्ट हो जानेसे जीवन मरुस्थल बन जाता है और हृदयकी आकाक्षाओकी सरिता, जिसमे उज्ज्वल भविष्यका श्वेत चन्द्रमा अपनी ज्योत्स्ना डालता है, शुष्क पड जाती है। आत्मविश्वासके चले जानेपर जीवन उद्भ्रान्त और किकर्त्तव्य-विमूढ हो जाता है और जीवनमे आन्तरिक विशृखलता भीतर प्रविष्ट हो जीवनको अस्त-व्यस्त बना देती है। जैन उपन्यासोमे कथाके माध्यमसे इस आध्यात्मिक भूखको मिटानेका पूरा प्रयत्न किया गया है।

आत्मविश्वास किस प्रकार उत्पन्न किया जा सकता है? नैतिक या आत्मिक उत्थान, जो कि जीवनको विषम परिस्थितियोसे धक्का लगाकर आगे बढाता है, की जीवनमे कितने परिमाणमे आवश्यकता है? यह जैन उपन्यासोसे स्पष्ट है। जीवनकी विडम्बनाओको दूरकर आध्यात्मिक क्षुधाको शान्त करना जैन उपन्यासोका प्रधान लक्ष्य है।

जीवन और जगत्के व्यापक सम्बन्धोकी समीक्षा जैन उपन्यासोमे मार्मिक रूपसे की गयी है। कथानक इतना रोचक है कि पाठक वास्तविक ससारके असन्तोष और हाहाकारको भूलकर कल्पित ससारमे ही विचरण नहीं करता, किन्तु अपने जीवनके साथ नानाप्रकारकी क्रीडाएँ करने लगता है। ये क्रीड़ाएँ अनुभूतियोके भेदसे कई प्रकारकी होती हैं। आशा, आकाक्षा, प्रेम, घृणा, करुणा, नैराश्य आदिका जितना सफल चित्रण जैन उपन्यासकारोने किया, उतना अन्यत्र शायद ही मिल सकेगा।

जैन उपन्यासोकी सुगठित कथावस्तुमे घटनाएँ एक दूसरेसे इस प्रकार सम्बद्ध है, कि साधारणतः उन्हे अलग नही किया जा सकता और सभी अन्तिम परिणाम या उपसहारकी ओर अग्रसर होती है। कथावस्तु-के भिन्न-भिन्न अवयव इतने सुगठित है, जिससे इन उपन्यासोकी रचना एक व्यापक विधानके अनुसार मानी जा सकती है। प्रवाह इतना स्वाभाविक है, जिससे कृत्रिमताका कही नाम-निशान भी नही है।

कथावस्तुके सुगठनके सिवा चरित्र चित्रण भी जैन उपन्यासोमे विश्लेषात्मक [एनेलिटिक] और कार्यकारण सापेक्ष या नाटकीय [ड्रामेटिक] दोनो ही रीतियोसे किया गया है। चरित्र-चित्रणकी सबसे उत्कृष्ट कला यह है कि अपने पात्रोको प्राणशक्तिसे सम्पन्नकर उन्हे जीवनकी रगस्थलीमे सुख-दु.खसे ऑखमिचौनी करनेको छोड दे। जीवन के घात-प्रतिघात, उत्कर्ष-अपकर्ष एव हर्ष-विषाद लेखक-द्वारा विना टीका-टिप्पण किये पात्रोके चरित्रसे स्वतः व्यक्त हो जानेमे उपन्यासकी सफलता है। अधिकाश जैन लेखकोके उपन्यास मानव चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे खरे उतरते है। जिज्ञासा और कौतूहलवृत्तिको शान्त करनेकी क्षमता भी जैन उपन्यासोमे है।

कथोपकथन वास्तविक जीवनकी अनुरूपताके अनुसार है। जैन उपन्यासोमे पात्रोकी बात चीत स्वाभाविक तथा प्रसगानुकूल है। निरर्थक कथोपकथनोका अभाव है। आदर्श कथोपकथन पात्रोके भावो, प्रवृत्तियो, मनोवेगो और घटनाओकी प्रभावान्वितिके साथ कार्य प्रवाहको आगे वढाता है। परिस्थितियोके अनुसार पात्रोके वार्तालापमे परिवर्तन कराकर सिद्धान्तो, आचार-व्यवहारोका दिग्दर्शन भी कराया गया है।

जैन उपन्यासोके आधार पुरातन कथानक हैं, जिनमें नर नारी, उनके सासारिक नाते-रिश्ते, उनके राग-द्वेष, क्रोध-करुणा, सुख-दुःख, जीवन-सघर्ष एव उनकी जय-पराजयका निरूपण किया गया है। नैतिक तथ्य या आदर्शका निरूपण जैन उपन्यासोमे प्रधानरूपसे विद्यमान है। जीवन-

का निरीक्षण, मनन, मानवकी प्रवृत्ति और मनोवेगोकी सूक्ष्म परख, अनुभूत सत्यो और समस्याओका सुन्दर समाहार इन उपन्यासोमे अत्यल्प है। दुराचारके ऊपर सदाचारकी विजय जिस कौशलके साथ दिखलाई गई है, वह पाठकके हृदयमे नैतिक आदर्श उत्पन्न करनेमे पूर्ण समर्थ है।

यद्यपि जैन उपन्यास अभी भी शैशव अवस्थामे है; अनन्त हृदयस्पर्शी मार्मिक कथाओके रहते हुए भी इस ओर जैन लेखकोंने ध्यान नहीं दिया है, तो भी जीवनके सत्य और आनन्दकी अभिव्यञ्जना करनेवाले कई उपन्यास हैं। जैन लेखकोको अभी अपार कथासागरका मन्थन कर रत्न निकालनेका प्रयत्न करना शेष है। नीचे कुछ उपन्यासोंकी समीक्षा दी जाती है—

मनोवती

यह श्रीजैनेन्द्रकिशोर[1] आरा-द्वारा लिखित एक छोटा-सा उपन्यास है। आज हिन्दी साहित्यका अंक नित्य नये-नये उपन्यासोसे भरता जा रहा है, इस कारण आधुनिक औपन्यासिककलाका स्तर पहले की अपेक्षा उन्नत है, पर 'मनोवती' उस कालका उपन्यास है, जब हिन्दी साहित्यमे उपन्यासोका जन्म हो रहा था, इसी कारण इसमे आधुनिक औपन्यासिक तत्त्वोका प्रायः अभाव है।

कथावस्तु

महारथ नामके एक सेठ हस्तिनापुरमे रहते थे। वह सौभाग्यशाली लक्ष्मीपुत्र थे, उनकी एक अत्यन्त धर्मनिष्ठ मनोवती नामकी कन्या थी। वयस्क होनेपर पिताने उसकी शादी जौहरी हेमदत्तके पुत्र बुद्धिसेनसे कर दी, जो वल्लभपुर-निवासी थे। मनोवतीने गुरुसे नियम लिया था कि वह प्रतिदिन गजमुक्ताका पुंज भगवान्के सामने चढाकर भोजन करेगी। श्वशुरालयमे जाकर भी उसने अपने नियमानुसार मन्दिरमे गजमुक्ता चढाकर ही भोजन ग्रहण किया। प्रातःकाल नगरकी मालिनने जब गजमोती देखे, तो बहुत प्रसन्न हुई और पुरस्कार पानेके लोभसे वल्लभपुर-नरेशकी

---

1. १४ मई सन् १९०९मे आपकी मृत्यु हो गई।

छोटी रानीके पास मालामे गूँथ कर ले गयी। मालिनके इस व्यवहारसे वडी रानी रूठ गयी। नरेशने उन्हे गजमोतियोका हार ला देनेका आश्वासन देकर मनाया। दूसरे दिन प्रातःकाल नगरके जौहरियोको बुलाकर उन्होंने गजमोती लानेका आदेश दिया। लालचवश सभी जौहरियोने गजमुक्ता लानेमे असमर्थता प्रकट की। जौहरी हेमदत्तने राजसभामे तो गजमुक्ता लानेसे इन्कार कर दिया, पर घर आकर सोचने लगा कि जब मेरे पुत्र बुद्धिसेनकी वहू घरमे आयेगी, तो सभी भेद खुल जायगा। राजा मेरी सारी सम्पत्ति लुटवा लेगा और मै दरिद्री बन खाक छानूँगा। अतएव अपने छः पुत्रोसे परामर्शकर वधू घरमे न आ सके, इसलिए बुद्धिसेनको निर्वासित कर दिया।

विवश बुद्धिसेन घरसे निकलकर अपने श्वशुरालय हस्तिनापुर आया और पत्नीके अनुरोधसे दोनो दम्पति सम्पत्ति अर्जन करनेकी इच्छासे निस्तब्ध रात्रिमे चुप-चाप घरसे निकल गये। धर्मपरायण पत्नीकी सहायता से बुद्धिसेनने रत्नपुर पहुँचकर वहाँके राजाको प्रसन्न किया। रत्नपुरके राजाने प्रसन्न होकर अपनी पुत्रीका विवाह बुद्धिसेनसे कर दिया और अपार सम्पत्ति दहेजमे दी। अपनी दोनो पत्नियोके साथ सुखपूर्वक रहते हुए बुद्धिसेनने कई वर्ष व्यतीत किये। एक दिन धर्मनिष्ठ मनोवतीने बुद्धिसेनको ससारकी दशासे परिचित किया और एक जिनालय निर्माण करनेकी प्रेरणा की। पत्नीकी प्रेरणा पाकर बुद्धिसेनने लगभग एक करोड रुपये खर्चकर एक भव्य मन्दिर बनवाया। इस समय बुद्धिसेनका व्यापार बहुत उन्नतिपर था, कई अरब रुपये उसके पास एकत्रित थे।

बुद्धिसेनके माता-पिता और भाई-भाभियो, जिन्होंने बुद्धिसेनको घरसे निकाल दिया था, जिनदेवके अपमानके कारण निर्धनी होकर आजीविकाके लिए इधर-उधर भटकने लगे। सौभाग्य या दुर्भाग्यसे वे चौदह प्राणी बुद्धिसेनके भव्य मन्दिरमे काम करनेवाले मजदूरोके साथ कार्य करने लगे। क्रोधावेगमे बुद्धिसेनने पहले तो उनसे मजदूरी करायी, किन्तु

कुछ दिनो बाद मनोवतीके कहनेसे उनका सम्मान किया। इसी बीच बल्लभपुर नरेश द्वारा निमन्त्रित होनेपर सभी वहाँ चले गये।

यही इस उपन्यासकी कथावस्तु है। कथावस्तु पौराणिक होनेके कारण कोई नवीनता इसमे नही है। नारी-सौन्दर्य और सम्पत्तिका निरूपण प्राचीन प्रणालीपर हुआ है। कथानकमे लौकिक प्रेमके दिग्दर्शनके साथ अलौकिकताका भी समन्वय किया गया है, यही इसकी विशेषता है।

इस उपन्यासके प्रधानपात्र हैं–मनोवती और बुद्धिसेन। अन्य सब पात्र गौण है। मनोवती स्वय इस उपन्यासकी नायिका है। इसका चित्रण

पात्र

एक आदर्श भारतीय ललनाके रूपमे हुआ है। धर्म और आदर्शमे इसकी अनन्य श्रद्धा है। अपनी प्रखर प्रतिभाके कारण यह आठ महीनेमे ही शिक्षामे पारगत हो जाती है। इसकी धर्मपरायणताका ज्वलन्त उदाहरण तो हमे तब मिलता है, जब वह तीन दिन सतत उपवास करती रह जाती है, पर बिना गजमुक्ता चढाये भोजन नही करती। नारी-सुलभ सहज सकोचकी भावना उसमे व्याप्त है। भारतीयता और पातिव्रतसे ओत-प्रोत यह नारी दुःखमे भी पतिका साथ नहीं छोडती। पति दूसरी शादी कर लेता है, पर पतिके सुखका ख्यालकर वह तनिक भी बुरा नही मानती। जैनधर्ममे अटल विश्वास रखते हुए वह सदा पतिको सद्गुणोकी ओर प्रेरित करती है। लेखक मनोवतीके चरित्र-चित्रणमे बहुत अशोमे सफल हुआ है। मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघातोका विश्लेषण भी कर सका है।

बुद्धिसेनको इस उपन्यासका नायक कहा जा सकता है, किन्तु लेखक इसके चरित्र-विश्लेषणमे सफल नही हुआ है। आरम्भमे बुद्धिसेन सदाचारीके रूपमे आता है, पर पीछे "ममता पाइ काहि मद नाही" कहावतके अनुसार धन-मदके कारण वह क्रूर और कृतघ्नी हो जाता है। अपनी पहली पत्नी मनोवतीके उपकारोको विस्मृत कर दूसरी शादी कर लेता है और अपने माता-पिता तथा बन्धुओको अपार कष्ट देता है। एक

सदाचारी व्यक्तिका इस प्रकारका परिवर्तन क्रमशः होना चाहिये था, पर लेखकने इस परिवर्तनको त्वरित वेगसे दिखलाया है, जिससे कुछ अस्वाभाविकता आ गई है।

मनोवतीके चरित्र-विश्लेषणके समक्ष अन्य पात्रोके चरित्र बिल्कुल दब गये है, जिससे औपन्यासिकताके विकासमे बाधा पहुँची है।

इस उपन्यासकी शैलीमे प्रभावोत्पादकताका अभाव है। मनोभावोकी अभिव्यञ्जना करनेके लिए जिस सजीव और प्रवाहपूर्ण भाषाकी आवश्यकता होती है, उसका इसमे प्रयोग नही किया गया है। हॉ, कथोपकथनसे पात्रोके चरित्र-चित्रणमे तथा कथाके विकासमे पर्याप्त सहायता मिली है।

शैली और कथोपकथन

जब महारथ अपनी पुत्री मनोवतीसे कहता है कि—"इस नियमका कदाचित् निर्वाह न हो, क्योकि जबतक तू हमारे घरमे है, तबतक तो सब कुछ हो सकता है, परन्तु ससुराल जानेपर भारी अडचन पडेगी।" उस समय निस्सकोच और निर्भीकता पूर्वक उत्तर देती है। पिताका इस प्रकार पुत्रीसे कहना और पुत्रीका सकोच न करना खटकता-सा है। अन्य स्थलोमे कथोपकथन मर्यादायुक्त और स्वाभाविक है।

भाषा चलती फिरती है। अनेक स्थलोपर लिंगदोष भी विद्यमान है। जहॉ एक ओर लडकी, सुनहरी, चौघरे, जोति, खटा-पटास, दिखौआ आदि देशी शब्द पर्याप्त मात्रामे पाये जाते है, वहॉ दूसरी ओर अफताब, महताब, मुराद, फसाद, कर्तूत, खातिरदारी, हासिल, हताश आदि अरबी-फारसीके शब्दोकी भी भरमार है। आरा निवासी होनेके कारण भोजपुरी का प्रभाव भी भाषापर है। फिर भी बोल-चालकी भाषा होनेके कारण शैलीमे सरलता आ गई है।

यद्यपि औपन्यासिक तत्त्वोकी कसौटीपर यह खरा नही उतरता है, पर प्रयोगकालीन रचना होनेके कारण इसका महत्त्व है। हिन्दी उपन्यासो

की गति-विधिको अवगत करनेके लिए इसका महत्त्व 'चन्द्रकान्ता सन्तति' से कम नही है।

कमलिनी, सत्यवती, सुकुमाल, मनोरमा और शरतकुमारी ये पॉच उपन्यास श्री जैनेन्द्रकिशोरने और भी लिखे है, पर ये उपलब्ध नही है। इन सभी उपन्यासोमे धार्मिक और सदाचारकी महत्ता दिखलायी गयी है। प्रयोगकालीन रचनाएँ होनेसे कलाका पूरा विकास नही हो सका है।

इस उपन्यासके रचयिता मुनि श्री तिलकविजय हैं। आपका आध्यात्मिक क्षेत्रमे अपूर्व स्थान है। धर्मनिष्ठ होनेके कारण आपके

रत्नेन्दु

हृदयमे धर्मानुरागकी सरिता निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इसी सरिणीमे प्रस्फुटित श्रद्धा, विनय, उपकारवृत्ति, धैर्य, क्षमता आदि गुणोसे युक्त कमल अपनी भीनी-भीनी सुगन्धसे जन-जनके मनको आकृष्ट करते है। उपन्यासके क्षेत्रमे भी इनकी मस्त गन्ध पृथक् नही। वास्तवमे अध्यात्म विषयका शिक्षण उपन्यास-द्वारा, सरस रूपमे दिया गया है। कडुवी कुनैनपर चीनीकी चासनीका परत लगा दिया गया है। इस उपन्यासमे औपन्यासिक तत्त्वोकी प्रचुरता है। पाठक आदर्शकी नीवपर यथार्थका प्रासाद निर्मित करनेकी प्रेरणा ग्रहण करता है।

आजके युगमे उपन्यासकी सबसे बडी सफलता टेकनिकमे है। इस उपन्यासमे टेकनिकका निर्वाह अच्छी तरह किया गया है। आरम्भमे ही हम देखते है कि बीस पच्चीस घुडसवार चले जा रहे है, उनमे एक धीर-वीर रणधीर व्यक्ति है। उसके स्वभावादिसे परिचित होनेके साथ-साथ हमारा मन उससे वार्तालाप करनेको चल उठता है। इस युवककी, जिसका नाम रत्नेन्दु है, तत्परता जगलमे शिकार खेलनेके समय प्रकट हो जाती है। उसके धैर्य और कार्यक्षमता पाठकोको उमग और स्फूर्ति प्रदान करते है। रत्नेन्दुकी वीरताका वर्णन उसके बिछुडे साथी नयपाल-द्वारा कितने सुन्दर ढगसे हुआ है—

"नही नही, यह बात कभी नहीं हो सकती, आपके विचारोको हमारे हृदयमे बिल्कुल अवकाश नही मिल सकता। वे किसी हिंस्र जानवरके पजेमे आ जायँ, यह बात सर्वथा असम्भव है। क्योकि मुझे उनकी वीरता और कला-कुशलताका भली-भॉति परिचय है।"

इस प्रकार दो परिच्छेद समाप्त होनेतक पाठकोकी जिज्ञासा वृत्ति ज्योकी त्यो बनी रहती है। रत्नेन्दुका नाम पा जिज्ञासा कुछ शान्त होना चाहती है कि एक करुणक्रन्दन चौका देता है। पाठक या श्रोताकी श्रोत्रेन्द्रियके साथ समस्त इन्द्रियाँ उधर दौड जाती है और अपनेको उस रहस्यमे खो पद्मनिका नाम पा आनन्दविभोर हो जाती है। रत्नेन्दु इस भीषण और हृदय-द्रावक स्वरमे अपना नाम सुन किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाता है, और थोडी ही देरमे स्वस्थ हो कष्टनिवारणार्थ उधरको ही चला जाता है। रत्नेदु अपनी तल्वारसे कपालीके खूनी पजेसे बालिकाको मुक्त करता है।

पद्मनि एक सघनवृक्षकी शीतल छायामे पहुँचकर अपना दु.ख निवेदन करती है। नारीकी श्रद्धा, निष्कपटता, त्याग एव सतीत्वका परिचय पद्मनिके वचनोसे सहजमे मिल जाता है। पद्मलोचन सती है, महासती है, उसमे लज्जा है, स्नेह है, ममता है, मृदुता है और है कठोरता अधर्मके प्रति, अविद्याके फन्देमे पडनेपर भी सचेष्ट रहती है। वह अग्निकी ज्वलन्त लपटो से प्यार करनेको तत्पर है, किन्तु अपने शीलको अक्षुण्ण बनाये रखना चाहती है। रत्नेन्दुके लिए वह आत्मसमर्पण पहले ही कर चुकी थी, अतः श्रद्धाविभोर हो वह कहती है—"ज्योतिषीने कहा, कुछ ही समय बाद रत्नेन्दु चन्द्रपुरकी गद्दीका मालिक होगा। वह रूप लावण्यसे आपकी कन्याके योग्य वही वर है। उसी समयसे मै उसे अपना सर्वस्व समझ बैठी और इस असाध्य संकटमे उनका नाम स्मरण किया। मैने प्रतिज्ञा की है कि रत्नेन्दुके साथ विवाह करूँगी, अन्यथा आजन्म ब्रह्मचारिणी रहूँगी।"

इस मिलनके पश्चात् पुन. वियोग आरम्भ होता है। कपालीका पुत्र

पद्मनिका अपहरण करता है। सौभाग्यसे तपस्वियों-द्वारा उसका परित्राण होता है और वह अपने पिताके पास चली आती है। रत्नेन्दु उसे प्राप्त करनेके लिए भ्रमण करता है। इसी भ्रमणमें उसकी एक धर्मात्मा वृद्ध श्रावकसे भेंट होती है, जो अपने जीवनको मानवसे देव बनानेका इच्छुक है। उसकी अभिलाषा वनखटके देवालयोंमें स्थित रत्नेन्दुसे टकराती है। रत्नेन्दु उस मरणासन्न श्रावकको णमोकार मन्त्र सुनाता है। मन्त्रके प्रभावसे श्रावक उत्तमगति पाता है।

रत्नेन्दु किसी कारणवश चम्पा नगरमें जाता है और वहींपर विधि-पूर्वक पद्मनिके साथ उसका पाणिग्रहण हो जाता है। कुछ दिनों तक वहाँ रहनेके उपरान्त माता-पिताकी याद आ जानेसे वह अपने देश लौट आता है और राज सम्पदाका उपभोग करने लगता है। इसी बीच सर्प विषसे आक्रान्त होकर रत्नेन्दु मूर्छित हो जाता है, पर श्मशानमें पूर्वोक्त श्रावक, जो कि देवगतिको प्राप्त हो गया था, आकर उसका विष हरण कर जीवन प्रदान करता है।

वसन्त ऋतुमें रत्नेन्दु ससैन्य उपवनमें विहार करने जाता है और लहलहाते हुए वृक्षको एकाएक सूखा देखकर संसारकी क्षणभंगुरता सोचने लगता है। उसका विवेक जाग्रत हो जाता है और चल पड़ता है आत्म-सिद्धिके लिए। थोड़ी ही देरमें रत्नेन्दु पाठकोंके समक्ष सन्यासीके भेषमें उपस्थित होता है और आत्मसाधनामें रत रहकर अपना कल्याण करता है।

यह उपन्यास जीवनके तथ्यकी अभिव्यञ्जना करता है। घटनाओंकी प्रधानता है। लेखकने पात्रोंके चरित्रके भीतर बैठकर झांका है, जिससे चरित्र मूर्तिमान हो उठे हैं। भाषा विषय, भाव, विचार, पात्र और परिस्थितिके अनुकूल परिवर्तित होती गयी है। यद्यपि भाषासम्बन्धी अनेक भूलें इसमें रह गयी है, तो भी भाषाका प्रवाह अक्षुण्ण है।

यह एक धार्मिक उपन्यास है[1]। इसके लेखक स्वनामधन्य पडित गोपालदास वरैया है। कुशल कलाकारने इस उपन्यासमे धार्मिक सिद्धान्तो-

सुशीला

की व्यजनाके लिए काल्पनिक चित्रोको इतनी मधुरता और मनोमुग्धतासे खीचा है, जिससे पाठक गुणस्थान जैसे कठिन विषयोको कथाके माध्यमद्वारा सहजमे अवगत कर लेता है।

इसका कथानक अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है। घटनाएँ शृखलाबद्ध नही है, किन्तु घटनाओका आरम्भ और अन्त ऐसे कलापूर्ण ढगसे होता है, जिससे पाठककी उत्सुकता बढती जाती है। अन्तमे जीवन-के आरम्भ और अन्तकी शृखला स्पष्ट हो जाती है, कलाका प्रारम्भ जीवनके मध्यकी आकर्षक घटनासे होता है।

विजयपुरके महाराज श्रीचन्द्रके सुपुत्र जयदेवकी योग्यतासे प्रसन्न होकर महाराज विक्रमसिह अपनी रूपगुणयुक्ता सुशीला कन्याका पाणि-

कथावस्तु

ग्रहण उससे कर देते है। सुशीलाकी रूपसुधापर मँडरानेवाला पापी उदयसिह यह सहन न कर सका। कामोत्तेजित होकर उनके विनाशका षड्यन्त्र रचने लगा।

विवाहानन्तर दोनो विदा हुए। मार्गमे उदयसिंहने छकछिपकर साथ पकड लिया, सामुद्रिक मार्गसे जानेकी सलाह हुई। सामुद्रिक वायुके शीतल झोकेसे निद्रा आने लगी। उदयसिंह और बल्वन्तसिह दोनो क्रूर मित्रोने मल्लाहसे खूब घुलमिलकर बाते की और धोखा देकर बीचमे ही नौका डुबा दी गयी। नावमे जयदेवका परममित्र भूपसिह और सुशीलाकी दो-चार सखियाँ भी थी।

अब क्या ? जयदेव एक तख्तेके सहारे डूबते-उतराते किनारे लगा। धीरे-धीरे कचनपुर पहुँचा। उसकी दयनीय दशा देख रत्नचन्द्र नामक एक प्रसिद्ध जौहरीने आश्रय दिया। जयदेव रत्नपरीक्षामे निपुण था,

---

१. प्रकाशक, दि० जैन पुस्तकालय, सूरत।

अतएव रत्नचन्द्र उससे अत्यन्त प्रसन्न रहता था। रत्नचन्द्रकी पत्नी रामकुँवरि और पुत्र हीरालाल दोनो विषयासक्त और दुराचारी थे। रामकुँवरिने जयदेवको फँसानेके लिए नाना प्रकारसे मायाजाल फैलाया, पर सब व्यर्थ रहा। जयदेव सरल और सत्पुरुष था, अतएव पापसे भयभीत रहता था। रत्नचन्द्र एक दिन कार्यवश खेटपुर गया। पत्नीके चरित्रपर सन्देह होनेके कारण मार्गमेंसे ही लौट आया और आधी रात घर पहुँचा। यहाँ आकार रामकुँवरि और हीरालालके कुकृत्यको देखकर क्रोधसे उसकी आँखे आरक्त हो गई, इच्छा हुई कि पापीको उचित सजा दी जाय, किन्तु तत्क्षण ही उसे विराग हो गया, वह कुछ न बोला। धीर गम्भीर रत्नचद उदासीन हो चल पडा मुक्तिके पथपर।

प्रातःकाल जयदेव यह सब देख अवाक् रह गया। रत्नचन्दका लिखा पत्र प्राप्त हुआ, उसे पढकर उसके मुखसे निकला "हा! रत्नचन्द हमेशा के लिए चला गया।" कुछ दिनोतक वह घरका भार सिमेटे रहा, किन्तु रामकुँवरि और हीरालालके दुश्चरित्रसे ऊबकर वह सम्पत्तिका भार एक विश्वासी व्यक्तिपर छोड अज्ञात दिशाकी ओर चल दिया।

इधर कुमारी सुशीलाकी बुरी दशा थी। वह सूर्यपुराके उद्यानके एक बगलेमे मूर्छित पडी थी। उदयसिहने उसे यहाँ छुपा दिया था। क्रूर उदयसिहने सतीपर हाथ उठाना चाहा, किन्तु सुशीलाकी रौद्रमूर्ति और अद्भुत साहसको देखकर हक्का-बक्का रह गया। रेवती उसकी प्यारी सखी थी, उसने सुशीलाको मुक्त करनेके लिए नाना षड्यन्त्र किये पर सुशीलाका पता न चला।

जयदेव जब कचनपुरसे लौट रहा था कि रास्तेमे भूपसिहसे मुलाकात हो गयी। दोनो सुशीलाका पता लगानेके लिए व्यग्र थे। उदयसिहकी ओर-से दोनोको आशका थी। भूपसिहने झट पता लगा लिया कि उदयसिहके बागके एक बगलेमे सुशीला एकान्तवास कर रही है। मालिनके वेषमे जयदेव उसके निकट पहुँचा और दोनोका परस्पर मिलन हो गया।

जयदेव, सुशीला और भूपसिंह पुनः विजयपुरकी तरफ रवाना हुए। चतुर्दिशामे आनन्द छा गया, दुःखी माता-पिताको सान्त्वना मिली।

हीरालालकी पत्नी सुभद्रा पतिभक्ता और सुशीला थी, पर दुष्ट हीरालालने उसका यथोचित सम्मान नही किया। हीरालाल और रामकुँवरिकी बुरी दशा हुई, उनका काला मुख करके शहरमे घुमाया गया। सुभद्राका पुत्र सम्पत्तिका स्वामी बना।

विरागी रत्नचन्द्र दीक्षित होकर विमलकीर्त्ति मुनिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। अन्तमे श्रीचन्द्र, विक्रमसिंह और भूपसिंहके पिता रणवीरसिंहको भी वैराग्य हो गया। महारानी मदनवेगा और विद्यावती भी आर्यिका हो गयी।

इस उपन्यासमे पात्रोकी सख्या अत्यधिक है, पर पुरुषपात्रोमे जयदेव, रत्नचन्द्र, हीरालाल, भूपसिंह, उदयसिंह आदि और नारी-पात्रोमे सुशीला, रामकुँवरि, सुभद्रा और रेवती प्रधान है। इन पात्रोके चरित्र-विश्लेषणपर ही कथा स्तम्भ खडा किया गया है।

पात्र

जयदेव उच्चकुलीन राजपुत्र है। विपत्तिमे सुमेरुके समान दृढ और सहनशील है। उत्तरदायित्वको निभानेमे दृढ, निष्कपट और ब्रह्मचारी है। पत्नीके प्रति अनुरक्त है, जी-तोड श्रम करनेसे विमुख नही होता है।

रत्नचन्द्र अपने नगरका प्रसिद्ध जोहरी है। न्याय और कर्त्तव्यपरायण होनेसे ही नगरमे उसका अपूर्व सम्मान है। मनुष्य परखनेकी कलामे भी यह उतना ही कुशल है, जितना रत्न परखनेकी कलामे। आदर्श और सदाचारको यह जीवनके लिए आवश्यक तत्त्व मानता है। जब दुश्चरित्रका साक्षात्कार उसे हो जाता है, वह विरक्त हो दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

हीरालाल व्यसनी, व्यभिचारी और क्रूर प्रकृतिका है। अपनी सौतेली माँके साथ दुष्कर्म करते हुए इसे किसी भी तरहकी हिचकिचाहट

नहीं। पाप-पुण्यका महत्त्व इसकी दृष्टिमें नगण्य है। विचार और विवेकसे इसे छूआ-छूत नहीं है।

उदयसिंह एक साहूकारका पुत्र है, किन्तु वासनाने इसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। यह बलात्कारको बुरा नहीं मानता। लेखकने इन सभी पुरुष पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें औपन्यासिक कलाकी उपेक्षा उपदेशक या धर्म-शास्त्रज्ञ होनेका ही परिचय दिया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे किसी भी पात्रका चरित्र चित्रित नहीं हुआ है।

स्त्रीपात्रोंके चरित्रमें एक ओर सुशीला जैसी आदर्श रमणीका चारित्रिक विकास अंकित किया गया है, तो दूसरी ओर रामकुँअरि जैसी दुराचारिणी नारीका चरित्र। दोनों ही चरित्रोंका विश्लेषण यथार्थ रूपसे किया गया है तथा पाठकोंके समक्ष जीवनके दोनों ही पक्ष उपस्थित किये हैं।

यह उपन्यास एक ओर आदर्श जीवनकी झाँकी देकर नैतिक उत्थानका मार्ग प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर कुत्सित जीवनका नंगा चित्र खींचकर कुपथगामी होनेसे रोकनेकी शिक्षा देता है। सदाचारके प्रति आकर्षण और दुराचारके प्रति गर्हणा उत्पन्न करनेमें यह रचना समर्थ है। कलाकी दृष्टिसे भी यह उपन्यास सफल है। इसमें भावनाएँ सरस, स्वाभाविक और हृदयपर चोट करनेवाली हैं। कथाका प्रवाह पाठकके उत्साह और अभिलाषाको द्विगुणित करता है। समस्त जीवनके व्यापार शृंखलाबद्ध और चरित्र-निर्माणके अनुकूल हैं। सबसे बड़ी विशेषता इस उपन्यासकी यह है कि इसका कलेवर व्यर्थके हाव भावोंसे नहीं भरा गया है, किन्तु जीवनके अन्तर्बाह्य पक्षोंका उद्घाटन बड़ी खूबीसे किया गया है।

धार्मिक शिक्षाओंका बाहुल्य होनेपर भी कथाकी सरसतामें विरोध नहीं आने पाया है। आरम्भसे अन्ततक उत्सुकता गुण विद्यमान है। हाँ, धार्मिक सिद्धान्त रसानुभूतियोंमें बाधक अवश्य हैं।

इसकी शैली प्रौढ है। काव्यका सौन्दर्य झलकता है तथा भावनाओं-को घटनाओंके साथ साकार रूपमे दिखलाया गया है। प्राकृतिक चित्रणो द्वारा कही-कही भावोको साकार बनानेकी अद्भुत चेष्टा की गयी है। इसमे अलकारोका आकर्षक प्रयोग, चित्रमय वर्णन, अभिनयात्मक कथोपकथन विद्यमान है जिससे प्रत्येक पाठकका पूरा अनुरजन करता है। भाषा विशुद्ध और परिमार्जित है, मुहावरे और सूक्तियोंके प्रयोगने भाषाको और भी जीवट बना दिया है।

श्री वीरेन्द्रकुमार जैन एम० ए०का यह श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमे कुतूहलवृत्ति और रमणवृत्ति दोनोकी परितुष्टिके लिए घटना-चमत्कार और

मुक्तिदूत[1]

भावानुभूतिका सुन्दर समन्वय किया गया है। इसमे पवनजयके आत्मविकास और आत्मसिद्धिकी कथा है। 'अह'के अन्धकारागारसे पुरुषको नारीने अपने त्याग, बलिदान, वात्सल्य और आत्मसमर्पणके प्रकाश-द्वारा मुक्त किया है।

मुक्तिदूतका कथानक पौराणिक है। कुमार पवनजय आदित्यपुरके महाराज प्रह्लादके एकमात्र पुत्र हैं। एक बार माता-पितासहित पवनजय

कथानक

कैलाशकी यात्रासे लौटकर मार्गमे मानसरोवरके तट-पर ठहर गये। एक दिन मानसरोवरकी अपार जल-राशिमे क्रीडा करते हुए पवनजयने पासके श्वेत महलकी अट्टालिकापर राजा महेन्द्रकी पुत्री अजनाको देखा, उसकी कोमल आह सुनी और लौट आये प्रेमके मधुभारसे दबकर। उनकी व्यथा समझकर उनका अभिन्न मित्र प्रहस्त उन्हे अजनाके राज्य-प्रासादपर विमान-द्वारा ले गया। वहाँ सखियोंमे हास-परिहास चल रहा था। अजना पवनजयके ध्यानमे ही निमग्न थी। उसकी अभिन्न सखी वसन्तमाला पवनजयकी प्रशसा कर रही थी। पवनजयकी प्रशसासे चिढकर मिश्रकेशी नामकी अजनाकी

---

१. प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

सखीने हेमपुरके युवराज विद्युत्प्रभकी प्रशसा की। अजना पवनजयके ध्यानमे लीन होनेके कारण कुछ भी नही सुन सकी। ध्यान टूटनेपर हर्षके आवेशमे उसने अपनी सखियोको नृत्य-गान करनेकी आज्ञा दी। अजनाकी इस तन्मयता और भाव-विभोरताका अर्थ पवनजयने यह लगाया कि यह विद्युत्प्रभसे प्रेम करती है, इसीसे उसका नाम सुनकर नृत्य-गानकी आज्ञा दे रही है। अपने नामका अपमान सहन न कर सकनेके कारण क्रोधित हो उल्टे पॉव वहॉसे वे दोनो चले आये और प्रात.काल माता-पितासे बिना कुछ कहे ससैन्य प्रस्थान कर दिया।

अजनाके पिता महेन्द्र पहले ही अजनाकी शादी पवनञ्जयसे नियत कर चुके थे। अतः उनके कूच करनेसे वह अत्यन्त दुःखी हुए। महाराज प्रह्लादको जब यह समाचार मिला तो वह प्रहस्तको साथ लेकर पुत्रको लौटाने गये। प्रहस्तके द्वारा अधिक समझाये जानेपर पवनञ्जय वापस लौट आये। उन्होने अजनाके साथ विवाह भी कर लिया, पर आदित्यपुर लौटनेपर उसका परित्याग कर दिया। स्वय ही पवनञ्जय अपने अहभाव के कारण उन्मत्त रहने लगे। माता-पिता, प्रजा, प्रहस्त और अजना सभी दु'खी थे, विवश थे। यद्यपि माता-पिताने पुत्रसे दूसरा विवाह करनेका भी आग्रह किया, पर उन्होने अस्वीकृत कर दिया।

पातालद्वीपके अभिमानी राजा रावणने एकबार वरुणद्वीपके राजा वरुणपर आक्रमण किया और अपनी सहायताके लिए माण्डलिक राजा प्रह्लादको बुलाया। पिताको रोककर स्वय पवनञ्जयने प्रस्थान किया। मार्गमे उन्हे मगल-कलश लिये अजना मिली, वे उसे धिक्कार कर चले गये। मार्गमे जब सैन्य-शिविर मानसरोवरके तटपर स्थिर हुआ तो एक चकवीको चकवेके वियोगमे तडफते देख वह वेदनासे भर गये और अजनाकी वेदना याद आ गयी। उसी समय प्रहस्तके साथ विमान-द्वारा अजनाके महलमे गये और प्रातःकाल शिविरमे लौट आये। अंजना-द्वारा

प्रेरित हो उन्होने अन्यायी रावणके विरुद्ध वरुणकी सहायता कर रावणको परास्त किया।

इधर आदित्यपुरमे गर्भवती अजनाको कुलटा समझकर महारानी केतुमती—पवनञ्जयकी माँने उसको घरसे निकाल दिया। वहाँसे निराश्रय हो जानेपर सखी वसन्तमालाने महेन्द्रपुर जाकर अजनाके लिए आश्रय देनेकी प्रार्थना की, पर वहाँ आश्रय न मिल सका। अत' वे दोनो वनमे चली गयी। यही एक गुफामे अजनाने एक यशस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया। एक दिन हनूरुह द्वीपके राजा प्रतिसूर्य जो अजनाके मामा थे, उस बीहड वनमे आये और उसका परिचय प्राप्त कर अपने घर ले गये। वही उसके पुत्रका नाम हनूमान रखा गया।

विजयी होकर जब पवनञ्जय आदित्यपुर लौटे तो अजनाका समाचार जानकर वह अत्यन्त दुखी हुए और चल पडे उसकी खोजमे। जब अजनाको यह समाचार मिला तो वह अधिक चिन्तित हुई। प्रतिसूर्य, प्रह्लाद आदि सभी पवनञ्जयको ढूँढने चले। अन्तमे वे सब पवनञ्जयको ढूँढकर ले आये और अजना-पवनञ्जयका मिलन हो गया। पवनञ्जयको मिला एक नन्हा बालक 'मुक्तिदूत-सा'।

यही मुक्तिदूतका कथानक है। यह कथानक पद्मपुराण, हनूमच्चरित आदि कई पुराणोमे पाया जाता है। प्रतिभाशाली लेखकने इस पौराणिक कथानकमे अपनी कल्पनाका यथेष्ट समावेश किया है। यहाँ प्रधान-प्रधान कल्पनाओपर प्रकाश डाला जायगा।

१—पद्मपुराणमे बतलाया गया है कि जब मिश्रकेशीने विद्युत्प्रभकी प्रशसा की तो पवनञ्जयने क्रोधसे अभिभूत होकर अजना और मिश्रकेशीका सिर काटना चाहा, किन्तु प्रहस्तके रोकनेपर वह शान्त हुए। मुक्तिदूतमे पवनञ्जयको इतना क्रोधाभिभूत न दिखलाकर नायकके चरित्रको महत्ता दी गयी है। हाँ, नायकका 'अहभाव' अपनी निन्दा सुनकर अवश्य जाग्रत हो गया है।

२—पुराणके पवनञ्जय मानसरोवरसे प्रस्थान करनेपर पुनः पिताकी आज्ञासे लौटे, पर उपन्यास-लेखकने प्रहस्त मित्र-द्वारा उन्हें लौटवाया है।

३—वरुण और रावणके युद्ध-प्रसंगमें पुराणकारने वरुणको दोषी ठहराकर पवनञ्जय-द्वारा रावणको सहायता दिलायी है, पर मुक्तिदूतके लेखकने रावणको अपराधी बताकर पवनञ्जय-द्वारा वरुणको सहायता दिलायी है और रावणको परास्त कराया है।

४—केतुमती-द्वारा निर्वासित होकर महेन्द्रपुर पहुँच जानेपर अजना और वसन्तमाला दोनोंका राजा महेन्द्रके पास जानेका पुराणमें उल्लेख किया गया है, परन्तु वीरेन्द्रजीने केवल वसन्तके जानेका ही उल्लेख किया है। इस कल्पना-द्वारा उन्होंने अजनाके सहज मानकी रक्षा की है। अजना-की खोजमें व्यस्त पवनञ्जय और प्रहस्तके वर्णनमें भी दोनोंके महेन्द्रपुर जानेका उल्लेख पुराणकारने किया है, पर मुक्तिदूतमें केवल प्रहस्तके जानेका कथन है।

५—कुमार पवनञ्जय जब अजनाकी खोजमें गये, तब उनके साथ प्रिय हाथी अम्बरगोचरके भी रहनेका वर्णन पुराणमें मिलता है, पर मुक्तिदूतमें इसको स्थान नहीं दिया गया है।

इस प्रकार लेखकने कथाकी पौराणिकताकी सीमामें कल्पनाको मुक्त रखा है, जिससे कथावस्तुमें स्वभावतः सुन्दरता आ गयी है। किन्तु एक बात इसके कथानकमें बहुत खटकती है, और वह है कथानकका अधिक विस्तार। यही कारण है कि जहाँ-तहाँ कथावस्तुमें शिथिलता आ गयी है। आरम्भके प्रासाद-सौन्दर्य वर्णनमें तथा अजनाके साज-सज्जाके वर्णनमें लेखकने रीतिकालका अनुसरण किया है। यदि यह वर्णन थोड़ा संक्षिप्त होता तो उपन्यासकी सुन्दरता और निखर उठती। इन प्रसंगोंको छोड़ अन्य प्रसंगोंका वर्णन संक्षिप्त, सरस तथा रमणीय है। इसी कारण सम्पूर्ण उपन्यासमें नवीनता, मधुरता और अनुपम कोमलता आ गयी है।

इस उपन्यासके प्रधान पात्र हैं—पवनञ्जय, अजना, वसन्तमाला और प्रहस्त। गौण पात्र हैं—प्रह्लाद, केतुमती, महेन्द्र और प्रतिसूर्य आदि।

पात्र

इनके चरित्र-चित्रणमे लेखकका रचना-कौशल चमक उठा है। नायक पवनञ्जयका चित्रण एक अहभावसे भरे ऐसे पुरुषके रूपमे किया गया है जो नारीकी कमीका अनुभव तो करता है, पर अभिमानके कारण कुछ न कहकर भीतर ही भीतर जलता हुआ उन्मत्त-सा घूमता है। पवनञ्जय अजनाके सौन्दर्यको देखकर मुग्ध तो हो जाते हैं किन्तु अजना विद्युत्प्रभ-से प्रेम करती है इस आशकाने उनके अहभावको ठेस पहुँचाई और वह तब तक घुलते रहे जब तक उनके अन्तरकी मानवता उस अहभावका बन्धन न तोड सकी। यह स्वच्छन्द वातावरणमे अकेले घूमनेके इच्छुक तथा स्वभावसे हठी है। अपने 'अह' को आच्छादित करनेके लिए दर्शन-की व्याख्या, विश्व-विजयकी इच्छा तथा मुक्तिकी कामना करते है। 'अह'के ध्वसके साथ ही उनकी मानवता दीप्त हो उठती है। जब तक वह नारीकी महत्ताको समझनेमे असमर्थ रहते है, तब तक उनमे पूर्णता नही आ पाती। अहके विनाश तथा मानवताके विकासके साथ ही वे नारीके वास्तविक स्वरूपसे परिचित हो जाते है, उनके चरित्रमे पूर्णता आ जाती है। रावण-वरुणके युद्ध-प्रसगमे उनकी वीरताका साकाररूप दृष्टि-गोचर होता है। अजनाका सामीप्य प्राप्तकर वे आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श मित्र एव आदर्श पिता बन जाते है। पवनञ्जयको लेखकने हृदयसे भावुक, मस्तिष्कसे विचारक, स्वभावसे हठी और शरीरसे योद्धा चित्रित किया है।

अजना तो इस उपन्यासकी केन्द्रबिन्दु ही है। इसका चित्रण लेखकने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढगसे किया है। पातिव्रतका आदर्श अस्त्र ले सहज प्रतिभासे युक्त वह हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। पति-द्वारा त्यक्त होनेका उसे शोक है, पर उसके हृदयसे धैर्यकी अजस्र धारा अनवरत प्रवाहित

होती रहती है। परित्यक्ता होकर भी वह अपने नियमोमे शिथिलता नही आने देती है। बाईस वर्षो तक तिल-तिलकर जलने पर जब पवनञ्जय उसके महलमे पधारते है तो वह अगाध दयामयी अपना अकद्वार उनके लिए प्रशस्त कर देती है। जब पवनञ्जय कहते है कि—"रानी! मेरे निर्वाणका पथ प्रकाशित करो"। तो वह प्रत्युत्तरमे कहती है—"मुक्तिका राह मै क्या जानूँ, मै तो नारी हूँ और सदा बन्धन ही देती आयी हूँ।" यहाँ पर नारी-हृदयका परिचय देनेमे लेखकने अपूर्व कौशलका परिचय दिया है।

अजनाके चरित्र चित्रणमे एकाध स्थलपर अस्वाभाविकता आ गयी है। गर्भभारसे दबी अजनाका अरण्यमे किशोरी बालिकाके समान दौडना नितान्त अस्वाभाविक है। हॉ, अजनाके धैर्य, सन्तोष, शालीनता आदि गुण प्रत्येक नारीके लिए अनुकरणीय है।

मित्ररूपमे प्रहस्त और वसन्तमालाका नाम उल्लेखनीय है। वसन्त-मालाका त्याग अद्वितीय है, अपनी सखी अजनाके साथ वह छायाकी तरह सर्वत्र दिखलायी पडती है। अजनाके सुखमे सुखी और दुःखमे वह दु.खी है। अजनाकी आकाक्षा, इच्छा उसकी आकाक्षा, इच्छा है। उसका अपना अस्तित्व कुछ भी नही है। सखीकी भलाईके लिए उसने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। इसी प्रकार प्रहस्तका त्याग भी अपूर्व है। लेखकने प्रधान पात्रोके सिवा गौण पात्रोमे राजा महेन्द्र, प्रह्लाद आदिके चरित्र-चित्रणमे भी पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

कथोपकथनकी दृष्टिसे इस उपन्यासका अत्यधिक महत्त्व है। पवनजय और प्रहस्तके वार्तालाप कुछ लम्बे है, पर आगे चलकर भाषणोमे सक्षिप्तताका पूरा खयाल रखा गया है। कथोपकथनो-द्वारा कथाकी धारा कितनी क्षिप्रगतिसे आगे बढती है, यह निम्न उद्धरणोसे स्पष्ट है—

कथोपकथन

"वह मोह था प्रहस्त, मनकी एक क्षण-भगुर उमग। निर्बलताके अतिरेकमें निकलनेवाला हर वचन निश्चय नही हुआ करता। और मेरी हर उमग मेरा बन्धन बनकर नही चल सकती। मोहकी रात्रि अब बीत चुकी है प्रहस्त। प्रमादकी वह मोहन-शय्या पवनजय बहुत पीछे छोड आया है। कल जो पवनजय था आज नहीं है। अनागतपर आरोहण करनेवाला विजेता, अतीतकी साँकलोसे बँधकर नही चल सकता। जीवनका नाम है प्रगति। ध्रुव कुछ नहीं है प्रहस्त,—स्थिर कुछ नहीं है। सिद्धात्मा भी निज रूपमें निरन्तर परिणमनशील है। ध्रुव है केवल मोह—जडताका सुन्दर नाम—।"

"तो जाओ पवन, तुम्हारा मार्ग मेरी बुद्धिकी पहुँचनेके बाहर है। पर एक बात मेरी भी याद रखना—तुम स्त्रीसे भागकर जा रहे हो। तुम अपने ही आपसे पराभूत होकर आत्म-प्रतारणा कर रहे हो। घायलके प्रलापसे अधिक, तुम्हारे इस दर्शनका मूल्य नही। यह दुर्बलकी आत्म-वचना है, विजेताका मुक्तिमार्ग नहीं है"।

शैली इस उपन्यासकी कथावस्तुको प्रकट करनेके लिए लेखकने दो प्रकार-की शैलियोका प्रयोग किया है—बोझिल और सरल।

पवनजय और अजनाके प्रथम मिलनके पूर्वकी शैली बोझिल है। भाषा इतनी अधिक सस्कृतनिष्ठ है, जिससे गद्यकाव्य का-सा शब्दाडम्बर-सा प्रतीत होता है। पढते-पढते पाठक ऊब सा जाता है और बीचमे ही अपने धैर्यको खो देता है। वाक्य लबे होनेके कारण अन्वयमे क्लिष्टता है, जिससे उपन्यासमे भी दर्शनके तुल्य मनोयोग देना पडता है।

मिलनेके बादकी शैली सरल है, प्रवाहयुक्त है। अभिव्यक्ति सरल, स्पष्ट और मनोरजक है। सस्कृतके तत्सम शब्दोके साथ प्रचलित विदेशी शब्दोका व्यवहार भाषामे प्रवाह और प्रभाव दोनो उत्पन्न करता है। मुक्तिदूतकी भाषा प्रसादकी भाषाके समान सरस, प्राञ्जल और प्रवाहयुक्त

है। हिन्दी उपन्यासोंमें प्रसादके पश्चात् इस प्रकारकी भाषा और शैली कम उपन्यासोंमें मिलेगी। वस्तुतः वीरेन्द्रजीका मुक्तिदूत भाषासौष्ठवके क्षेत्रमें एक नमूना है।

उद्देश्य

मुक्तिदूत जीवनकी व्याख्या है। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने प्रस्तावनामें इस उपन्यासका उद्देश्य प्रकट करते हुए लिखा है—"आजकी विकल मानवताके लिए मुक्तिदूत स्वयं मुक्तिदूत है।"

इसके पात्रोंको लेखकने प्रतीक रूपमें रखा है। अंजना प्रकृतिकी प्रतीक है, पवनञ्जय पुरुषका, उसका अहंभाव मायाका और हनूमान ब्रह्मका। आजका मनुष्य अपने अहं (माया) के कारण अपनेको बुद्धिमान तथा शक्तिशाली समझ अपने बुद्धिवादके बलपर विज्ञानकी उत्पत्ति द्वारा प्रकृतिपर विजय पाना चाहता है, पर प्रकृति दुर्जेय है।

भौतिकवाद और विज्ञानवादके कारण हिंसा, द्वेषकी अग्नि भड़क रही है, युद्धके शोले जल रहे हैं। इसीसे हर व्यक्तिका मन अशान्त है, क्षुब्ध है, विकल है। पर अपने मिथ्याभिमानके कारण वह प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेके लिए नित्य नये-नये आविष्कार करनेमें संलग्न है। प्रकृति उसके इन कार्य कलापोंसे शोकाकुल है तथा पुरुषकी अल्प शक्तिका उपहास करती हुई कहती है—"पुरुष (मनुष्य) सदा नारी (प्रकृति) के निकट बालक है। भटका हुआ बालक अवश्य एक दिन लौट आयेगा।"

होता भी ऐसा ही है। जब भौतिक संघर्षोंसे मनुष्य आकुल हो उठता है, तब प्रकृतिकी महत्तासे परिचित होता है और उसकी विरामदायिनी गोदमें चला जाता है। मृदुलताकी अक्षयनिधि प्रकृति उसे अपने सुकोमल अंकमें भर लेती है। इसी समय मनुष्यके समक्ष मानवताका वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत होता है। मानवको प्रकृति द्वारा प्रेरित कर तथा

अहिंसक बनाकर लेखकने बताया है कि तृतीय महायुद्धकी विभीषिका अहिंसा और संयमसे दूर की जा सकती है।

अन्यायका दमनकर मनुष्य पुनः प्रकृतिके समीप आता है और तब उसे हनूमानरूपी ब्रह्मकी प्राप्ति[1] होती है। हर्षातिरेकसे "प्रकृति पुरुषमें लीन हो गयी, पुरुष प्रकृतिमें व्यक्त हो उठा।" जिससे प्रकृतिकी सहज सहायतासे मनुष्यका साथ ब्रह्मसे सदा बना रहे। प्रकृति और पुरुषके मिलनकी शीतल अमियधाराने शीतलताका स्निग्ध प्रवाह प्रवाहित किया, जिससे चारों ओर शान्ति तथा सुखके शतदल विकसित हो उठे।

आजकी व्यस्त मानवतारूपी दानवताके लिए यही मूलमन्त्र है। जब मनुष्य विज्ञानके विनाशकारी आविष्कारोंका अंचल छोड़कर सृजनमयी प्रकृतिको पहचानेगा, तभी उसे भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपकी प्राप्ति होगी और विश्वमें मानवताकी चिर समृद्धि कर सकेगा।

इन दृष्टियोंसे पर्यवेक्षण करनेपर अवगत होता है कि यह उपन्यास उच्चकोटिका है। लेखकने मानवताका आदर्श त्याग, संयम और अहिंसाके समन्वयमें बतलाया है। औपन्यासिक तत्त्वोंकी दृष्टिसे भी दो-एक त्रुटियोंके सिवा अन्य बातोंमें श्रेष्ठ है। भाव, भाषा और शैलीकी दृष्टिसे यह उपन्यास बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।

श्री नाथूराम 'प्रेमी' ने भी बंगलाके कतिपय उपन्यासोंका हिन्दी अनुवाद किया है। प्रेमीजी वह प्रतिभाशाली कलाकार हैं कि आपकी प्रतिभाका स्पर्श पाकर मिट्टी भी स्वर्ण बन जाती है।

मुनिराज श्री विद्याविजयने 'राणी-सुलसा' नामक एक उपन्यास लिखा है। इसमें सुलसाके उदात्त चरित्रका विश्लेषण कर लेखकने पाठकोंके समक्ष एक नवीन आदर्श उपस्थित किया है। भाषा और कलाकी दृष्टिसे इसमें पूर्ण सफलता लेखकको नहीं मिल सकी है।

---

१. ब्रह्मप्राप्तिका अर्थ आत्मशुद्धि है।

कथा-साहित्य

सभी जाति और धर्मोके साहित्यमे सदासे कहानियोकी प्रधानता रही है। इसका प्रधान कारण यह है कि मानव कथाओमे अपनी ही भावना और चरित्रका विश्लेषण पाता है, इसलिए उनके प्रति उसका आकर्षित होना स्वाभाविक है। जैन साहित्यमे आजसे दो हजार वर्ष पहलेकी जीवनके आदर्शको व्यक्त करनेवाली कथाएँ वर्तमान है।

जैन आख्यानोमे मानव जीवनके प्रत्येक पहलूका स्पर्श किया गया है, जीवनके प्रत्येक रूपका सरस और विशद विवेचन है तथा सम्पूर्ण जीवनका चित्र विविध परिस्थिति-रगोसे अनुरञ्जित होकर अकित है। कही इन कथाओमे ऐहिक समस्याओका समाधान किया गया है तो कही पारलौकिक समस्याओका। अर्थनीति, राजनीति, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो, कला-कौशलके चित्र, उत्तुङ्गगिरि, अगाध नद नदी आदि भूवृत्तोका लेखा, अतीतके जल-स्थल मार्गोके सकेत भी जैन कथाओमे पूर्णतया विद्यमान है। ये कथाएँ जीवनको गतिशील, हृदयको उदार और विशुद्ध एव बुद्धिको कल्याणके लिए उत्प्रेरित करती है। मानवको मनोरजनके साथ जीवनोत्थानकी प्रेरणा इन कथाओसे सहज रूपमे प्राप्त हो जाती है।

प्राचीन साहित्यमे आचाराग, उत्तराध्ययनाग, उपासकदशाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग, अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग, पद्मचरित्र, सुपार्श्वचरित्र, ज्ञातृधर्मकथाङ्ग आदि धर्म-ग्रन्थोमे आयी हुई कथाएँ प्रसिद्ध है। हिन्दी जैन साहित्यमे सस्कृत और प्राकृतकी कथाओका अनेक लेखक और कवियोने अनुवाद किया है। एकाध लेखकने पौराणिक कथाओका आधार लेकर अपनी स्वतन्त्र कल्पनाके मिश्रण-द्वारा अद्भुत कथा-साहित्यका सृजन किया है। इन हिन्दी कथाओकी शैली बडी ही प्राञ्जल, सुबोध और मुहावरेदार है। ललित लोकोक्तियॉ, दिव्यदृष्टान्त और सरस मुहावरोका प्रयोग किसी भी पाठकको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए पर्याप्त है।

अधिकाश जैन कहानियाँ व्रतोकी महत्ता दिखलाने और व्रतपालन करनेवालेके चरित्रको प्रकट करनेके लिए लिखी गयी है। सम्यत्तवकौमुदी-भाषा, वरागकुमार चरित्र, श्रीपालचरित्र, धन्यकुमार चरित्र आदि कथाएँ जीवनकी व्याख्यात्मक है। अनन्तव्रत कथा, आदित्यवार कथा, पञ्च-कल्याणकव्रत कथा, निशिभोजन त्यागव्रत कथा, शील कथा, दर्शन कथा, दान कथा, श्रुतपञ्चमीव्रत कथा, रोहिणीव्रत कथा, आकाश पञ्चमी कथा, आदि कथाएँ एक विशेष दृष्टिकोणको लेकर लिखी गयी है।

सम्यत्तव कौमुदी धार्मिक तथा मनोरजक कथाओका सग्रह है। इसमे मथुराका सेठ अर्हद्दास अपने सम्यत्तवलाभकी कथा अपनी आठ पत्नियोको सुनाता है। कुन्दलताको छोडकर शेष सभी स्त्रियाँ उसके कथनपर विश्वास करती है। सेठकी अन्य सात स्त्रियाँ भी अपने-अपने सम्यत्तवलाभकी बात सुनाती है। कुन्दलता इनका भी विश्वास नही करती है। इस नगर-का राजा उदितोदय, मन्त्री सुबुद्धि और सुपर्णखुर चोर भी छुपकर इन कथाओको सुनते हैं। उन्हे इन घटनाओपर विश्वास होता जाता है। राजा कुन्दलताके विश्वास न करनेसे क्षुब्ध है। अन्तमे कुन्दलता भी इन कथाओसे प्रभावित हो जाती है। सेठ अर्हद्दास, राजा, मन्त्री, सेठकी स्त्रियाँ, रानी, मन्त्रिपत्नी सबके सब जैनदीक्षा ले लेते है। कुन्दलता भी इनके साथ दीक्षित हो जाती है। तपस्याके प्रभावसे कोई निर्वाण प्राप्त करता है, तो कोई स्वर्ग।

मुख्य कथाके भीतर एक सुयोधन राजाकी कथा भी आयी है और उसीके अन्दर अन्य सात मनोरजक और गम्भीर सकेतपूर्ण कहानियाँ समाविष्ट है।

जैन हिन्दी कथा साहित्य दो रूपोमे उपलब्ध है—अनूदित और पौराणिक आधार पर मौलिक रूपमे रचित।

अनूदित कथा साहित्य विशाल है। प्राय. समस्त जैन कथाएँ प्राचीन

और अर्वाचीन हिन्दी गद्यमे अनूदित की जा चुकी है। आराधना कथा-कोश, बृहत्कथाकोश, सप्तव्यसन चरित्र और पुण्यास्रवकथाकोशके अनुवाद कथा साहित्यकी दृष्टिसे उल्लेख योग्य है। उपर्युक्त ग्रन्थोमे एक साथ अनेक कथाओका सकलन किया गया है और ये सभी कथाएँ जीवनके मर्मको स्पर्श करती है। यद्यपि इन कथाओमे आजका रग और टीप-टाप नही है तो भी जीवनके तारोको झकृत करनेकी क्षमता इनमे पूर्ण रूपसे विद्यमान है।

आराधनाकथा कोश[1]

यह कई भागोमे प्रकाशित हुआ है। इसके अनुवादक उदयलाल काशलीवाल है। प्रथम भागमे २४ कथाएँ, द्वितीय भागमे ३८ कथाएँ, तृतीय भागमे ३२ कथाएँ और चतुर्थ भागमे २७ कथाएँ हैं। अनुवाद स्वतन्त्ररूपसे किया गया है। अनुवादकी भाषा सरल है। कथाएँ सभी रोचक है, अहिंसा सस्कृतिकी महत्ता व्यक्त करती है तथा पुण्य-पापके फलको जनताके समक्ष रखती है। यदि इन कथाओको आजकी शैलीमे जनताके समक्ष रखा-जाय, तो निश्चय ही जैन साहित्यके वास्तविक गौरवको जनसाधारण हृदयगम कर सकेगा।

बृहत्कथाकोश[2]

इसके दो भाग अभी तक प्रकाशित हो चुके है, कुल कथाएँ चार भागोमे प्रकाशित की जा रही है। प्रथम भागमे ५५ कथाएँ और द्वितीय भागमे १७ कथाएँ है। इसके अनुवादक प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य है। अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है, भाषा सरल और सुसम्बद्ध है। अनुवादकने मूल भावोको अक्षुण्ण रखते हुए भी रोचकताको नष्ट नही होने दिया है।

---

१. प्रकाशक—जैनमित्र कार्यालय हीराबाग, बम्बई।

२. प्रकाशक—भा० दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा।

जैन आगमकी पुरानी कथाओको हिन्दी भाषामे सरल ढगसे श्री डा० जगदीशचन्द्र जैनने लिखा है। इस सग्रहमे कुल ६४ कहानियाँ है, जो तीन भागोमे विभक्त है—लौकिक, ऐतिहासिक और धार्मिक। पहले भाग मे ३४, दूसरेमे १७ और तीसरेमे १३ कहानियाँ है। लौकिक कथाओंमे उन लोक-प्रचलित कथाओंका सकलन है, जो प्राचीन भारतमे बिना सम्प्रदाय और वर्ग भेद-के जनसाधारणमें प्रचलित थी। इस वर्गकी कथाओमे कई कहानियाँ सरस, रोचक और मर्मस्पर्शी है। कल्पना शक्ति और घटना-चमत्कार इन कथाओमे पूरा विद्यमान है। अतः कलाकी दृष्टिसे भी इन कहानियोका महत्त्व है।

[1]दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ

ऐतिहासिक कहानियोंमे भगवान् महावीरके समकालीन अनेक राजा-रानियोकी कहानियाँ दी गयी है। इनमे जीवनमे घटित होनेवाले व्यापारो-के सहारे राजा-रानियोके चरित्रोका विश्लेषण किया गया है। यद्यपि जीवन-सम्बन्धी गम्भीर विवेचनाएँ, जो नाना व्यापारोमे प्रकट होकर जीवनकी गुत्थियो पर प्रकाश डालती है, इनमे नही है, तो भी कथानककी सरसता पाठकको रसमग्न कर ही लेती है।

धार्मिक विभागकी कहानियाँ धर्म-प्रचारके उद्देश्यसे लिखी गई है। इन कहानियोसे स्पष्ट है कि अनेक चोर और डाकू भी भगवान् महावीरके धर्ममे दीक्षित हुए थे। तृष्णा, लोभ, क्रोध, मान, माया आदि विकार मानवके उत्थानमे बाधक है। व्यक्ति या समाजका वास्तविक हित सदा-चार, सयम, समभाव, त्याग आदिसे ही सम्भव है। इस सकलनकी कहा-नियो पर प्रकाश डालते हुए भूमिकामे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखा है—"सग्रहीत कहानियाँ बडी सरस है। डा० जैनने इन कहानियों को बडे सहज ढगसे लिखा है। इसलिए ये बहुत सहजपाठ्य हो गई

---

1 प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

है। इन कहानियोंमे कहानीपनकी मात्रा इतनी अधिक है कि हजारो वर्षसे, न जाने कहनेवालोंने इन्हें कितने ढगसे और कितनी प्रकारकी भाषामे कहा है फिरभी इनका रसबोध-ज्योंका त्यो बना है। साधारणत. लोगोका विश्वास है कि जैन साहित्य बहुत नीरस है। इन कहानियोको चुनकर डॉ० जैनने यह दिखा दिया है कि जैनाचार्य भी अपने गहन तत्त्वविचारोको सरस करके कहनेमे अपने ब्राह्मण और बौद्ध साथियोसे किसी प्रकार पीछे नही रहे है। सही बात तो यह है कि जैन पंडितोने अनेक कथा और प्रबन्धकी पुस्तकें बडी सहज भाषामे लिखी है।"

इस सग्रहकी कहानियॉ सरस और रोचक है। डा० जगदीशचन्द्र जैन ने पुरातन कहानियोको ज्योका त्यो लिखा है, कहानी कलाकी दृष्टिसे चमत्कारपूर्ण दृश्य योजना और कथोपकथनको प्रभावक बनानेकी चेष्टा नही की है। अतएव सग्रह भी एक प्रकारसे अनुवाद मात्र है।

पुरातन कथानकोको लेकर श्री बाबू कृष्णलाल वर्माने स्वतन्त्ररूपसे कुछ कथाएँ लिखी है। इन कथाओमे कहानी-कला विद्यमान है। इनमे वस्तु, पात्र और दृश्य (Background or Atmosphere) ये तीनो मुख्य अङ्ग सतुलित रूपमे है। सरलता, मनोरजकता और हृदय स्पर्शिता आदि गुणोका समावेश भी यथेष्ट रूपमे किया गया है। नीचे आपकी कतिपय कथाओका विवेचन किया जाता है।

खनककुमार[1]

यह कहानी बडी ही मर्मस्पर्शी है। इसमे एक ओर मोहाभिभूत प्राणियोके अत्याचार उमड-घुमडकर अपनी पराकाष्ठा दिखलाते हुए दृष्टिगोचर होते है, तो दूसरी ओर सहनशीलता और क्षमाकी अपरिमित शक्ति। आज, जब कि आचार और धर्म एक खिलवाड और ढकोसला समझे जा रहे है, यह कहानी अत्यन्त उपादेय है।

---

१. प्रकाशक—आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अंबाला शहर।

सेवती नामक नगरके राजा कनककेतुकी प्रिया मनसुन्दरीने एक प्रतिभाशाली, वीर पुत्रको जन्म दिया। यह बालक बचपनसे ही भावुक सदाचारी और बुद्धिमान् था। दो-तीन वर्षकी अवस्थासे ही माता-पिताके साथ पूजा-भक्तिमे शामिल होता था।

कथानक

युवा होनेपर ससारके विषय-भोगोंसे खनककुमारको विरक्ति हो गयी। माताके वात्सल्य और पिताके आग्रहने बहुत दिनोंतक उन्हे घरमे रोक रखा, पर एक दिन वह सब कुछ छोड दिगम्बर दीक्षा ले आत्म-कल्याणमे लग गये। जब खनककुमार एकाकी विचरण करते हुए अपनी बहन देवबालाकी ससुराल पहुँचे तो भाईको इस वेषमे देखकर बहनकी ममता फूट पडी। भयकर कडकडाते जाडेमे नग्न रहनेकी कल्पना मात्रसे ही उसको कष्ट हुआ। वह सोचने लगी—हाय! मेरे भाईको कितना कष्ट है, यह राजपुत्र होकर इस प्रकारके दु खोको कैसे सहन करेगा?

चिन्तित रहनेके कारण ही देवबालाका मन सासारिक भोगोसे उदासीन रहने लगा। जब इसके पतिको भार्याकी उदासीनताका कारण मुनि प्रतीत हुआ तो उसने जल्लादो-द्वारा मुनिकी खाल निकलवा ली। मुनि खनककुमारने इस अवसरपर अपनी दृढता, क्षमा और अहिसा-शक्तिका अपूर्व परिचय दिया है। उनकी अद्भुत सहनशीलताके कारण उन्हे कैवल्यकी प्राप्ति हुई।

इस कथामे करुण-रसका परिपाक इतना सुन्दर हुआ कि पाषाण-हृदय भी इसे पढकर आसू गिराये विना नही रह सकता है। यद्यपि प्रवाहमे शिथिलता है, कथोपकथन भी जीवट नही है। मुख्यकथाके सहारे अवान्तर कथानक भी घुसेड दिये गये है, जिससे शैलीमे सजीवता नहीं आने पायी है। वाक्यगठन अच्छा हुआ है। छोटे छोटे अर्थपूर्ण वाक्यो-का प्रयोगकर वर्माजीने कथाके माध्यम-द्वारा धर्मोंकी व्याख्या भी जहाँ तहाँ

कर दी है। यद्यपि इस प्रयासमे कहीं-कहीं उन्हे कथाकारके पदका उल्लघन करना पडा है, फिर भी कथाकी गतिमे रुकावट नहीं आने पायी है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे यह कथा सुन्दर है। खनककुमारका चारित्रिक विकास आरम्भमे ही दिखलाया गया है।

महासती सीता[1]

इसमे वर्माजीने नवीन भावकी योजना की है। पौराणिक आख्यान-को कल्पना-द्वारा चटपटा बनाकर सुस्वादु कर दिया है। महासती सीताके उज्ज्वल चरित्रकी झॉकी-द्वारा प्रत्येक पाठक अपने हृदयको पवित्र कर सकता है।

कथानक

मिथिला नगरीकी रानी विदेहाके गर्भसे युगल सन्तान—एक साथ दो बालक उत्पन्न हुए। सूप और थालीकी एक ही साथ झनकार हुई। अन्त.पुरमे और बाहर आनन्द मनाया जाने लगा। बाल सूर्य और चन्द्रके समान उनके तेजको देखकर राजा-रानीके आनन्दका ठिकाना न रहा। पर क्षणभर पहले जहॉ आनन्द-की लहरे उत्पन्न हो रही थीं, वहीं हृदय-वेधी हाहाकार सुनाई पडने लगा। ऑखोंके तारे पुत्रको कोई बडी चतुराईसे चुराकर ले गया। अनुसन्धान करनेपर भी बालकका पता न लग सका।

कन्याका नाम सीता रखा गया। जनक, युवती होनेपर सीताकी अप्रतिम रूप-राशिको देखकर उसके तुल्य वर प्राप्त करनेके लिए चिन्तित थे। जनकने योग्य वरकी तलाश करनेके लिए सैकडों राजकुमारोंको देखा, पर सीताके योग्य एक भी नहीं जचा।

बर्बर देशके म्लेच्छराजाके उपद्रवोंका दमन करनेके लिए जनक महाराजने अपनी सहायताके लिए अयोध्यानृपति महाराज दशरथको बुलाया। जब अयोध्यासे सेना जनककी सहायताके लिए प्रस्थान करने लगी तो रामने आग्रहपूर्वक महाराजसे सेनाके साथ जानेकी अनुमति ले ली। मिथिला पहुॅचकर रामने म्लेच्छ राजाओंपर आक्रमण किया और

1. प्रकाशक—आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अंबाला शहर।

उन्हे अपने वश कर लिया । रामके इस कार्यसे जनक बहुत प्रसन्न हुए और उन्हे सीताके योग्य वर समझ उन्हीके साथ सीताका विवाह करनेका निश्चय कर लिया ।

जब नारदने सीताके रूपकी प्रशंसा सुनी तो वह उसको देखनेके लिए मिथिला आये । नारद उस समय इतने आतुर थे कि राजाके पास न जाकर सीधे अन्तःपुरमें सीताके पास चले गये । सीता अपने कमरेमें अकेली ही थी, अत: वह उनके अद्भुत रूपको देखकर डर गयी तथा चिल्लाने लगी । अन्तःपुरके नौकरोंने नारदकी दुर्दशा की, जिससे अपमानित नारदने सीतासे प्रतिशोध लेनेकी भावनासे उसका एक सुन्दर चित्र खींचा और उसे चन्द्रगति विद्याधरके लडके भामण्डलको भेंट किया । भामण्डल उस चित्रको देखते ही मुग्ध हो गया । मदनज्वरके कारण वह खाना पीना भी भूल गया । पुत्रकी इस दशाको देखकर विद्याधरने नारदको अपने पास बुलाया और चित्रांकित कन्याका पता पूछा । नारदके कथनानुसार उस विद्याधरने विद्याके प्रभावसे महाराज जनकको रातमें सोते हुए अपने यहाँ बुला लिया । जब जनक जागे तो अपनेको एक अपरिचित स्थानमें पाकर पूछने लगे कि मै कहाँ आ गया हूँ ? चन्द्रपति विद्याधरने उससे सीताका विवाह भामण्डलके साथ कर देनेको कहा । महाराज जनकने बडी दृढतासे विद्याधरको उत्तर दिया । अन्तमें विद्याधरने 'वज्रावर्त' और 'अर्णवावर्त' नामक दो धनुष जनकको दिये और कहा कि सीता का स्वयंवर करो, जो स्वयंवरमे इन दोनों धनुषोंमेंसे एक धनुषको तोड देगा , उसीके साथ सीताका विवाह होगा । जनक किसी प्रकार विद्याधरकी शर्त मंजूर कर मिथिला आ गये और सीताका स्वयंवर रचा । रामने स्वयंवरमे धनुष तोडा और उन्हींके साथ सीताका विवाह हो गया ।

विवाहके उपरान्त कुछ ही दिनोंके बाद कैकेयीका वरदान माँगना और राजाका वनप्रयाण आता है । वनमे अनेक कारण-कलापोके मिलने-

पर सीताका हरण हो जाता है। लंकामें सीताको अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। हनूमान-द्वारा सीताका समाचार पाकर रामचन्द्र सुग्रीवकी सहायतासे रावणपर आक्रमण करते हैं और लंकाका विजयकर सीताको ले आते हैं। अयोध्यामें आनेपर सीतापर दोषारोपण किया जाता है, फलतः राम सीताको घरसे निर्वासित कर देते हैं। वज्रजंघके यहाँ सीता लवण और अंकुशको जन्म देती है, इन दोनोंका रामसे युद्ध होता है। परिचय हो जानेपर सीताकी अग्नि-परीक्षा ली जाती है। सतीके दिव्य तेजसे अग्नि जल बन जाती है और वह संसारकी स्वार्थपरता देखकर विरक्त हो जैनदीक्षा ले लेती है और तपस्या कर स्वर्ग पाती है।

इस कथामें कथोपकथन प्रभावशाली बन पड़े हैं। लेखकने चरित्र-चित्रणमें भी अपूर्व सफलता प्राप्त की है। संवाद कथाकी गतिको कितना प्रवाहमय बनाते हैं यह निम्न उद्धरणसे स्पष्ट है। नारद मनही मन बड़बड़ाते हुए कहते हैं—"हुँ! यह दुर्दशा यह अत्याचार! नारदसे ऐसा व्यवहार! ठीक है। व्याधियोंको देख लूँगा। सीता! सीता! तुझे धन यौवनका गर्व है, उस गर्वके कारण तूने नारदका अपमान किया है। अच्छा है! नारद अपमानका बदला लेना जानता है। नारद थोड़े ही दिनोंमें तुझे इसका फल चखायेगा और ऐसा फल चखायेगा कि जिससे कारण तू जन्मभरतक हृदय-वेदनासे जलती रहेगी।" इस प्रकार इस कहानीमें कथातत्त्वोंका यथेष्ट समावेश किया गया है।

इस रचनामें उत्सुकता गुण पर्याप्त मात्रामें विद्यमान है। लेखक वर्माजीने पौराणिक आख्यानमें भी कल्पनाका यथेष्ट सम्मिश्रण किया है।

सुरसुन्दरी[1] सुरसुन्दरी एक राजाकी कन्या है और अमरकुमार एक सेठका पुत्र। दोनों एक साथ अध्ययन करते हैं, दोनोंमें परस्पर आकर्षण उत्पन्न होता है और वे दोनों प्रेमपाशमें बँध जाते हैं। एक दिन कुमारी अपने पल्लेमें सात कौड़ियाँ बाँधकर ले जाती है

1. प्रकाशक—आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अंबाला शहर।

और अमरकुमार खोलकर मिठाई मँगाकर बाँट देता है। राजकुमारी कुमारके इस कृत्यसे क्रोधित होती है और कहती है कि सात कौड़ीमें राज्य प्राप्त किया जा सकता है।

दोनोंका विवाह हो जाता है। अमरकुमार व्यापार करने जाता है, साथमें सुरसुन्दरी भी। सिंहल द्वीपके वनमें जहाज रोककर दोनों गये। सुन्दरी अमरके घुटनोंपर सिर रखकर सो गयी। अमरको सुन्दरीके पूर्वके कटुवचन और अपना अपमान याद आया, अतः वह उसके सिरके नीचे पत्थर लगाकर वहीं सोता छोड़ चल दिया।

जब सुन्दरीकी निद्रा भंग हुई तो उसने अपने अंचलमें सात कौड़ियाँ बँधी पायीं, साथ ही एक पत्र, जिसमें लिखा था कि सात कौड़ियोंसे राज्य लेकर रानी बनो। सुन्दरीका क्षोभ जाता रहा और क्षत्रियत्व जागृत हो गया। उसकी आत्मा बोल उठी—"छि सुरसुन्दरी, नारी होकर तेरे यह भाव! पुरुषका धर्म कठोरता है, नारीका धर्म कमनीयता और कोमलता। पुरुषका कार्य निर्दयता है तो स्त्रीका कार्य धर्म-दया"। इसके पश्चात् वह निश्चय करती है कि मैं क्षत्रिय सन्तान हूँ, इस प्रतारणाका बदला अवश्य लूँगी।

रात्रिके समय उस पहाड़की गुफासे कठोर ध्वनि करता हुआ एक राक्षस निकला। सुन्दरीके दिव्य तेजसे भयभीत हो वह उसे पुत्रीवत् मानने लगा। कुछ समय उपरान्त वहाँ एक सेठ आता है और वह उसे ले जाता है। उसकी दृष्टिमें पाप समा जाता है, जिससे वह उसे एक वेश्याके हाथ बेच देता है, सुन्दरी किसी प्रकार वहाँसे छुटकारा पाकर समुद्रकी उत्ताल तरंगोंमें पहुँचती है और फिर सेठके नाविकों-द्वारा त्राण पाती है। वहाँ भी उसी विपत्तिको प्राप्त होती है, किन्तु एक दासी-द्वारा रक्षण पा अपना छुटकारा खोजती है। इसी बीच मुनिराजका दर्शन कर अपने पतिसे मिलनेका समय पूछती है। सुन्दरीको अनेक दुराचारियोंके फन्देमें फँसना पड़ा, अनेकोंने उसके शीलको लूटनेकी कोशिश की, पर वह अपने

व्रतपर दृढ रही। उसकी दृढताके कारण उसकी विपत्तियाँ काफूर होती गयी।

अन्तमे अपना नाम विमलवाहन रखकर उन्ही सात कौडियो-द्वारा व्यापार करती है। एक चोरका पता लगानेपर राजकुमारीके साथ विवाह और आधा राज्य भी प्राप्त कर लेती है। अमरकुमार भी व्यापारके लिए उसी नगरीमे आता है और बारह वर्षके पश्चात् दोनोका पुनः मिलन हो जाता है। मानिनी नारीकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाती है, और पुरुषका अह-भाव नत हो जाता है।

इस कृतिमे लेखकने नारी-तेज, उसकी महत्ता, धैर्य, साहस और क्षमताका पूर्ण परिचय दिया है। सकल्प और व्रतपर दृढ नारीके समक्ष अत्याचारियोके अत्याचार शान्त हो जाते है। पुरुष कितना अविश्वसनीय हो सकता है, यह सुर-सुन्दरीके निम्न कथनसे स्पष्ट है—

"विश्वासघातक, दुराचारी, धर्माधर्मविचारहीन, प्रतिज्ञाका भग करनेवाले अथवा गऊके समान स्त्रीको शेरकी तरह अपना भक्षण समझनेवाले पुरुषोसे जितना दूर रहा जाय, उतना ही अच्छा है।"

इस रचनाकी भाषा विशुद्ध साहित्यिक हिन्दी है, उर्दू और फारसीके प्रचलित शब्दोका भी प्रयोग किया गया है। भाषामे स्निग्धता, कोमलता और माधुर्य तीनो गुण विद्यमान है। शैली सरस है, साथ ही सगठित, प्रवाहपूर्ण और सरल है। रोचकता और सजीवता इस कथामे सर्वत्र विद्यमान है। कोई भी पाठक पढना आरम्भ करनेपर, इसे समाप्त किये विना विश्वास नही ले सकता है। प्रवाहकी तीव्रतामे पडकर वह एक किनारे पहुँच ही जाता है।

सती दमयन्ती

इस कथामे सती दमयन्तीके शील, पातिव्रत और गुणोकी महत्ता बतलायी गयी है। आदर्शकी अवहेलना आजके लेखक भले ही करते रहे, पर वास्तविकता यह है कि आदर्शके विना मानव-जीवन प्रगतिशील नही बन सकता है।

नल परिस्थितिवश या पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मानुसार द्यूतक्रीडामे रत हो जाता है और स्त्री सहित सब कुछ हार जाता है। राज पाट छोडकर नल वनको चल देता है और दमयन्ती पातिव्रत धर्मके अनुसार उसका अनुसरण करती है। कूबड उसकी भर्त्सना करता है, किन्तु सतीत्वकी विजय होती है। नल वनमे दमयन्तीको सोती हुई छोड देता है और स्वय चला जाता है। निद्रा भग होनेपर वह अपने अञ्चलमे लिखे लेखको पढती है और उसीके अनुसार मार्गपर चल पडती है। मार्गमे अनेक अघटित घटनाएँ घटित होती है, जिनके द्वारा उसका नारीत्व निखरता जाता है। अन्तमे चन्द्रयशा मौसीके यहाँसे पिताके घर पहुँच जाती है और इधर इसी नगरीमे नल आता है। सूर्यपाक बनाता है, दमयन्ती अपने पतिको पहचान लेती है और बारह वर्षके पश्चात् दोनोका मिलन होता है। नल दमयन्तीको अपनी यक्ष सम्बन्धी कथा सुनाता है।

भाषा, शैली और कथा-विस्तारकी दृष्टिसे इसमे नवीनता होनेपर भी कुछ ऐसी अलौकिक घटनाएँ है, जो आजके युगमे अविश्वसनीय मालूम पडेगी। उदाहरणार्थ सतीके तेजसे शुष्क सरोवरका जल परिपूर्ण होना, कैदीकी वेडियाँ टूटना और डाकुओका भाग जाना आदि। चरित्र-चित्रणमे इस कृतिमे लेखकने पौराणिकताको पूर्ण रूपसे अपनाया है, यही कारण है कि दमयन्तीका चरित्र अलौकिक और अमानवीय बन गया है। भाषा सरल और मुहावरेदार है, रोचकता और उत्सुकता आद्योपान्त विद्यमान है।

इस पौराणिक कथाके लेखक भागमल शर्मा है। इसमे पुण्य-पापका फल दिखलाया गया है। मनुष्य परिस्थितियो और वातावरणके अनुसार

रूपसुन्दरी[1]

किस प्रकार नीचसे नीच और उच्चसे उच्च कार्य कर सकता है। प्रतिकूल परिस्थिति और वातावरणके रहनेपर जो व्यक्ति जघन्य कृत्य करता हुआ देखा जाता है, वही अनुकूल

१. प्रकाशक—आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अम्बाला शहर।

वातावरण और परिस्थितियोके होनेपर उत्तम कार्य करता है। इस कथाका प्रधान पात्र देवदत्त और नायिका रूपसुन्दरी है।

रूपसुन्दरी कृपक भार्या है और देवदत्त धूर्त साधु-कुमार। दोनोका स्नेह हो जाता है। रूपसुन्दरी कामान्ध हो अपना सतीत्व खो देना चाहती है, पर एक मुनिराजके दर्शनसे उसे आत्मबोध प्राप्त हो जाता है। धूर्त देवदत्त उसके पतिका मायावी भेप धर कर आता है और वास्तविक पतिसे झगडा करने लगता है। रूपसुन्दरी एक ही रूपके दो पुरुपोको देखकर सशकित हो जाती है और अपना न्याय करानेके लिए न्यायालयकी शरण लेती है। अभयकुमार यथार्थ न्याय करता है और सतीके दिव्य तेजसे प्रजा नाच उठती है। कपटी देवदत्तको अपने कुकृत्यपर पश्चात्ताप होता है और रूपसुन्दरीके चरणोमे गिर क्षमा याचना करता है। चारो ओर सतीकी जय-जय ध्वनि सुनाई पडने लगती है।

चारित्रिक विकासकी दृष्टिसे वह कथा सुन्दर है। मनुष्य कमजोरियोका पुतला है, कोई भी नर नारी किसी भी क्षण किस रूपमे परिवर्तित हो सकता है, इसका कुछ भी ठीक नही है। द्वन्द्वात्मक चारित्र मानव जीवनकी विशेप निधि है। लेखकने कथोपकथनोको प्रभावोत्पादक बनानेका पूरा प्रयत्न किया है।

'मुझे तेरे मधुप्रेमका एकबार स्वाद मिले तो?'

"हूँ! ऐसे अभद्र शब्द, खबरदार, फिर मुँहसे न निकालना। तेरे जैसे नीच मनुष्योको तो मेरा दर्शन भी न होगा।"

नारी-पात्रोका आदर्श चरित्र प्रस्तुत करनेमे श्री प० मूलचन्द्र 'वत्सल'का नाम भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आपने पुराने जैन कथा-नकोको लेकर नवीन ढगसे अनेक सतियो और देवियोके चरित्रोको प्रस्तुत किया है। यद्यपि शैली परिमार्जित है, तो भी पूर्णतया आधुनिक टेक-निकका निर्वाह किसी भी कथामे नही हो सका है। 'सती-रत्न'[1]मे कुमारी

[1] प्रकाशक—साहित्य रत्नालय, बिजनौर।

तिलका नामकी वारवनिताके यहाँ ठहरा। कई महीनोके उपरान्त एक दिन इसी नगरीमे स्वामी जम्बूकुमारके स्वागतकी तैयारीमे सारा नगर अलकृत किया जा रहा था। जब विद्युच्चरने महाराज श्रेणिकके साथ जम्बूकुमारको देखा और उनका यथार्थ परिचय प्राप्त हुआ, तो उसके मनमे भी अपने कार्योंके प्रति विचिकित्सा उत्पन्न हुई। फलत. परिग्रहको ममत्त दु खोका कारण ज्ञातकर वह भी विरक्त हो गया। कालान्तरमे उसने भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की और अपना आत्म-कल्याण किया।

इस कथाका सर्वस्व कथोपकथन है। कलाकारने कथाकी गतिको किस प्रकार बढाया है, यह निम्न उद्धरणोसे स्पष्ट है।

"पिताजी, हेयोपादेय हो भी तो आपके कर्त्तव्य और अपने मार्गमे उस दृष्टिसे कुछ अन्तर नही जान पडता। आपको क्या इतनी एकान्त निश्चिन्तता, इतना विपुल सुख, सम्पत्ति, सम्मान और अधिकार-ऐश्वर्यका इतना ढेर, क्या दूसरेके भागको विना छीने वन सकता है? आप क्या समझते है, आप कुछ दूसरेका अपहरण नही करते? आपका 'राजापन' क्या और सबके 'प्रजापन' पर ही स्थापित नहीं है? आपकी प्रभुता औरोकी गुलामीपर ही नही खडी? आपकी सम्पन्नता औरोंकी गरीवीपर सुख दुखपर, आपका विलास उनकी रोटीकी चीखपर, कोप उनके टैक्स पर, और आपका सबकुछ क्या उनके सबकुछको कुचलकर, उसपर ही नहीं खडा लहलहा रहा? फिर मै उसपर चलता हूँ तो क्या हर्ज है? हाँ, अन्तर है तो इतना है कि आपके क्षेत्रका विस्तार सीमित है, पर मेरे कार्यके लिए क्षेत्रकी कोई सीमा नहीं, और मेरे कार्यके शिकार कुछ छटे लोग होते है, जब कि आपका राजत्व छोटे-बडे, हीन-सम्पन्न, स्त्री-पुरुष, बच्चे-बुड्ढे सबको एक-सा पीसता है। इसीलिए मुझे अपना मार्ग ज्यादा ठीक मालूम होता है।"

"कुमार, बहस न करो। कुकर्ममे ऐसी हठ भयावह है। राजा समाजतन्त्रके सुरक्षण और स्थायित्वके लिए आवश्यक है, चोर उस

तन्त्रके लिए शाप है, घुन है, जो उसमेंसे ही असावधानतासे उठता है और उसी तन्त्रको खाने लगता है।"

"राजा उस तन्त्रके लिए आवश्यक है! क्यो आवश्यक है? इस-लिए कि राजाओ-द्वारा परिपालित परिपुष्ट विद्वानोकी किताबोका ज्ञान यही बतलाता है?—नही तो बताइए, क्यो आवश्यक है? क्या राजाका महल न रहे तो सब मर जाँय, उसका मुकुट टूटे तो सब टूट जॉय, और सिंहासन न रहे तो क्या कुछ रहे ही नही? बताइये फिर क्यो आवश्यक है?"

जैनेन्द्रजीने इस कथामे जनतन्त्रके तत्त्वोका भी यथेष्ट समावेश किया है। कहानी-कलाकी दृष्टिसे यह पूर्ण सफल कथा है।

श्री बालचन्द्र जैन एम० ए०ने पौराणिक उपाख्यानोको लेकर नवीन शैलीमे कहानियॉ लिखी है। प्रस्तुत सकलनमे कई कहानियॉ है। इस सकलनकी सबसे पहली कहानी आत्म-समर्पण है। इसमे नारी-प्रतिष्ठाका मूर्तिमान चित्र है।

आत्म-समर्पण

राजुलके वचनोसे नारी-प्रभुत्व साकार हो जाता है—"नारीकी क्रियाएँ दम्भ नही होती स्वामिन्! वह सच्चे हृदयसे काम करती है। विलास मे पली नारी संयम और साधनाकी महत्ता अच्छी तरह समझती है।" पुरुषके हृदयमे नारीके प्रति अविश्वास कितना प्रगाढ है, यह नेमि कुमारके शब्दोसे प्रत्यक्ष हो जाता है—"नारी"। नेमिकुमारने आश्चर्यसे उसकी ओर देखा—"क्या तुम सच कह रही हो।"

"साम्राज्यका मूल्य" कहानीमे भौतिक खण्डहरके वक्षस्थलको चीर आध्यात्मिकताका प्रासाद निर्मित किया है। षट्खण्डाधिपति भरतका अहकार बाहुबलीके त्यागके समक्ष चूर-चूर हो जाता है। उनके निम्न शब्दोसे उनके दम्भके प्रति ग्लानिका भाव स्पष्ट लक्षित होता है—"मै तो उनके आपका प्रतिनिधि बनकर प्रजाकी सेवा कर रहा हूँ। मेरा कुछ भी नहीं है, मै अकिंचन हूँ।"

ब्राह्मी और सुन्दरी, चन्दनाकुमारी और ब्रह्मचारिणी अनन्तमती, ये तीन कथाएं दी गयी हैं। इन कथाओंमें अनेक स्थानोंपर लेखक उपदेशकके रूपमें पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत होता है। कथाओंमें मूलतत्त्वोंका सन्निवेश करनेका प्रयास किया गया है, पर सफलता नहीं मिल सकी है।

पौराणिक आख्यानोंको लेकर मौलिक कहानियाँ लिखनेवालोंमें सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, यशपाल जैन, भगवत्स्वरूप 'भगवत्', अक्षयकुमार जैन, बालचन्द्र जैन एम० ए०, और रूपलाल 'वसल' आदि हैं। महिला लेखिकाओंमें चन्द्रमुखी देवी चन्द्रप्रभा देवी, शरवती देवी और पुष्पादेवीकी कहानियाँ अच्छी होती हैं। दिगम्बरजैनके कथाङ्कमें कई नवीन लेखकोंकी भी कथाएँ छपी हैं। जैन महिलादर्शने भी सन् १९४६ में प्राचीन महिला कथाङ्क प्रकाशित किया था। इस अङ्ककी कहानियोंमें श्रीमती चन्द्रप्रभा देवीकी 'नीली' शीर्षक कहानी कहानी-कलाकी दृष्टिसे अच्छी है। आरम्भ और अन्त दोनों ही सुन्दर हुए हैं।

श्री जैनेन्द्रकुमार लब्धप्रतिष्ठ कलाकार हैं। आपने सार्वजनिक सैकड़ों कथाएँ लिखी हैं। आपकी रचनाओंमें शुद्ध साहित्यिक गुणोंके अतिरिक्त विचारों और दार्शनिकताका गाम्भीर्य भी विद्यमान है। भावुक कथाकार होनेके कारण, जैनेन्द्रजीके विचारोंमें भी भावुकताका होना स्वाभाविक है। आपकी कथाओंमें कलाके दोनों तत्त्व—चित्रोंका एक समूह और उन्हें अनुप्राणित करनेवाला भावोंका स्पष्ट स्पन्दन विद्यमान है। भावों और चित्रोंका जैसा सुन्दर समन्वय जैनेन्द्रजीकी कलामें है, अन्यत्र कठिनाईसे मिल सकेगा।

आपकी 'बाहुबली' और 'विद्युच्चर' ये दो कथाएँ जैनसाहित्यकी अमूल्य निधि है। 'बाहुबली' कथामें बाहुबलीके चरित्रका विश्लेषण बहुत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक रूपसे हुआ है। इसमें उस समयकी परम्परा और सामाजिक विश्वासोंकी स्पष्ट झाँकी विद्यमान है। कथानकके कलेवरसे पात्रोंका परिचय अभिनयात्मक रूपसे प्राप्त हो जाता है। पात्रोंकी आपस-

की बात-चीत और भाव-भगिमाके समन्वयने कथोपकथनको इतना प्रभावक बना दिया है, जिससे कोई भी पाठक कलाकारके उद्देश्यको हृदयगम कर सकता है। कहानीमे इतनी रोचकता और सरसता है, कि आरम्भ कर देनेपर समाप्त किये बिना जी नही मानता।

विद्युच्चर हस्तिनापुरके राजा सवरके ज्येष्ठ पुत्र थे। कुमार विद्युच्चरकी शिक्षा-दीक्षा राजकुमारोकी भॉति हुई। समस्त विद्याओमे प्रवीण हो जानेके उपरान्त कुमारने निश्चय किया कि वह चोर बनेगा। कुमारने चोरीके मार्गमे आगे कही ममता और मोह बाधक न हों, इससे पहले पिताके यहॉ ही चोरी करना आवश्यक समझा। शुभ काम घरसे ही शुरू हो, Charity begins at home अर्थात् पहली चोरीका लक्ष्य अपने घरका ही राजमहल और अपने पिताका ही राजकोप न हो तो क्या हो।

विद्युच्चरने एक असाधारण चोरके समान अपने पिताके ही राजकोपसे एक सहस्र दीनार चुराये। चोरी असाधारण थी—परिमाणमे, साहसिकतामे और कौशल्मे भी। जब महीनो परिश्रम करनेपर भी चोरका पता न लग सका तो कुमारने स्वय ही जाकर पितासे चोरीकी बात कह दी। पहले तो पिताको विश्वास न हुआ, किन्तु कुमारने बार-बार उसी बातको दुहराया और चोरीका व्यवसाय करनेका अपना निश्चय प्रकट किया तो पिताकी ऑखोसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। क्षोभके कारण उनके मुखसे अधिक न निकल सका, केवल यही कहा कि यह तुच्छ और घृणित कार्य तुम्हारे करनेके योग्य नही। पिताके द्वारा अनेक प्रकारसे समझाये जानेपर भी कुमारने कुछ नही सुना और वह चोरीके पेशेमे प्रवीण हो गया। चारो ओर उसका आतङ्क व्याप्त था, धनिकोके प्राण ही सूखते थे। निरर्थक हिंसाका प्रयोग करना विद्युच्चरको इष्ट नही था। वह एक डाकुओके दलका मुखिया था।

कुछ समयके उपरान्त वह राजगृही नगरीमे गया और वहॉ वसन्त-

'दम्भका अन्त' कहानीमें मानव परिस्थितियोंका सुन्दर चित्रण हुआ है। मनुष्य किस परिस्थितिमें पड़कर अपने हृदयको छुपानेका प्रयत्न करता है, यह कृष्णके जीवनसे स्पष्ट हो जाता है। कथोपकथन तो इस कहानीका बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। सारी कथाकी गतिशीलताको मनोरम और मर्मस्पर्शी बनानेके लिए संवादोंको लेखकने जीवट बनानेमें किसी भी प्रकारकी कमी नहीं की है। "मैंने लोक-व्यवहारकी अपेक्षा ऐसा कहा था भगवन्"! त्रैलोक्य-स्वामीसे कृष्णका जाल प्रच्छन्न न था। नमिकुमार बोले—"वाणी हृदयका प्रतिरूप नहीं है, कृष्ण," "तुम्हारी वाणी और विचारोंमें असंगति है"। अहंकारवश मानव नैसर्गिक विधानोंपर विजय प्राप्त करनेको कटिबद्ध हो जाता है, अतः द्वीपायन कहता है—"मैं इतनी दूर भागूँगा कि द्वारिकाका मुँह भी न देखना पड़े और न व्यर्थ ही इतनी हिंसाका पाप भोगना पड़े"। अभिमानके मिथ्याजलधिमें तैरनेवाला कृष्ण अपनेको चतुर नाविकसे कम नहीं समझता, किन्तु जब कर्मोंके तूफानमें पड़ उसकी अहंनिद्रा भंग हो जाती है, तब उसका हृदय स्वयं कह उठता है—"तुम निर्दोष हो जरत्! भगवान्ने सत्य ही कहा था, मेरे दम्भका अन्त हुआ"।

रक्षाबन्धन मर्मस्पर्शी है। इसमें करुणा, त्याग और सहनशीलताकी उद्भावना सुन्दर हुई है। मुनियोंपर भीषण उपसर्ग आ जानेसे समस्त नगर करुणाका प्रतिबिम्ब सा प्रतीत होता है—"जनता मुनियोंके उपसर्गसे त्रस्त है, नृप वचनबद्ध अपनेको असमर्थ जान महलोंमें छुपा है" कहानीकारने मुनि विष्णु कुमारके वचनों-द्वारा त्याग और संयमका लक्ष्य प्रकट करते हुए कहलाया है—"दिगम्बर मुनि सांसारिक भोग और विभव के लिए अपने शरीरको नहीं तपाते। उन्हें तो आत्म-सिद्धि चाहिए, वही एक अभिलाषा, वही एक शिक्षा"। राजा दम्भ और पाखण्डोंको ढकोसला बतलाते हुए कहता है—"राजाको कोई धर्म नहीं होता मन्त्री

महोदय। प्रजाका धर्म ही राजाका धर्म है। मेरा भी वही धर्म है, जो प्रजाका है। मै हर धर्म और जातिका संरक्षक हूँ"। रक्षाबन्धन पर्वका प्रचलन भी मुनिरक्षाके कारण हुआ है, यह कथा इस बातकी पुष्टि करती है।

'गुरु दक्षिणा' यह कहानी लेखकके हृदयका प्रतिविम्ब प्रतीत होती है। इसमे मृदुल और कर्कश कर्त्तव्योके मध्य नारी हृदयका स्नेह प्रवाहित है। पर्वतका भीषण दम्भ और नारदका यथार्थ तर्क नारी हृदयको विचलित कर देते है, करुणा और वात्सल्यकी सरिता उसे बहा ले जाती है वास्तविक क्षेत्रके उस पार, जहाँ वसुका भौतिक शरीर बिना पतवारकी भाँति डगमग हो रहा है। मन्त्रीके वचनसे वसु चौक पड़ा—"निर्णय" वह बोला। इस कहानीका स्तम्भ है सत्य और वचन पालनका दृढ निश्चय। पर्वतका पक्ष ठीक है, मै निर्णय देता हूँ"।

'निर्दोष' यह कहानी मानवकी वासनाओ और कमजोरियोपर पूरा प्रकाश डालती है। कामुक व्यक्तिकी विचारशक्तिका किस प्रकार लोप हो जाता है और दृढ सकल्पी व्यक्ति ससारके सारे प्रलोभनोको किस प्रकार ठुकरा देता है, यह इससे स्पष्ट हुए बिना नही रह सकता। नारी-हृदय कितना सकुचित और दम्भी हो सकता है, यह रानीके वचनोसे प्रत्यक्ष है "महाराजको सूचना दो, यह नीच मुझसे बलात्कार करना चाहता था"। पापी जब अपनी गलतीको समझ लेता है, तो उसका पाप नही रहता, बल्कि कमजोरी माना जाता है। दम्भ और पाखण्डमे ही पापका निवास है। पश्चात्तापकी उष्णतासे पाप जल जाता है, पानी या द्रव पदार्थ हो नालीसे बह जाता है। रानी भी कह उठती है—"मुझ पापिनीको क्षमा करो सुदर्शन"। पुरुषके हृदयकी उदारता भी यहीं व्यक्त होती है, और सुदर्शन कहता है—"माँ मै निर्दोष हूँ"।

आत्माकी शक्तिमे बताया गया है कि आत्मशक्ति ससारकी समस्त शक्तियोकी अपेक्षा अद्वितीय है। जब इस शक्तिका विकास हो जाता है,

तब भय, निराशा और घबडाहटका नामोनिशान भी नहीं रहता। "मनुष्यत्व देवत्वसे उच्च है महाराज"। वचनमे अपरिमित आत्मशक्ति निहित है। यही कारण है कि उनके मस्तकके नम्र होते ही शिवलिङ्ग सैकडो टुकडोमे विभक्त हो जाता है और वहाँ एक अलौकिक प्रकाशपुञ्ज आविर्भूत होता है। शिवलिङ्गके स्थानपर चन्द्रप्रभ तीर्थंकरका बिम्ब प्रकट होते ही राजा गर्वहीन हो जाता है और कह उठता है—"मै आपका शिष्य हूँ महाराज"।

'बलिदान' कथा मानव कर्त्तव्यसे ओत प्रोत है। धर्मप्रेमी, दृढप्रतिज्ञ अकलक अपने अनुजके साथ बौद्धगुरुके समक्ष उपस्थित होते है और बुद्धि-चातुर्यद्वारा पूर्ण विद्वत्ता प्राप्त करते हैं। भेद प्रकट हो जानेपर दोनो बन्दी बना लिये जाते है। बन्दीगृहमें निष्कलक कहता है— "हमारा निश्चय दृढ है।" आगे कहता है—"पुरुषार्थ उससे प्रबल होगा भैया।" मै शक्तिपर विश्वास करता हूँ। आत्मबलिदानकी गाथा इसी एक वाक्यपर आश्रित है—"भैया शीघ्रता करो वे आ पहुँचे। जिनधर्मकी रक्षा तुम्हारे हाथ है।" तलवारोके बीच निष्कलक 'नमो सिद्धाण' कहकर शान्त हो जाता है। वह स्वय मिटकर धर्मके प्रचार और प्रसारके लिए अपने आग्रहको सुरक्षित रखता है।

'सत्यकी ओर' कहानीमे त्याग और विवेक-शक्ति द्वारा सन्देहका प्रासाद ढहता हुआ चित्रित किया गया है। "मैं सच कहता हूँ महाराज, चोर मेरी दृष्टिसे घुस नहीं सकता। मेरी शिक्षा असमर्थ नही हो सकती।" सत्यकी अनुभूति हो जानेपर विद्युच्चर कहता है—"हाँ, श्रीमान् कुख्यात विद्युच्चर मै ही हूँ". . "मुझे राज्यकी आवश्यकता नहीं महाराज, मुझे इससे घृणा है।"

'मोह-निवारण' इस कहानीमे आत्मिक शक्तिकी सर्वोपरिता व्यक्त की गयी है। कर्म शक्तिको भी यह शक्ति अपने अधिकारमे रखती है। समदर्शी भगवान् महावीरका उपदेश सभी प्राणी श्रवण करते थे, इस बातको प्रकट

करता हुआ लेखक कहता है—"श्रमण महावीर भगवान्‌की सभामे सभी प्राणियोको समानाधिकार रहता है। देव और अदेव, मनुष्य और पशु-पक्षी, सब ऊँच और नीचके भेदको भूलकर समान आसनपर बैठते है, परस्पर विरोधी प्राणी अपने वैरको भूलकर स्नेहार्द्र हो जाते है। विश्वबन्धुत्व का सच्चा आदर्श वही देखा जाता है। जब विवेक जाग्रत हो जाता है तो मोहका अन्त होते विलम्ब नही होता—"मुझे कुछ न चाहिए कुमार, तुमने मुझे आज सच्चा रूप दिखाया है, तुम मेरे गुरु हो। आज मै विजयी हुआ कुमार मुझे प्रायश्चित्त दो।"

'अजन निरजन हो गया' कहानी मे बताया गया है कि विषय-वासनाओसे झुलसा प्राणी ज्ञानकी नन्ही आभा पाते ही चमक जाता है। इस अमृतकी फुहरी बून्दे उसे अमर बना देती हैं। श्यामा गणिकाके मोहपाशमे आबद्ध अजन अपनी आत्मशक्तिपर स्वय चकित हो जाता है—"चारो ओर प्रकाश छा गया। अजनको अपनी सफलताका ज्ञान हुआ, पर सफलताके पश्चात् वीरोको हर्ष नही होता। उन्हे उपेक्षा होने लगती है।"

'सौन्दर्यकी परख' मे भौतिक सौन्दर्य क्षणभगुर है, मिथ्या प्रतीतिके कारण इस सौन्दर्यके मोहपाशमे बँधकर व्यक्ति नानाप्रकारके कष्ट सहन करता है। जब भौतिक सौन्दर्यका नशा उतर जाता है तो यथार्थ अनुभव होने लगता है—"आपने यथार्थ कहा महाशय, प्रत्येक वस्तु क्षणिक है। यह विभव, यह शासन, यह शरीर और यह यौवन किसी न किसी क्षण नष्ट होगे हो। मै आपका कृतज्ञ हूँ, आपने मेरी भूली आत्मा को सत्पथके दर्शन कराये।"

'वसन्तसेना' कथामे बताया गया है कि जिन्हे हम ससारमे पतित और नीच समझते है, उनमे भी सचाई होती है। वे भी ईमानदार, दृढ-प्रतिज्ञ और कर्त्तव्यपरायण बन सकते है। वसन्तसेना वेश्यापुत्री होकर भी पातिव्रतके आदर्शका पूर्ण पालन करती है। प्रेमी चारुदत्तके अकिंचन

इस सकलनमे छः कहानियाँ है—नारीत्व, अतीतके पृष्ठोसे, जीवन पुस्तकका अन्तिम पृष्ठ, मातृत्व, चिरजीवी और अनुगामिनी। इनका

मानवी

आधार क्रमशः पद्मपुराण, सम्यक्त्वकौमुदी, निशिभोजन कथा, श्रेणिक चरित्र, पुण्यास्रवकथाकोप और पद्म-पुराणका कथानक है। इस संग्रहकी कथाएँ नारी जीवनमे उत्साह, करुण, प्रेम, सतीत्व और सात्त्विक भावोंकी अभिव्यञ्जना करनेमे पूर्ण सक्षम है।

'नारीत्व' कहानीमे नारीके उत्साह और सतीत्वका अपूर्व माहात्म्य दिखलाया गया है। इसमे सबला नारीका महान् परिचय है। अयोध्या-नरेश मधूककी महारानीकी वीरताकी स्वर्णिम झलक, कर्त्तव्य और साहस, पतिव्रता नारीका तेज एव सतीका यश बड़े ही सुन्दर ढगसे चित्रित है। एक ओर नरेश मधूकका दिग्विजयके लिए गमन और दूसरी ओर दुष्ट राजाओंका आक्रमण। ऐसी विकट स्थितिमे महारानीने नारीत्व और कर्त्तव्यके पलड़ेको परखा। देशके प्रतिनिधित्वके लिए कर्त्तव्यको महान् समझ रानी स्वय रणागणमे उपस्थित हो जाती है और शत्रुके दाँत खट्टे कर यह बतला देती है कि जो नारीको अबला समझते है, वे गलत रास्ते-पर है, नारीके रणचण्डी बन जानेपर उसका मुकाबिला कोई नहीं कर सकता है।

मधूकको यह सब न रुचा। एक कोमलाङ्गी नारीका यह साहस! नारीत्वका यह अपमान! महारानी प्रासादके बाहर कर दी गयी। महा-राजको दाहरोग हुआ, सैकड़ो उपचार किये गये, पर कोई लाभ नहीं। अन्तमे वे सती महारानीकी अजुलीके छींटोसे रोगमुक्त हुए। नारीके दिव्य तेजके समक्ष अभिमानी पुरुषको झुकना पड़ा, उसे उसकी महत्ताका अनुभव हुआ।

'अतीतके पृष्ठोंसे' शीर्षक कहानीमे नारी-हृदयकी कोमलता, सरलता, मृदुता और कठोरताका उचित फल दिखलाया गया है। जिनदत्ताके

उदार और धार्मिक हृदयके प्रकाशमें देवीका खड्ग कुंठित हो जाता और सिर झुकाकर उसे अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ती है। अन्तमें ईर्ष्यालु और घातक हृदय माँकी लाडली पुत्री 'कनकश्री'का वध उसी खड्गसे हो जाता है। सत्य सर्वदा विजयी होता है, मिथ्या प्रचार करनेपर भी सत्य छुपता नहीं, सहस्रों आवरण डालनेपर भी सूर्यकी खर रश्मियोंके समान वह प्रकट हो ही जाता है। पाप पानीमें किये गये मलक्षेपणके समान ऊपर उतराये बिना नहीं रहता। अतः कनकश्रीकी ईर्ष्यालु माँका पाप प्रकट हो जाता है और वह दण्ड पाती है। इस कथामें हृदयको स्पर्श करनेकी क्षमता है, घटना-चमत्कार इतना विलक्षण है, जिससे पाठक रसमग्न हुए बिना नहीं रह सकता।

'जीवन पुस्तकका अन्तिम पृष्ठ' कहानीमें रात्रिभोजन त्यागका विशद माहात्म्य अंकित किया गया है। एक निम्नश्रेणीके वंशमें उत्पन्न बाला व्रत और नियमोंका पालनकर सदाचारसे जीवन व्यतीत करती है। वह कुटुम्बियों-द्वारा नाना प्रकारसे सताये जानेपर भी अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ती। व्रतका सत्परिणाम उसे जन्म जन्मान्तरोंतक भोगना पड़ता है। मानव जीवनको सुखी और सम्पन्न बनानेके लिए संयम और त्यागकी अत्यन्त आवश्यकता है।

'मातृत्व'में मातृहृदयका सच्चा परिचय दिया गया है, पर वसुदत्ता भी माँके सदृश वात्सल्य करती है। पुत्रके ऊपर प्रेमकी दृष्टि समान होते हुए भी, दोनोंके प्रेममें आकाश-पातालका अन्तर है। जब एक ओर पुत्र और दूसरी ओर अतुल वैभवका प्रश्न उपस्थित होता है, तब असल माताका हृदय वैभवको ठुकराकर पुत्रको अपना लेता है। माताके निःस्वार्थ हृदयका इतना ज्वलन्त उदाहरण सम्भवतः अन्यत्र नहीं मिल सकेगा।

'चिरंजीवी' सती गौरवकी अभिव्यंजना करनेवाली कथा है। प्रभावती अपने सतीत्वकी रक्षाके लिए अनेक संकट सहन करती है। दुष्टों-द्वारा अपहरण होनेपर भी वह अपने दिव्य तेजको प्रकटकर अपनी शक्तिका

परिचय देती है। उसके तेजसे देवोके विमान रुक जाते है, वे उस सतीको अपने धर्मसे अटल समझ उसकी सब तरहसे सहायता करते है तथा उसे संकटमुक्त कर देते है। विश्ववन्द्य नारीके इस कर्मका प्रभाव सभीपर पडता है, सभी उसका यशोगान करने लगते है।

'अनुगामिनी' मे नारी पुरुषकी अनुगामिनी होकर अपना उज्ज्वल आदर्श रखती है, उसे भोगकी अभिलाषा नही है। जब वज्रबाहुकी तीव्र विषय-वासनाकी कडियॉ मुनिराजके दर्शन मात्रसे टूटकर गिर पड़ती है और उसके अन्तरमे विरागकी उज्ज्वल आभा चमक उठती है, तब वह अपनी प्रिय पत्नी और वैभवको त्याग योगी हो जाता है। अपने पतिको इस प्रकार विरक्त होते देखकर रानी मनोरमा भी अपने पति और भाईका अनुसरण करती है। सासारिक प्रलोभन और बन्धनोको छिन्न-भिन्न कर देती है।

'मानवी' सकलनमे भाषा, भाव, कथोपकथन और चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे लेखकको पर्याप्त सफलता मिली है। पुराने कथानकोको सजाने और सॅवारनेमे कलाकारकी कला निखर गयी है। सभी कहानियोका आरम्भ उत्सुकतापूर्ण रीतिसे हुआ है। कहानियोमे रहस्यका निर्वाह भी उत्सुकता जाग्रत करनेमे सक्षम है। विशेषतः तीव्रतम स्थिति (Climax) ज्यो-ज्यो निकट आती है, कहानीमे एक अपूर्व वेगका सचार होता है, जिससे प्रत्येक पाठककी उत्सुकता बढती जाती है। यही है भगवत्की कला, उन्होने परिणाम सोचनेका भार पाठकोके ऊपर छोड दिया है। श्री भगवत्की अन्य फुटकर कहानियोमे 'अहिसा परमो धर्म.', 'उस दिन', 'शिकारी' ओर 'भ्रातृत्व' आदि कहानियॉ सुन्दर है। 'उस दिन' कहानीमे कला पूर्णरूपसे विद्यमान है। कथाका आरम्भ कितने कलापूर्ण ढगसे हुआ है—

"स्वच्छ आकाश ! शरीरको सुखद धूप। नगरसे दूर रम्य-प्राकृतिक, पथिकोंके पदचिन्होंसे बननेवाला—गैरकानूनी मार्ग : पगडण्डी। इधर-

उधर धान्य-उत्पादक, हरे-भरे तथा अंकुरित खेत ! जहाँ-तहाँ अनवरत परिश्रमके आदी , विश्वके अन्नदाता—कृषक !...कार्यमें संलग्न और सरस तथा मुक्त छन्दकी तानें अलापनेमें व्यस्त ! सघन वृक्षोंकी छायामें विश्राम लेनेवाले सुन्दर मधुभाषी पक्षियोंके जोड़े ! श्रवण-प्रिय मधु-स्वरसे निनादित वायुमण्डल ! ओर समीरकी प्राकृतिक आनन्द-दायक झकृति ..।''

"महा-मानव धन्यकुमार चला जा रहा था, उसी पगडण्डीपर। प्रकृतिकी रूप-भगिमाको निरखता, प्रसन्न और मुदित होता हुआ ! क्षण-प्रतिक्षण जिज्ञासाएँ बढती चलती ! हृदय चाहता—'विश्वकी समस्त ज्ञातव्यताएँ उसमें समा जायँ ! सभी कला कौशल उससे प्रेम करने लगें।' नया .खून जो ठहरा ! सुख और दुलारकी गोदमें पोषण पानेवाला ।''

'भ्रातृत्व' कथामें भगवत्‌जीने मरुभूति और विश्वभूतिके पौराणिक कथानकमें एक नवीन जान डाल दी है। प्रतिशोधकी बलवती भावनाका चित्रण इस कथामें हुआ है। कलाकारने पात्रोका चरित्र चित्रित करनेमें अभिनयात्मक शैलीका प्रयोग किया है, जिससे कथाओंमें जीवटता आ गयी है। तर्कपूर्ण और तथ्य विवेचनात्मक शैलीका प्रयोग रहनेपर भी सरसता कथाओंकी ज्योंकी त्यों है। चल्ती-फिरती भाषाके प्रयोगने कहा-नियोंको सरल व बुद्धिग्राह्य बना दिया है।

'ज्ञानोदय'में श्री प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यकी चार पॉच कहानियॉ प्रकाशित हुई थीं। श्रमण प्रभाचन्द्र, जटिल मुनि और बहुरूपिया कहानी अच्छी है। यद्यपि 'श्रमण प्रभाचन्द्र'मे बीच बीचमें संस्कृतके श्लोक उद्‌धृत कर कथाके प्रवाहको अवरुद्ध कर दिया है, तो भी उद्देश्यकी दृष्टिसे कहानी अच्छी है। इस कथाका उद्देश्य वर्णव्यवस्थाका खोखलापन दिखलाकर समता और स्वातन्त्र्यका सन्देश देना है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे यह कहानी सदोष है। टेकनिकका अभाव है।

'जटिल मुनि' कहानीका आरम्भ अच्छा हुआ है, पर अन्त कलात्मक नहीं हुआ है। तीव्रतम स्थिति (Climax) का भी अभाव है, फिर भी कहानीमें मार्मिकता है। कथाकारने कहानी आरम्भ करते हुए लिखा है—"मुनिवर, आज बड़ा अनर्थ हो गया। पुरोहित चन्द्रशर्माने चौलुक्याधिपतिको शाप दिया है कि इस मुहूर्त्तमें वह सिंहासनके साथ पातालमें धँस जायँगे। दुर्वासाकी तरह वक्र भ्रुकुटी लाल नेत्र और सर्पकी तरह फुँफकारते हुए जब चन्द्रने शाप दिया तो एक बार तो चौलुक्याधिपति हतप्रभ हो गये। मैं उन्हें सान्त्वना तो दे आया हूँ। पर वह आन्दोलित है। मुनिवर चौलुक्याधिपतिकी रक्षा कीजिये।" राजमन्त्रीने घबड़ाहटमें कहा। कहानीमें उत्सुकता गुणका निर्वाह अन्ततक नहीं हो सका है। एक सबसे बड़ा दोष इन कहानियोंमें प्रवाह-शैथिल्य भी पाया जाता है। यही कारण है कि इन कहानियोंमें घटनाओंके इतिवृत्त रूपके सिवाय अन्य कथातत्त्व नहीं आ सके हैं।

इस संकलनमें श्री अयोध्याप्रसाद 'गोयलीय'की ११८ कहानियाँ, किंवदन्तियाँ, संस्मरण और आख्यान तथा चुटकुले हैं। श्री गोयलीयने जीवन-सागर और वाङ्मयको मथकर इन रत्नोंको निकाला है। ये सब कथाएँ तीन खण्डोंमें विभक्त हैं—

गहरे पानी पैठ

१. बड़े जनोंके आशीर्वादसे (५५)

२. इतिहास और जो पढ़ा (४७)

३. हियेकी आँखोसे जो देखा (१६)

इन कथाओंमें लेखककी कलाका अनेक स्थलोंपर परिचय मिलता है। आकर्षक वर्णनशैली और टकसाली मुहावरेदार भाषा हृदय और मनको पूरा प्रभावित करती हैं। इनमें वास्तविकताके साथ ही भावको अधिकाधिक महत्त्व दिया गया है। वस्तुतः श्री गोयलीयने जीवनके अनुभवोंको लेकर मनोरंजक आख्यान लिखे हैं। साधारण लोग जिन बातोंकी उपेक्षा

करते हैं, आपने उन्हींको कलात्मक शैलीमे लिखा है। अत. सभी कथाएँ जीवनके उच्च व्यापारोके साथ सम्बन्ध रखती है।

यद्यपि कथानक, पात्र, घटना, हम्यप्रयोग और भाव ये पॉच कहानी-के मुख्य अग इन आख्यानोमे समाविष्ट नही हो सके है, तो भी कहानियॉ सजीव है। जिस चीजका हृदयपर गहरा प्रभाव पडता है, वह इनमे विद्यमान है। वर्णनात्मक उत्कठा (Narrative Curiosity) इन सभी कथाओमे है।

भाषा इन कथाओमे कथाके प्रवाहको किस प्रकार आगे बढाती है, यह निम्न उद्धरणोसे स्पष्ट है।

"तुम्हारे जैसे दातार तो बहुत मिल जायेंगे, पर मेरे जैसे त्यागी बिरले ही होंगे, जो एक लाखको ठोकर मारकर कुछ अपनी ओरसे मिलाकर चल देते है।" —त्यागी पृ० २४

"सूर्यके सन्ध्यासे पाणिग्रहण करते ही रजनी काली चादर डालकर सुहागरातके प्रबन्धमे व्यस्त थी। जुगनू सरोपर हण्डे उठाये इधर-उधर भाग रहे थे। दादुरोंके आशीर्वादात्मक गीत समाप्त भी न हो पाये थे, कुमरीने सरुके वृक्षसे, कोयलने अमुआकी डालसे, बुलबुलने शाखे गुल-से बधाईके राग छेडे। श्वानदेव और वैशाखनन्दन अपने मॅजे हुए कठसे श्यामकल्याण आलापकर इस शुभ सयोगका समर्थन कर रहे थे, झींगुर देवता सितार बजा रहे थे। कट्टो गिलहरी नाचनेको प्रस्तुत थी, पर रात्रि अधिक हो जानेसे वह तैयार न हुई। फिर भी उल्लूकसॉ वल्द बूमखॉ अपना खुरासानी और श्रीमती चमगीदड किशोरी अपना ईरानी नृत्य दिखाकर अजीब समॉ बॉध रहे थे।"

ईर्ष्याका परिणाम विनोदात्मक शैलीमे कितनी सरलतासे लेखकने व्यक्त किया है। यह छोटा-सा आख्यान हृदयपर एक अमिट रेखा खींच देता है।

"भोजनके समय एकके आगे घास और दूसरेके आगे भुस रख दिया गया। पण्डितोंने देखा तो आगबबूला हो गये। सेठ जी ! हमारा यह अपमान !"

"महाराज ! आप ही लोगोने तो एक दूसरेको गधा और बैल बतलाया है।"

'क्या सोचे' कथामे लेखकने बडे ही कौशलसे सासारिक विपयोके चिन्तनसे विरत होनेका सकेत किया है। जिस बातको वह कहना चाहता है, उसे उसने कितनी सरलतापूर्वक कलात्मक ढगसे व्यक्त किया है।

"एक ध्यानाभ्यासी शिष्य ध्यानमे मग्न थे। और दाल-बाटी आदि बनाकर आस्वादन करनेका चिन्तन कर रहे थे कि अचानक उसके मुखसे सीकारे की-सी आवाज निकल पडी।" पासमे बैठे हुए गुरुदेवने पूछा—"वत्स क्या हुआ ?"

शिष्य—"गुरुदेव, मैने आज ध्यानमे दाल-बाटी बनानेका उपक्रम किया था और मिर्च तेज हो जानेसे आस्वादन करनेमे सीकारेकी आवाज निकल पडी और मेरा ध्यान टूट गया। मै यह न जान सका कि यह सब उपक्रम कल्पना मात्र है। आप ऐसा आर्शीवाद दे, जिससे इससे भी ज्यादा ध्यान-मग्न हो सकूँ।"

गुरुदेव मुस्कराकर बोले—"वत्स ! ध्यानका विषय आत्मचिन्तन है, दाल-बाटी नहीं। उससे ध्यान सार्थक और आत्मकल्याण संभव है। व्यर्थकी वस्तुओको त्यागकर हितकारी चीजोको ही अपने अन्दर स्थान दो।"

'हियेकी ओखोसे' गोयलीयने जिन रत्नोको खोजा है, उनकी चमक अद्भुत है। अधिकाश रचनाएँ मार्मिक और प्रभावशाली है। भापा और शैलीकी सरलता गोयलीयकी अपनी विशेपता है। उर्दू और हिन्दीका ऐसा सुन्दर समन्वय अन्यत्र शायद ही मिल सकेगा। यही कारण है कि

एक साधारण शिक्षित पाठक भी इन कहानियोका रसास्वादन कर सकता है। अभिव्यञ्जना इतने चुभते हुए ढगसे हुई है, जिससे आख्यानोका उद्देश्य ग्रहण करनेमे हृदयको तनिक भी श्रम नही करना पडता। मिश्रीकी डली मुँहमे डालते ही धीरे-धीरे घुलने लगती है और मिठास अपने आप भीतर तक पहुँच जाती है। "इज्जत बडी या रुपया" कहानीकी निम्न पक्तियॉ दर्शनीय है—

चचा हँस कर बोले—"भई जितनी बात लिखनेकी थी, वह तो लिख ही दी थी। मेरा ख्याल था तुम समझ जाओगे कि कोई न-कोई बात जरूर है। वर्ना दो आनेके पुराने अँगोछेके लिए दो पैसेका कार्ड कौन खराब करता? और रुपयोका जिक्र जान-बूझ कर इसलिए नही किया कि अगर कोई उठा ले गया होगा तो भी तुम अपने पाससे दे जाओगे। अपनी इस असावधानीके लिए तुम्हे परेशानीमे डालना मुझे इष्ट न था।"

जैन सन्देशमे श्री ठाकुरके नामसे प्रकाशित कथाएँ, जिनके रचयिता श्री प० बलभद्रजी न्यायतीर्थ है, सुन्दर है। इन कथाओमे कथासाहित्यके तत्त्वोके साथ जीवनकी उदात्त भावनाओका भी सुन्दर चित्रण हुआ है। शैली प्रवाहपूर्ण है, भाषा परिमार्जित और सुसस्कृत है। किन्तु आरम्भिक प्रयास होनेके कारण कथानक, सवाद और चरित्र-चित्रणमे कलाके विकासकी कुछ कमी है।

जैन कथा साहित्यमे अनुपम रत्नोके रहनेपर भी, अभी इस क्षेत्रमे पर्याप्त विकासकी आवश्यकता है। यदि जैन कथाएँ आजकी शैलीमे लिखी जाये तो इन कथाओसे मानवका निश्चयसे नैतिक उत्थान हो सकता है। आज तिजोडियोमे बन्द इन रत्नोको साहित्य-ससारके समक्ष रखनेकी ओर लेखकोको अवश्य ध्यान देना होगा। केवल ये रत्न जैन समाजकी निधि नही है, प्रत्युत इन पर मानव मात्रका स्वत्व है।

नाटक

अतीतकी किसी असाधारण और मार्मिक घटनाको लेकर उसका अनुकरण करनेकी प्रवृति मानवमात्रमे पायी जाती है। इसी प्रवृत्तिका फल नाटकोका सृजन होना है। जैन लेखक भी प्राचीन कालसे अपने प्राचीन नाटकोका अनुवाद तथा समयानुसार पुराने कथानकोको लेकर नवीन नाटक लिखते आ रहे है। इस शताब्दीके प्रारम्भमे श्री जैनेन्द्र-किशोर आरा निवासीका नाम नाटककारकी दृष्टिसे आदरके साथ लिया जा सकता है। आपने अपने जीवनमे लगभग १ दर्जनसे अधिक नाटक लिखे है। यद्यपि इन नाटकोकी भाषाशैली प्राचीन है, तो भी इन नाटको-के द्वारा जैन हिन्दी साहित्यकी पर्याप्त श्रीवृद्धि हुई है। "सोमा सती" और "कृ रणदास" ये दो प्रहसन भी आपके द्वारा रचित है। आरामे आपके प्रयत्नसे एक जैन नाटकमण्डली भी स्थापित थी। यह मण्डली आपके रचित रूपकोका अभिनय करती थी। विदूषकका पार्ट आप स्वय करते थे। बहुत दिनो तक इस मण्डलीने अच्छा कार्य किया, पर आपकी मृत्यु हो जानेके पश्चात् इसका कार्य रुक गया।

श्री जैनेन्द्रकिशोरके सभी नाटक प्रायः पद्यबद्ध है। उर्दूका प्रभाव पद्योपर अत्यधिक है। "कलिकौतुक"के मगलाचरणके पद्य सुन्दर है। आपके ये नाटक अप्रकाशित है और आरानिवासी श्रीराजेन्द्रप्रसादजीके पास सुरक्षित है।

मनोरमा सुन्दरी, अजना सुन्दरी, चीर द्रौपदी, प्रद्युम्न चरित और श्रीपालचरित्र नाटक साधारणतया अच्छे है। पौराणिक उपाख्यानोको लेखकने अपनी कल्पना-द्वारा पर्याप्त सरस और हृदय-ग्राह्य बनानेका प्रयास किया है। टेकनिककी दृष्टिसे यद्यपि इन नाटकोमे लेखकको पूरी सफलता नही मिल सकी है, तो भी इनका सम्बन्ध रगमचसे है। कथा-विकासमे नाटकोचित उतार-चढाव विद्यमान है। वह लेखककी कला-

विज्ञताका परिचायक है। इनके सभी नाटकोका आधार सास्कृतिक चेतना है। जैन सस्कृतिके प्रति लेखककी गहन आस्था है। इसलिए उसने उन्हीं मार्मिक आख्यानोको अपनाया है, जो जैन सस्कृतिकी महत्ता प्रकट कर सकते है।

प्रहसनोमे "कृपणदास" और "रामरस" अच्छे प्रहसन है। "रामरस" जीवनके उत्थान-पतनकी विवेचना करनेवाला है। कुसगति मनुष्यका सर्वनाश किस प्रकार करती है यह इस प्रहसनसे स्पष्ट है।

रूपकात्मक नाटक लिखनेकी प्रथाका जैन साहित्य-निर्माताओने अधिक अनुसरण किया है। सस्कृत-साहित्यमे कई नाटक इस शैलीके लिखे गये है। काम, क्रोध, लोभ, मोहके कारण मानव निरन्तर अशान्त होता रहता है। अत. अहिसा, दया, क्षमा, सयम और विवेककी जीवनोत्थानके लिए परम आवश्यकता है। हिन्दी-भाषाके कलाकारोने सस्कृतके रूपकात्मक कई नाटकोका हिन्दीमे अनुवाद किया है। इस शैलीके अब तकके अनूदित जैन नाटकोमे निम्न दो नाटक मुझे अधिक पसन्द है। अतएव यहाँ इन दोनो नाटकोका परिचय दिया जा रहा है।

इस नाटकका हिन्दी अनुवाद श्री प० नाथूराम प्रेमीने किया है। अनुवादमे मूलभावोकी अक्षुण्णताके साथ प्रवाह है। पद्य व्रजभाषा और

ज्ञानसूर्योदय[1]

खडीबोली दोनोही भाषाओमे लिखे गये है। अनूदित होनेपर भी इसमे मौलिक नाटकका आनन्द प्राप्त होता है। इसकी कथावस्तु आध्यात्मिक है। इसमे नाटकीय ढगसे ज्ञानकी महत्ता बतलाई गई है।

इस नाटकमे पात्रोका चरित्रचित्रण और कथोपकथन दोनो बहुत सुन्दर है। शास्त्रीय नाटक होनेसे नान्दीपाठ, सूत्रधार आदि है। मति और विवेकका वार्तालाप कितना प्रभावोत्पादक है, यह निम्न उद्धरणोसे स्पष्ट है।

---

१ जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई। सन् १९०९।

मति—आर्यपुत्र ! आपका कथन सत्य है तथापि जिसके बहुतसे सहायक हो उस शत्रुसे हमेशा शंकित रहना चाहिए।

विवेक—अच्छा कहो, उसके कितने सहायक है ? कामको शील मार गिरावेगा। क्रोधके लिए क्षमा बहुत है। सन्तोषके सम्मुख लोभकी दुर्गति होवेगी ही और बेचारा दम्भ-कपट तो सन्तोषका नाम सुनकर छूमन्तर हो जायगा।

मति—परन्तु मुझे यह एक बडाभारी अचरज लगता है कि जब आप और मोहादिक एक ही पिताके पुत्र हैं तब इस प्रकार शत्रुता क्यो ?

विवेक—.. आत्मा कुमतिमे इतना आसक्त और रत हो रहा है कि अपने हितको भूलकर वह मोहादि पुत्रोको इष्ट समझ रहा है, जो कि पुत्राभास है और नरक गतिमे ले जानेवाले है।

नाटकमे बीच-बीचमे आई हुई कविता भी अच्छी है। क्षमा शान्तिसे कहती है कि बेटी विधाताके प्रतिकूल होनेपर सुख कैसे मिल सकता है ?

जानकी हरन वन रघुपति भवन औ,
भरत नरायनको वनचरके बान सों।

वारिधिको बन्धन, मयंक अंक क्षयी रोग,
शंकरकी वृत्ति सुनी भिक्षाटन वान सो॥

कर्ण जैसे बलवान कन्याके गर्भ आये,
विलखे वन पाण्डुपुत्र जूआके विधानसो।

ऐसी ऐसी बातें अवलोक जहाँ तहाँ बेटी,
विधिकी विचित्रता विचार देख ज्ञानसो॥

इस नाटकमे दार्शनिक तत्त्वोका व्याख्यात्मक विवेचन भी प्राय. सर्वत्र है। भाव, भाषा और विचारोकी दृष्टिसे रचना सुन्दर है।

इसमे अकलक और निकलकके महान् जीवनका परिचय है। कथानक छोटा-सा है, प्रासगिक कथाओका समावेश नही हुआ है। महाराज पुरुषोत्तमने नन्दीश्वर द्वीपमे अष्टाह्निका पर्वके अवसरपर आठ दिनोके लिए ब्रह्मचर्य ग्रहण किया। साथ ही इनके दोनो पुत्र अकलक और निकलकने भी आजन्मके लिए ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। जब विवाहकाल निकट आया और विवाहकी तैयारियाँ होने लगी तो पुत्रोने विवाहसे इन्कार कर दिया और वे जैनधर्मकी पताका फहरानेके लिए कटिबद्ध हो गये।

अकलंकनाटक

उस समय बौद्ध धर्मका बोलबाला था, अन्य धर्मोंका प्रभाव क्षीण हो रहा था। शिक्षा-दीक्षा भी उन लोगोके हाथमे थी। अतएव वे दोनो भाई बौद्ध पाठशालामे छुपकर अध्ययन करने लगे। एक दिन बौद्धगुरु जिस पाठको पढा रहे थे वह अशुद्ध था। अतः उसको शुद्ध करने लगे। पर जब माथापच्ची करनेपर भी उस पाठको शुद्ध न कर सके तो वह शालासे बाहर निकलकर घूमने लगे। अकलकने चुपचाप उस पाठको शुद्ध कर दिया। जब लौटकर गुरु आये तो उस पाठको शुद्ध किया हुआ देखकर चकित हुए और विचारने लगे कि अवश्य इनमे कोई जैन है। अन्यथा इसे शुद्ध नही कर सकता था अतएव परीक्षाके लिए उन्होने कई प्रकारके षड्यन्त्र किये, अन्तमे अकलक और निकलक पकडे गये। और उन्हे कारागृहमे बन्द कर दिया गया। प्रातःकाल ही अकलक और निकलकको फाँसी होनेवाली थी अतः रातमे वे किसी तरह भाग निकले। रास्तेमे धर्मरक्षाके लिए छोटे भाई निकलकने प्राण दिये और अकलक जीवित बचकर निकल भागे। विरक्त होकर अकलक जैनधर्मका उद्योत करने लगे।

महारानी मदनसुन्दरी जैन धर्मकी उपासिका थी, वह रथोत्सव करना चाहती थी, किन्तु बौद्ध राजगुरु उसके इस कार्यमे विघ्न थे। उन्होने कहा कि धार्मिक वाद-विवादमे पराजित होनेपर ही जैन धर्मका रथोत्सव हो सकेगा अन्यथा नही।

राजगुरुके इस आदेशसे रानी चिन्तित रहने लगी। उसने अन्न जल

का त्याग कर दिया। स्वप्नमे चक्रेश्वरी देवीने उसे सात्वना प्रदान की और अकलकदेवको बुलानेका आदेश दिया। दूसरे दिन अचानक ही अकलकदेवका राजसभामे आगमन हुआ। दोनो धर्मका विवाद आरभ हुआ। कई दिनोतक अकलकका राजगुरुके साथ शास्त्रार्थ होता रहा पर जय-पराजय किसीको भी न मिली। अतः चिन्तित होकर उन्होने चक्रेश्वरी देवीकी आराधना की। देवीने कहा—पर्देके अन्दरसे तारा देवी बोल रही है, अत. दुबारा उत्तर पूछनेपर वह चुप हो जायगी। चक्रेश्वरी देवीने और भी पराजयके लिए अनेक बाते बतलाई। अगले दिन राजगुरु शास्त्रार्थमे पराजित हुए और धूमधामसे रथ निकाला गया।

इस नाटकके कथानकमे मूल कथानकको छोड, व्यर्थ प्रसग नही है। आरभमे मगलाचरण तथा सूत्रधार और नटीका आगमन हुआ है। इसमे तीन अक है और दृश्य परिवर्त्तन भी यथायोग्य हुए है। यद्यपि शैली प्राचीन ही है, फिर भी कथोपकथन तथा पात्रोका चरित्र-चित्रण अच्छा हुआ है। यह नाटक अभिनय योग्य है।

अकलक देवके इसी आख्यानको लेकर श्री प० मक्खनलाल जी दिल्ली वालेने भी "अकलक" नामका एक नाटक लिखा है। यह भाव और भाषाकी दृष्टिसे साधारण है तथा अभिनय गुण इसकी प्रमुख विशेषता है। गीतिकाव्यकी दृष्टिसे साधारण होनेपर भी सरस है।

सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रिय तत्त्वोके आधार पर काल्पनिक कथानकको लेकर यह नाटक लिखा गया है। इसके सपादक श्री प० अर्जुनलाल सेठी है। इसमे गृह और समाजका साकार चित्र मिलता है। शराब और मदके प्यालेको पीकर धनिकपुत्र समाजको बरबाद कर देते है। परिवार जुआ और सट्टा वगैरहमे फँसकर कलहका केन्द्र बनता है। पूँजीपतियोका मनमाना व्यवहार, दहेजकी भयानकता, अपटूडेट महिलाओकी कटुता आदि समाजिक बुराइयोका परिणाम इसमे दिखलाया है।

महेन्द्रकुमार

कथाकी समस्त घटनाएँ शृङ्खलाबद्ध नही है, सभी घटनाएँ उखडी हुई सी है। लेखकका लक्ष्य सामाजिक बुराइयोको दिखला कर लोक-शिक्षा देना है।

सुमेरुचद एक सेठ है। इनकी पत्नी अत्यन्त कठोर और कर्कशहृदया है। वह अपने देवरको फूटी आखो भी देखना नही पसन्द करती। पत्नी की बातोमे सुमेरुको विश्वास है। अत. महेन्द्रको निशिदिन भाई और भावजकी झिडकियाँ सहनी पडती है। इधर कलहसे घबडाकर महेन्द्र विदेश जानेको उत्सुक होता है। उसने माँके समक्ष अपनी इच्छा प्रकट की। माँने प्यारे पुत्रको विदेश न जाने देनेके लिए अनेक यत्न किये पर वह न माना। चला ही गया भारत माँके उद्धारके लिए और सलग्न हो गया देश-सेवामे। जुआरी सुमेरु जुएमे सब हार घर आया और पत्नीके आभूषण माँगने लगा। पत्नीकी त्योरिया बदल गई। इतनेमे एक भृत्य उसे बुलाकर ले गया।

एक ब्रह्मचारी और उनके मित्र नन्दलाल जापान जा रहे थे। मार्गमे मादक कान्फ्रेन्स होते देख रुक गये। एक विशाल मण्डपमे कान्फ्रेन्सका जल्सा हो रहा था, नशेमे सब मस्त थे। वे देशमे अधिकसे अधिक भग, तम्बाकू, सिगरेट आदिका प्रचार करनेका प्रस्ताव पास कर रहे थे। ब्रह्मचारी नवयुवकोकी इस तबाहीको देखकर परम दुखित हुए। भाषण-द्वारा उसका उत्थान करनेको चेष्टा की।

इसी समय एक सुशीला कन्याका स्वयवर रचा जा रहा था जिसमे अनेक कुमारोके साथ महेन्द्र भी पहुँचा, वरमाला महेन्द्रके गलेमे पडी। दोनोका विवाह हो गया।

ब्रह्मचारी राजदरबारमे पहुँचा और लगा राजाके समक्ष राजकुमारकी चरित्रभ्रष्टता, मद्यपान और व्यभिचारके समस्त दूषण प्रकट करने। सुमित्राके साथ बलात्कार करनेका प्रमाण भी राजाको दिया। उन्होंने दरबारमे महेन्द्र, सुमित्रा और राजकुमार तीनोंको बुलाया। राजकुमारको

कैदकी सजा मिली और उन दोनोका सम्मान किया गया। ब्रह्मचारी और सुमित्राके आग्रहसे राजकुमारको छोड दिया गया। प्रजा कल्याण तथा ज्ञानके प्रचारके लिए महेन्द्रको नेता बनाया गया। ब्रह्मचारी और कोई नहीं था वह सुमित्राका पिता था यह भेद अब खुला।

इस नाटकमे कई भाषाओका समिश्रण है। पात्र भी कई तरहके है कोई मारवाडी, कोई अपटूडेट, कोई साधारण गृहस्थ। अतः भाषा भी भिन्न प्रकारकी व्यवहृत हुई है। कुणघणा आदि मारवाडी और करै छै, उडानु छूँ आदि गुजराती शब्दोका प्रयोग भी इसमे हुआ है। यो तो साधारणत. खडी बोली है। बीच-बीचमे जहॉ तहॉ अँग्रेजीके शब्दोका भी प्रयोग खुलकर किया गया है। विशृखलित कथाके रहनेपर भी अभिनय किया जा सकता है।

अजनासुदरीका कथानक इतना लोकप्रिय रहा है जिससे इस कथानकका आलबन लेकर उपन्यास, कथाएँ, प्रबध-काव्य और कई नाटक लिखे गये है। सुदर्शन और कन्हैयालालने पृथक्-पृथक् नाटक रचे है। इन दोनो नाटककारोकी कथा एक है। यद्यपि सुदर्शनने अजना और कन्हैयालालने अजनासुदरी नाम रखे है फिर भी दोनोकी कथावस्तुमे पर्याप्त साम्य है। और दोनोका लक्ष्य भी भारतीय नारीके आदर्श-चरित्रको चित्रित करना है। दोनो नाटकोमे अजनाका करुणदृश्य हृदयद्रावक है। पर सुदर्शनजीकी रचना साहित्यिक दृष्टिकोणसे उच्च कोटिकी है।

अंजना

प्रकृतिके सुकोमल दृश्योके सहारे मानवीय अतःकरणको खोलकर प्रत्यक्ष करा देनेकी कला सुदर्शनजीमे है। इसलिए अजनामे प्रकृतिके माधुर्य और सौन्दर्यका सम्बन्ध जीवनके साथ साथ चित्रित किया गया है। सुदर्शनजीके अजना नाटकमे वाणी ही नही, हृदय बोलता हुआ दृष्टि-गोचर होता है। सुखदाके विचारोका क्रम देखिए—

कृत्रिम बनाया गया है। शैली भी बोझिल है। साहित्यिकताका अभाव है।

कमलश्री कमलश्री और शिवसुन्दरी नाटकके रचयिता न्यामत हैं। ये दोनो नाटक भी पौराणिक है और अभिनय योग्य है।

हस्तिनापुरके महाराज हरिबलकी कन्या कमलश्री रूपवती होनेके साथ साथ शीलगुणयुक्ता थी। सेठ धनदेव उसके रुप और गुणोपर

कथानक आसक्त हो गया और इससे विवाह-सम्बन्ध कर लिया। कुछ समयोपरान्त कमलश्रीको सतानका अभाव खटकने लगा और वह भावावेशमें आकर उदासीन हो मुनिराजके समीप दीक्षा लेने चली गई। मुनिराजने उसे गर्भिणी जान दीक्षा न दी। गर्भकी बात जानकर कमलश्री परम प्रसन्न हुई।

समय पाकर भविष्यदत्त नामक पुत्रका जन्म हुआ। कुछ समय पश्चात् एक दिन धनदेव धनदत्तकी पुत्री सुरूपाको देखकर आसक्त हो गया और उसके साथ विवाह कर लिया। कमलश्रीको उसने उसके पीहर भेज दिया। सुरूपाको बन्धुदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भविष्यदत्त भी विमाताके व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर अपने ननिहाल चला गया।

सुरूपाके लाड प्यारसे बधुदत्त बिगड गया। जब बडा हुआ तो भविष्यदत्तके साथ व्यापार करने विदेशको चला। मार्गमे धोखा देकर बधुदत्तने भविष्यदत्तको 'मैनागिरि' पर्वतपर छोड दिया और अपने साथियोको लेकर आगे चला गया। वहॉ भविष्यदत्तको भूख-प्यासजन्य अनेक कष्ट सहने पडे। भाग्यवश तिलकपुर पट्टन पहुँचनेपर तिलकासुन्दरी नामक कन्यासे उसका विवाह हुआ। इधर बधुदत्तका जहाज चोरोने लूट लिया। भविष्यदत्त तिलकासुन्दरीके साथ हस्तिनापुरको लौट रहा था कि मार्गमे दयनीय दशामे बन्धुदत्त भी आ मिला। भविष्य-

दत्तने उसे सात्वना दी। दुर्भाग्यवश तिल्कासुन्दरीकी मुद्रिका छूट गई थी अतः यह उसे लेनेके लिए जहाजसे उतर गया।

अब क्या था दुष्ट बन्धुदत्तको धोखा देनेका अच्छा सुअवसर हाथ आया। उसने जहाज आगे बढा दिया और तिल्कासुन्दरीपर आसक्त होकर उसका सतीत्व-नाश करना चाहा। किन्तु उसके दिव्य तेजके समक्ष उसे पराजित होना पडा।

बन्धुदत्त अतुल सम्पत्ति और तिल्काको लेकर घर पहुँचा। सुरूपा पुत्रका वैभव देखकर आनन्दमग्न हो गई। तिल्काके साथ विवाह होने-का समाचार नगर भरमे फैल गया। जब भविष्यदत्त लौटकर आया तो किनारेपर जहाजको न पाकर बहुत दुखी हुआ। पर पीछे विमानमे बैठ हस्तिनापुर चला आया। पुत्र और अधीर माँ कमलश्रीका मिलाप हुआ। बन्धुदत्तके दुराचारका समाचार नगरभरमे फैल गया। मलिनवदना तिल्काका मुँह प्रसन्न हो गया। पतिके मिल्नेकी आशाने उसके अशात जीवनको शाति-प्रदान की। राज-दरबारमे बन्धुदत्त और सुरूपाका काला मुँह हुआ।

भविष्यदत्त और तिलकासुन्दरी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। सेठ धनदेवको कमलश्रीसे क्षमा माँगनी पडी। बन्धुदत्त क्रोधित होकर पोदनपुरके युवराजके समीप पहुँचा और गजपुरके महाराज भू-पालकी कन्या सुमतासे विवाह करनेको उत्तेजित कर दिया। राजा भूपाल भविष्यदत्तको वर निर्वाचित कर चुके थे। अत' दोनो राजाओमे भयकर युद्ध हुआ। भविष्यदत्तने सेनापति पदपर प्रतिष्ठित हो अतीव वीरताका परिचय दिया। युद्धमे भविष्यदत्तको विजय-लक्ष्मी प्राप्त हुई। सुमताका भविष्यदत्तके साथ पाणिग्रहण हुआ। तिलकासुन्दरी पट्टरानी बनाई गई।

इस नाटकमे वातावरणकी सृष्टि इतने गभीर एव सजीव रूपमे की गई है कि अतीत हमारे सामने आकर उपस्थित हो जाता है। धोखा और कपटनीति सदा असफल रहती है, यह इस नाटकसे स्पष्ट है। कथो-

पकथन स्वाभाविक बन पडा है । चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे यह नाटक सुरुचिपूर्ण और स्वाभाविक है। इस नाटककी शैली पुरातन है । भाषा उर्दूमिश्रित है। तथा एकाध स्थलपर अस्वाभाविकता भी प्रतीत होती है।

गरीब

श्री भगवत्स्वरूपका यह देश-दशा-प्रदर्शक, करुणरस प्रधान नाटक है। इसमे सामाजिक युगकी विषमता और उसके प्रति विद्रोहकी भावना है। पूँजीपतियोकी ज्यादती और गरीबोकी करुण आह एव धनी और निर्धनके हृदयकी विशेपताओका सुन्दर चित्रण किया गया है। रुपयोकी माया और लक्ष्मीकी चचलताका दृश्य (स्वरूप) दिखाकर लेखकने मानव-हृदयको जगानेका यत्न किया है। यह सामाजिक नाटक अभिनय योग्य है। इसमे अनेक रसमय दृश्य वर्तमान हैं, जो दर्शकोको केवल रसमय ही नही बनाते, किन्तु रसविभोर कर देते है। भगवत्ने वस्तुतः सीधी-सादी भाषामे यह सुन्दर नाटक लिखा है।

वर्द्धमान–महावीर

इस नाटकके रचयिता श्री व्रजकिशोर नारायण है। इसमे विश्वकी अनन्यतम विभूति भगवान् महावीरके आदर्श जीवनको अकित किया गया है।

वर्द्धमान जन्मसे ही असाधारण व्यक्ति थे। बचपनके साथी भी उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर उनकी जयजयकार मनाते रहते थे।

कथानक

भगवान् वर्द्धमानकी अद्भुत वीरता और अलौकिक कार्योके कारण उनके माता-पिताने भी उन्हे देवता स्वीकार कर लिया था। जब कुमार वयस्क हुए तो पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशलाको पुत्र-विवाहकी चिन्ता हुई, किन्तु विरागी महावीर बराबर टालमटूल करते रहे। जब माता-पिताका अधिक आग्रह देखा तो उन्होने एक विनीत आज्ञाकारी पुत्रके समान उनके आदेशका पालन किया और विवाह कर लिया। जब माता-पिताका स्वर्गवास हो गया और भगवान्के भाई नन्दिवर्द्धनने राज्यभार ग्रहण किया तो वर्द्धमानका

२—नाटककी भाषा सरल, सुबोध और भावानुकूल हो।

३—दृश्य परिवर्तन समयानुकूल और व्यवस्थित हो।

४—कथावस्तु जटिल न हो।

५—गीतोका बाहुल्य न हो तथा नृत्य भी न रहे तो अच्छा है।

६—पात्रोका चरित्र माननीय हो।

७—कथोपकथन विस्तृत न हो, स्वगत भाषण न हो।

इन गुणोकी दृष्टिसे वर्द्धमान नाटकमे अभिनय सम्बन्धी बहुत कम त्रुटियाँ है। यह अधिकसे अधिक दो घण्टेमे समाप्त किया जा सकता है। दृश्य-परिवर्तन रगमचके अनुसार हुए है। कथावस्तु सरल है। हाँ, सगीतका न रहना कुछ खटकता है, नाटकमे इसका रहना आवश्यक-सा है।

नाटकोमे कथा और चारित्रको स्पष्ट करनेके लिए कथोपकथनका आश्रय लिया जाता है। इस नाटकके कथोपकथन नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करनेकी क्षमता रखते है। श्राव्य-अश्राव्य और नियत श्राव्य तीनो प्रकारके कथोपकथनोसे ही इसमे श्राव्य कथोपकथनको ही प्रधानता दी गई है। त्रिशला और सुचेताका निम्न कथोपकथन कथाके प्रवाहको कितना सरस और तीव्र बना रहा है, यह दर्शनीय है—

त्रिशला—सुचेता! मै तालावमे सबसे आगे तैरते हुए दोनो हसोको देखकर अनुभव कर रही हूँ जैसे मेरे दोनो पुत्र नन्दिवर्द्धन और वर्द्धमान जलक्रीडा कर रहे है। दोनोमे जो सबसे आगे तैर रहा है वह

सुचेता—वह कुमार नन्दिवर्धन है महारानी!

त्रिशला—नही सुचेता, वह वर्द्धमान है। नन्दिवर्द्धनमे इतनी तीव्रता कहाँ? इतनी क्षिप्रता कहाँ? देख, देख, किस फुर्त्तीसे कमलकी परिक्रमा कर रहा है शरारती कहींका।

यह सब होते हुए भी पात्रोके अन्तर्द्वन्द्व-द्वारा कथोपकथनमे जो एक प्रकारका प्रवाह आ जाता है, वह इसमे नही है। लेखक चाहता तो

भगवान महावीरके माता-पिताकी मृत्यु, तपस्याकी साधना आदि अव-सरोंपर स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्वकी योजना कर सकता था।

पात्रोंका वैयक्तिक विकास भी इसमें नहीं दिखलाया गया है। नन्दि-वर्धन, सिद्धार्थ, प्रियदर्शनाका व्यक्तित्व इस नाटकमें गुमसुम है। स्वयं सिद्धार्थ वर्धमानके समक्ष विवाहका प्रस्ताव आदेशके रूपमें नहीं, बल्कि प्रार्थनाके रूपमें उपस्थित करते हैं। यह नितान्त अस्वाभाविक है। हाँ पिता प्रेमसे समझा सकते थे या मधुर वचनों द्वारा पुत्रको फुसलाकर विवाह करा सकते थे।

नाटकमें अवस्थाएं और अर्थ प्रकृतियाँ भी स्पष्ट नहीं आ सकी हैं। हाँ, खींच तानकर पाँचों अवस्थाओंकी स्थिति दिखलाई जा सकती है।

रस परिपाककी दृष्टिसे यह रचना सफल है। न यह सुखान्त है और न दुःखान्त ही। महावीरके निर्वाण लाभके समय शान्तरसका सागर उमड़ने लगता है। अहिंसा मानवके अन्तस्का प्रक्षालन कर उसे भगवान बना देती है। यही इस नाटकका सन्देश है। वर्तमानकी समस्त बुराइयाँ इस अहिंसाके पालन करनेसे ही दूर की जा सकती हैं।

निबन्ध-साहित्य

आधुनिक युग गद्यका माना जाता है। आज कहानी, उपन्यास और नाटकोंके साथ निबन्ध साहित्यका भी महत्वपूर्ण स्थान है। जैन हिन्दी गद्य साहित्यका भाण्डार निबन्धोंसे जितना भरा गया है, उतना अन्य अंगोंसे नहीं। प्रायः सभी जैन लेखक हिन्दी भाषाके माध्यम-द्वारा तत्त्वज्ञान, इतिहास और विज्ञानकी ऊँची-से-ऊँची बातोंको प्रकट कर रहे हैं। यद्यपि मौलिक प्रतिभा-सम्पन्न निबन्धकारोंकी संख्या अत्यल्प है, तो भी अपने अभीप्सित विषयके निरूपणका प्रयास अनेक जैन लेखकोंने किया है। निबन्ध साहित्य इतने विपुल परिमाणमें उपलब्ध

है कि इस प्रकरणमें उसका परिचय देना शक्तिसे बाहरकी बात है। समग्र निबन्ध साहित्यका समुचित वर्गीकरण करना भी टेढ़ी खीर है।

हिन्दी भाषामें लिखित जैन निबन्ध साहित्यको ऐतिहासिक, पुरातत्त्वात्मक, आचारात्मक, दार्शनिक, साहित्यिक, सामाजिक और वैज्ञानिक इन सात भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। यों तो विषयकी दृष्टिसे जैन निबन्ध साहित्य और भी कई भागोंमें बाँटा जा सकता है, परन्तु उक्त विभागों-द्वारा ही निबन्धोंका वर्गीकरण करना अधिक अच्छा प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक

ऐतिहासिक निबन्धोंकी संख्या लगभग एक सहस्र है। इस प्रकारके निबन्ध लिखनेवालोंमें सर्वश्री नाथूराम प्रेमी, प० जुगलकिशोर मुख्तार, प० सुखलालजी सघवी, मुनि जिनविजय, मुनि कल्याणविजय, श्री बाबू कामताप्रसाद, श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, प्रो० हीरालाल, प्रो० ए० एन० उपाध्ये, प० के० भुजबली शास्त्री, प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला आदि हैं।

विशुद्ध इतिहासकी अपेक्षा जैनाचार्यो, जैनकवियों एव अन्य साहित्य निर्माताओंका शोधात्मक परिचय लिखनेमें श्री प्रेमीजीका अधिक गौरवपूर्ण स्थान है। प्रेमीजीने स्वामी [1]समन्तभद्र, [2]आचार्य प्रभाचन्द्र, [3]देवसेन सूरि, [4]अनन्तकीर्ति आदि नैयायिकोंका, आचार्य [5]जिनसेन और [6]गुणभद्र प्रभृति सस्कृत भाषाके आदर्श पुराण निर्माताओंका आचार्य [7]पुष्पदन्त और [8]विमलसूरि आदि प्राकृतभाषाके पुराण-निर्माताओंका, [9]स्वयभू तथा [10]त्रिभुवन स्वयभू प्रभृति प्राकृत भाषाके कवियोंका कविराज

---

१. विद्वद्रत्नमाला पृ० १५९। २. अनेकान्त १९४१। ३ जैन हितैषी १९२१। ४ जैनहितैषी १९१५। ५. हरिवंश पुराणकी भूमिका १९२०। ६. जैनहितैषी १९११। ७. जैन साहित्य संशोधक १९२३। ८. जैन साहित्य और इतिहास पृ० २७२। ९–१०. जैन साहित्य और इतिहास पृ० ३७०।

परम्परा, निवास-स्थान और समय निर्णय आदिकी शोध करनेमे आपका अद्वितीय स्थान है। मुख्तार साहबके लिखनेकी शैली अपनी है। वह किसी भी तथ्यका स्पष्टीकरण इतना अधिक करते है कि जिससे एक साधारण पाठक भी उस तथ्यको हृदयगम कर सकता है। आपने विद्वता-पूर्ण प्रस्तावनाओमे जैन सस्कृति और साहित्यके ऊपर अद्‌भुत प्रकाश डाला है।

श्री पूज्यपाद और उनका समाधितन्त्र[1], भगवान् महावीर और उनका समय, पात्रकेशरी और विद्यानन्द[3], कवि राजमल्लका पिंगल[4] और राजा-भारमल्ल, तिलोयपण्णत्ति[5] और यतिवृषभ, कुन्दकुन्द और यतिवृषभमे पूर्ववर्ती कौन है? आदि निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। "पुरातन जैनवाक्य" सूचीकी प्रस्तावना ऐतिहासिक तथ्योका भाण्डार है।

इतिहास-निर्माता होनेके साथ-साथ मुख्तार साहब सफल आलोचक भी है। आपकी आलोचनाएँ सफल और खरी होती है "ग्रन्थपरीक्षा" आपका एक आलोचनात्मक बृहद्ग्रन्थ है जो कई भागोमे प्रकाशित हुआ है। हिन्दी गद्यके विकासमे मुख्तार साहबका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मुख्तार साहबकी गद्यशैलीकी सबसे बडी विशेषता यह है कि वह एक ही विषयको बार-बार समझाते चलते है। इसी कारण कुछ लोग उनकी शैलीमे भाषाकी बहुलता और विचारोकी अल्पताका आरोप करते है, पर वास्तविकता यह है कि मुख्तार साहब लिखते समय सचेष्ट रहते है कि कही भावोकी व्यजनामे अस्पष्टता न रह जाय, इसी कारण यथावसर विषयको अधिक स्पष्ट एव व्यापक करनेको तत्पर रहते है। आपकी भाषा मे साधारण प्रचलित उर्दू शब्द भी आ गये है। मुख्तार साहब भाषाके

---

१. जैनसिद्धान्तभास्कर भाग पाँच पृष्ठ १। २. अनेकान्त वर्ष १ पृ० २। ३. अनेकान्त वर्ष १ पृ० ६-७। ४. अनेकान्त वर्ष ४ पृ० ३०३। ५ वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ३२३।

शब्दविधानमे भी उत्कृष्टता और विशदताका पूरा ध्यान रखते है। साथ ही व्यर्थके शब्दाडम्बरको स्थान देना आपको पसन्द नही है। साधारणत आपकी शैली सगठित एव व्यवस्थित है। किन्तु धारावाहिक प्रवाहकी कमी कही कही खटकती है। वाक्य आपके साधारण विचारसे कुछ बडे, पर गठनमे सीधे-सादे एव सरल होते है।

'मुनि श्री कल्याणविजय के वीर-निर्वाण सवत् और जैनकालगणना'[1] तथा राजा खारवेल और उनका वश प्रभृति प्रसिद्ध ऐतिहासिक निबन्ध है। प्रथम निबन्ध जैन इतिहासकी अमूल्य निधि है। इसमे मुनिजीने चद्रगुप्त, अशोक, सम्प्रति आदि मौर्य राजाओके सम्बन्धमे अनेक ऐतिहासिक तथ्योपर प्रकाश डाला है। यह निबन्ध पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है। जैनकालगणनापर बौद्धधर्मकी मान्यता, तथा अन्य पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणोसे विचार किया है। अपने मतकी पुष्टिके लिए मुनिजीने बौद्ध ग्रन्थो, जैन ग्रन्थो, हिन्दू पुराणो एव इतिहास-कारोके मत उद्धृत किये है।

विशुद्ध सास्कृतिक इतिहास-निर्माणके लिए आपके निबन्धोका महत्त्व-पूर्ण स्थान है। आपकी भाषा सरल है और विषयको स्पष्ट करनेकी क्षमता विद्यमान है। सस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग बडी सावधानीके साथ किया गया है। यद्यपि वाक्यगठनकी शैलीका अभाव है तो भी भाषाशैथिल्य नहीं है। लम्बे-लम्बे वाक्य होनेके कारण कहीं-कहीं दूरा-न्वय दोष भी है। साधारणत. शैलीमे धाराबाहिकता है।

श्रीबाबू कामताप्रसादका विशुद्ध जैन इतिहासनिर्माताओमे अपना निजी स्थान है। अनेक राजाओ, वशो और स्थानोके सम्बन्धमे आपने महत्त्वपूर्ण गवेषणाएँ की है। अबतक आपके अनेक निबन्ध और अनु-सन्धानात्मक लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके है। दिगम्बर जैन सम्प्र-

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० और ११। २. अनेकान्त वर्ष १ पृ० २६६।

दायमे निबन्धोकी परिमाणबहुलताकी दृष्टिसे आपका स्थान अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। सभी विषयोपर आपके निबन्ध निकलते रहते है। "गगराजवशमे[१] जैनधर्म, मुसलमान राज्यकाल[२]मे जैनधर्म, वैराट या विराटपुर,[३] काम्पिल्य[४], श्रवणबेल्गोलके[५] शिलालेख, श्रीनिर्वाणक्षेत्र गिरनार[६], जैन साहित्यमे लका, रत्नद्वीप और सिहल[७], चीन देश और जैनधर्म[८], अरब अफगानिस्तान और ईरानमे जैनधर्म[९], भगवान् महावीरका विहार प्रदेश[१०] प्रभृति निबन्ध-महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि ऐतिहासिक तथ्योकी दृष्टिसे कतिपय अन्वेषक विद्वान् इन निबन्धोमे कुछ त्रुटियाँ पाते है, फिर भी सामग्रीका सकलन और गद्य-साहित्यके विकासकी दृष्टिसे इनका विशेष महत्त्व है। जैनतीर्थकरो, चक्रवर्तियो एव अनेक राजाओके सम्बन्धमे बाबू कामताप्रसादजीने अनु-सन्धान किया है। लेखनशैली व्यवस्थित है। ऐतिहासिक घटनाओकी शृङ्खलाका गठित रूप आपके निबन्धोमे पाया जाता है।

ऐतिहासिक सामग्रीके अध्ययनमे श्री पं० के० भुजबली शास्त्रीके ऐतिहासिक निबन्ध भी महत्त्वपूर्ण है। यो तो अबतक आपके १५०-२०० निबन्ध प्रकाशित हो चुके है। फिर भी निम्ननिबन्ध विशेष महत्वके है।[११]

बारकूर[१२], वेणूरु[१३], क्या वादीभसिह अकलकदेवके समकालीन[१४] है,

---

१. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ५ पृ० २०९। २. जैन सिद्धान्त-भास्कर भाग ५ पृ० १२५। ३. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ५ पृ० २४। ४ जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ५ पृ० ८४। ५. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ६। ६ जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ६ पृ० १७८। ७. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १६ पृ० ९१। ८ जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १५ पृ० ७३। ९. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १७ पृ० ७८। १०. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १२ पृ० १६। ११. भास्कर भाग ५ पृ० २१०। १२. जैन सिद्धान्तभास्कर भाग ११ पृ० २३३। १३. भास्कर भाग ५ पृ० २३४। १४ भास्कर भाग ६ पृ० ७८।

वीरमार्तण्ड-चामुण्डराय[1], वादीभसिंह[2], जैनवीर बंकेय[3], हुमुच, और वहाँका सातर राजा जिनदत्तराय[4], तौलवके जैन पालेयगार[5], कारकलका जैन भैररस राजवंश[6] और दानचिन्तामणि[7] अतिमव्वे।

दक्षिण भारतके राजाओं, कवियों, तालुकेदारों, आचार्यों और दानी श्रावकोंपर आपके कई अन्वेषणात्मक निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। आपके गवेषणात्मक निबन्धोंकी यह विशेषता है कि आप थोड़ेमें ही समझानेका प्रयास करते हैं। वाक्य भी सुव्यवस्थित और गम्भीर होते हैं। यद्यपि तथ्योंके निरूपणमें ऐतिहासिक कोटियों और प्रमाणोंकी कमी है, तो भी हिन्दी जैन साहित्यके विकासमें आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायः सभी निबन्धोंमें ज्ञानके साथ विचारका सामञ्जस्य है। शब्दचयन, वाक्यविन्यास और पदावलियोंके संगठनमें सतर्कता और स्पष्टताका आपने पूरा ध्यान रखा है।

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयके जैन-पूर्वजोंकी वीरताका स्मरण करानेवाले ऐतिहासिक निबन्ध भी जैन हिन्दी साहित्यमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। गोयलीयजीने जैनवीरोंके चरित्रको बड़े ही जोश-खरोशके साथ चित्रित किया है। इनके निबन्धोंको पढ़कर मुर्दोंमें भी वीरता अंकुरित हो सकती है, जीवितोंकी तो बात ही क्या? शैलीमें चमत्कार है, कथनप्रणाली रूखी न हो इसलिए आपने व्यंग और विनोदका भी पूरा समावेश किया है। आपकी भाषामें उछल कूद है। वह चिकोटी काटती हुई चलती है। पत्र-पत्रिकाओंमें आपके अनेक ऐतिहासिक निबन्ध प्रकाशित हैं।

---

१ भास्कर भाग ६ पृ० २२९। २ भास्कर भाग ७ पृ० १। ३ भास्कर भाग १२ कि २ पृ० २२। ४ जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १४ किरण १ पृ० ४२। ५. भास्कर १७ किरण २ पृ० ८८। ६ वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० २४२। ७. ज्ञानोदय सितम्बर १९५१।

राजपूतानेके जैनवीर, मौर्य साम्राज्यके जैनवीर, आर्यकालीन भारत आदि पुस्तकाकार सकलित महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है। गोयलीयजीकी ये रचनाएँ नवयुवकोका पथ प्रदर्शन करनेके लिए उपादेय है।

इतिहास और पुरातत्त्वके वेत्ता श्री डा० हीरालाल जैन अन्वेषणात्मक और दार्शनिक निबन्ध लिखते है। कई ग्रन्थोकी भूमिकाएँ आपने लिखी है, जो इतिहासके निर्माणमे विशिष्ट स्थान रखती है। जैन इतिहासकी पूर्वपीठिका तो शोधात्मक अपूर्व वस्तु है। इस छोटी-सी रचनामे गागरमे सागर भर देनेवाली कहावत चरितार्थ हुई है। आपकी रचनाशैली प्रौढ है। उसमे धारावाहिकता पाई जाती है। भाषा सुव्यवस्थित और परिमार्जित है। थोडे शब्दोमे अधिक कहनेकी कलामे आप अधिक प्रवीण है। महाधवल, धवलसम्बन्धी आपके परिचयात्मक निबन्ध भी महत्वपूर्ण है। श्रवणबेल्गोलके जैन शिलालेखोकी प्रस्तावनामे आपने अनेक राजाओ, रानियो, यतियो और श्रावकोके गवेषणात्मक परिचय लिखे है।

मुनि श्री कान्तिसागरके पुरातत्त्वान्वेषणात्मक निबन्धोका विशिष्ट स्थान है। अबतक आपने अनेक स्थानोके पुरातत्त्वपर प्रकाश डाला है। प्राचीन मूर्तिकला और वास्तुकलाका मार्मिक विश्लेषण आपके निबन्धोमे विद्यमान है। प्राचीन जैन चित्रकलापर भी आपके कई निबन्ध "विशाल भारत" मे सन् १९४७ मे प्रकाशित हुए है। प्रयाग सग्रहालयमे जैन पुरातत्त्व[1] तथा विन्ध्यभूमिका जैनाश्रितशिल्प स्थापत्य[2] निबन्ध बडे महत्त्वपूर्ण है। शैली विशुद्ध साहित्यिक है। भाषा प्रौढ और परिमार्जित है। अभी हाल ही मे भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशित खण्डहरोका वैभव, और खोजकी पगडडियाँ इतिहास और पुरातत्त्वकी दृष्टिसे मुनिजीके निबन्धोका महत्त्वपूर्ण सकलन है।

---

१. ज्ञानोदय सितम्बर १९४९ और अक्टूबर १९४९। २. ज्ञानोदय सितम्बर १९५० और दिसम्बर १९५०।

ऐतिहासिक निबन्ध रचयिताओमे प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला एम० ए० साहित्याचार्यका भी अपना स्थान है। आपके निबन्धोमे अन्वेषण एव पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण विद्यमान है। विषय प्रतिपादनकी शैली प्रौढ एव गम्भीर है। अबतक आपके सास्कृतिक और ऐतिहासिक अनेक निबन्ध प्रकाशित हो चुके है पर गोम्मटेशप्रतिष्ठापक[1] और कलिंगाधिपति-खारवेल[2] निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। आपकी भाषा बडी ही परिमार्जित है। पुष्ट चिन्तन और अन्वेषणको सरल और स्पष्टरूपमे आपने अभिव्यक्त किया है। इतिहासके शुष्क तत्त्वोका स्पष्टीकरण स्वच्छ और बोधगम्य है।

सबसे अधिक निबन्ध आचार और दर्शनपर लिखे गये है। लगभग २०, ३५ विद्वान् उपर्युक्त कोटिके निबन्ध लिखते है। इन निबन्धोकी सख्या दो सहस्रके ऊपर है। यहाँ कुछ श्रेष्ठ निबन्धकारोकी शैलीका परिचय दिया जायगा। यद्यपि उक्त विषयके सभी निबन्ध विचार-प्रधान हैं तो भी इनमे वर्णनात्मकता विद्यमान है।

आचारात्मक और दार्शनिक निबन्ध साहित्य

दार्शनिक शैलीके श्रेष्ठ निबन्धकार श्री प० सुखलालजी सघवी है। योगदर्शन और योगविंशतिका, प्रमाणमीमासा, ज्ञानबिन्दुकी प्रस्तावनासे दर्शन और इतिहास दोनो ही विवेचनोमे आपकी तुलनात्मक विवेचन पद्धतिका पूरा आभास मिल जाता है। आपकी शैलीमे मननशीलता, स्पष्टता, तर्कपटुता और बहुश्रुताभिज्ञता विद्यमान है। दर्शनके कठिन सिद्धान्तोको बडे ही सरल और रोचक ढगसे आप प्रतिपादित करते है।

आपके सास्कृतिक निबन्धोका गद्य बहुत ही व्यवस्थित है। भाषामे प्रवाह है और अभिव्यजनामे चमत्कार पाया जाता है। थोडेमे बहुत प्रतिपादनकी क्षमता आपके गद्यमे है।

---

१ जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १३ किरण १ पृ० १। २. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १६ किरण १–२।

श्री पं० शीतलप्रसादजी इस शताब्दीके उन आदिम दार्शनिक निबन्धकारोमे हैं जो साहित्यके लिए पथप्रदर्शक कहलाते है। आपने अपनी अप्रतिम प्रतिभा-द्वारा इतना अधिक लिखा है कि जिसके सकलन-मात्रसे जैनसाहित्यका पुस्तकालय स्थापित किया जा सकता है। श्री ब्रह्मचारीजी दृढ अध्यवसायी थे। यही कारण है कि आपकी शैलीमे अभ्यास और अध्ययनका मेल है। ब्रह्मचारीजीने सीधी-सादी भाषामे अपने पुष्ट विचारोको अभिव्यक्त किया है। दर्शन और इतिहास दोनो ही विषयोपर दर्जनो पुस्तके एव सहस्रो निबन्ध आपके प्रकाशित हो चुके है। ऐसा कोई विषय नही जिसपर आपने न लिखा हो। वहुमुखी प्रतिभाका उपयोग साहित्य सृजनमे किया, पर सुयोग्य सहयोगी न मिलनेसे सुन्दर चीजे न निकल सकी। आपकी तुलना मै राहुलजीसे करूँ तो अनुचित न होगा। राहुलजीके समान ब्रह्मचारीजी भी महीनेमे कमसे कम एक पुस्तक अवश्य लिख देते थे। यदि आपकी प्रतिभा आध्यात्मिक उपन्यासोकी ओर मुड जाती तो निश्चय जैन साहित्य आज हिन्दी साहित्यमे अपना विशिष्ट स्थान रखता।

श्री पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री दार्शनिक, आचारात्मक और ऐतिहासिक निबन्ध लिखनेमे सिद्धहस्त हैं। आपकी न्यायकुमुदचन्द्रोदयकी प्रस्तावना जो कि दार्शनिक विकासक्रमका ज्ञान-भाण्डार है, जैन साहित्यके लिए स्थायी निधि है। आपके स्याद्वाद और सप्तभगी[1], अनेकान्तवादकी व्यापकता और चारित्र[2], शब्दनय[3], महावीर और उनकी विचारधारा[4], धर्म और राजनीति[5] प्रभृति निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। "जैनधर्म"[6] तो शिष्ट और सयत भाषामे लिखी गई अद्वितीय पुस्तक है।

१. जैनदर्शन वर्ष २ अक ४–५ पृ० ८२। २ जैनदर्शन नवम्बर १९३४। ३ वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ९। ४. श्री महावीर स्मृति ग्रन्थ पृ० १३। ५. अनेकान्त वर्ष १ पृ० ६००। ६. प्रकाशक दिगम्बर जैन संघ, मथुरा।

तत्त्वार्थसूत्रपर दार्शनिक विवेचन भी रोचक और ज्ञानवर्द्धक है।

पण्डितजीकी निबन्धशैली बहुत अंशोंमें हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी शैलीसे मिलती-जुलती है। दोनोंकी शैलीमें गम्भीरता, सरलता, अन्वेषणात्मकचिन्तन एवं अभिव्यञ्जनाकी स्पष्टता समान रूपसे है। अन्तर इतना ही है कि आचार्य शुक्लने साहित्य और आलोचना विषयपर लिखा है, जब कि पण्डितजीने एक धर्म विशेषसे सम्बद्ध आचार, दर्शन और इतिहासपर।

श्री पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीका भी दार्शनिक निबन्धकारोंमे महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने तत्त्वार्थसूत्रका विशद विवेचन बड़े ही सुन्दर ढंगसे किया है। आपके फुटकर ५०–६० महत्त्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। दार्शनिक निबन्धोंके अतिरिक्त आप सामाजिक निबन्ध भी लिखते हैं। समाजकी उलझी हुई समस्याओंको सुलझानेके लिए आपने अनेक निबन्ध लिखे हैं। जैनदर्शनके कर्मसिद्धान्त विषयके तो आप मर्मज्ञ ही हैं, ज्ञानोदयमें कर्मसिद्धान्तपर आपके कई निबन्ध आधुनिक शैलीमें प्रकाशित हुए हैं।

श्री प्रोफेसर महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यके दार्शनिक निबन्ध भी जैन साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं। अकलङ्कग्रन्थत्रयकी प्रस्तावना, न्याय-विनिश्चय विवरणकी प्रस्तावना, श्रुतसागरी वृत्तिकी प्रस्तावनाके सिवा आपके अनेक फुटकर निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। इन निबन्धोंमे जैन-दर्शनके मौलिकतत्त्व और सिद्धान्तोंका सुन्दर विवेचन विद्यमान है। एक साधारण हिन्दीका जानकार भी जैनदर्शनके गूढ तत्त्वोंको हृदयंगम कर सकता है। आपके निबन्ध निगमनशैलीमें लिखे गये हैं। प्रघट्टक (Paragraph) के आरम्भ ही में समास या सूत्र रूपमें सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है। थोड़ेमें अधिक कहनेकी प्रवृत्ति आपकी लेखनकलामें विद्यमान है।

श्री प० चैनसुखदास न्यायतीर्थ भी दार्शनिक निबन्धकार हैं।

आपके आचार-विषयपर भी अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए है। लेखन-शैली सरल है। अभिव्यञ्जना चमत्कारपूर्ण है। हॉ, भाषामे जहॉ-तहॉ, प्रवाह-शैथिल्य है।

श्री प० दलसुख मालवणियाके दार्शनिक निबन्धोने जैनहिन्दी साहित्य-को समृद्धिशाली बनाया है। आपके जैनागम, आगम युगका अनेकान्त-वाद, जैनदार्शनिक साहित्यका सिहावलोकन आदि निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। आपकी लेखनशैली गम्भीर है। विषयका स्पष्टीकरण सम्यक् रूपसे किया गया है। आलोचनात्मक दार्शनिक निबन्धोमे कुछ गम्भीरता पाई जाती है।

श्री पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य लब्धप्रतिष्ठ दार्शनिक निबन्धकार है। आप सामाजिक समस्याओपर भी लिखते है। स्याद्वाद, नय, प्रमाण, कर्मसिद्धान्तपर आपके कई निबन्ध प्रकाशित हो चुके है। आपके वाक्य छोटे हो या बडे सभी सम्बद्ध व्याकरणके अनुसार और स्पष्ट होते है। दार्शनिक निबन्धोकी भाषा गम्भीर और सयत है। सरलसे सरल वाक्योमे गभीर विचारोको रख सके है। उदार और उच्च-विचार होनेके कारण सामाजिक निबन्धोमे प्राचीन रूढ़ परम्पराओके प्रति अनास्थाकी भावना मिलती है।

श्री प० दरबारीलाल न्यायाचार्य भी दार्शनिक निबन्ध लिखते है। न्यायदीपिकाकी प्रस्तावना और आप्तपरीक्षाकी प्रस्तावनाके अतिरिक्त अनेकान्तवाद, द्रव्यव्यवस्था और पदार्थव्यवस्थापर आपके कई निबन्ध निकल चुके है। आपकी शैली मुख्तारी है, शब्दबाहुल्य, भावाल्पता आपके निबन्धोमे है। हॉ, विषयका स्पष्टीकरण अवश्य पाया जाता है। शैलीमे प्रवाह गुणकी भी कमी है। यह प्रसन्नताका विषय है कि दरबारी-लालजीकी शैली उत्तरोत्तर विकसित हो रही है। आपके आरम्भिक निबन्धोमे भाषाबाहुल्य है पर वर्त्तमान निबन्धोकी भाषा व्यवस्थित और सयत है।

श्री पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्रीका भी दार्शनिक निबन्धकारोमे महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने द्रव्यसग्रहकी विशेष वृत्ति लिखी है, जिसमे अनेक दार्शनिक पहलुओपर प्रकाश डाला है। स्याद्वाद, तत्त्व, बन्ध-व्यवस्था, कर्मसिद्धान्त प्रभृति विषयोपर आपके निबन्ध प्रकाशित हुए है। अन्वेषणात्मक और भौगोलिक निबन्ध भी आपने लिखे है। आपकी विषयविवेचनशैली तर्कपूर्ण है। यद्यपि कही कही भाषामे पडिताऊपन है तो भी सरलता, स्पष्टता और मनोरजकताकी कमी नही है।

श्री प० जगन्मोहनलालजी सिद्धान्तशास्त्रीके दार्शनिक और आचारात्मक निबन्ध अत्यन्त प्रसिद्ध है। आपके अबतक लगभग ७०–८० निबन्ध प्रकाशित हो चुके है। आपकी लेखनशैली सरल एव स्पष्ट है। एक अध्यापकके समान आप विषयको समझानेकी पूरी चेष्टा करते है। भाषा परिमार्जित और सयत है। शुष्क विषयको भी रोचक ढगसे समझाना आपकी शैलीकी विशेषता है।

साहित्यिक और सामाजिक निबध

साहित्यिक निबन्ध लिखनेवालोमे श्री प्रेमीजी, बाबू कामताप्रसादजी, श्री मूलचन्द वत्सल, प० पन्नालाल वसंत, प० परमानन्द शास्त्री, प्रो० राजकुमार एम० ए०, साहित्याचार्य, श्री जमनालाल साहित्यरत्न, श्री ऋषभदास रॉका, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री पं० नाथूलाल साहित्यरत्न प्रभृति है।

श्री प्रेमीजीने कवियोकी जीवनियॉ शोधात्मक शैलीमे लिखी है। आपका "हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास" आजतक पथप्रदर्शक बना हुआ है। इसमे प्राय· सभी प्रमुख कवियोका जीवन-परिचय सकलित किया गया है। प्रेमीजीके ही पथपर श्री बाबू कामताप्रसादजी भी चले पर उनसे एक कदम आगे। आपने कुछ व्यवस्थित रूपसे दो चार नवीन उद्धरण देकर तथा कुछ नवीन युक्तियोके साथ "हिन्दी जैन साहित्यका सक्षित इतिहास" लिखा। "मनुष्य त्रुटियोका कोष है। अत.

त्रुटि रह जाना मानवता है।" इस युक्तिके अनुसार आपके इतिहासमे कुछ त्रुटियाँ रह गई है जिनका कतिपय समालोचकोने असहिष्णुताके साथ दिग्दर्शन कराया है। फलतः जैन हिन्दी साहित्यके इतिहासपर आगे अन्वेषण करनेका साहस नवीन लेखकोको नही हो सका। यदि अहम्मन्य समालोचकोंकी ऐसी ही असहिष्णुता रही तो सम्भवतः अभी और कुछ दिन तक यह क्षेत्र सूना रहेगा। यद्यपि ऐसे समालोचक खरी समालोचना करनेका दावा करते है पर यह दम्भ है। इससे नवीन लेखकोका उत्साह ठण्डा पड जाता है।

श्री महात्मा भगवानदीन और बाबू श्री सूरजभान वकील सफल निबन्धकार हैं। आपके निबन्ध रोचक और ज्ञानवर्धक है। साहित्यान्वेषणात्मक अनेक निबध "वीरवाणी" मे प्रकाशित हुए है। जयपुरके अनेक कवियोपर शोधकार्य श्री पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ तथा उनकी शिष्यमडली कर रही है, जो जैन हिन्दी साहित्यके लिए अमूल्य निधि है।

श्री अगरचन्द नाहटाने अबतक तीन, चार सौ निबन्ध कवियोके जीवन, राजाश्रय एव जैनग्रन्थोके परिचयपर लिखे है। शायद ही जैन-अजैन ऐसी कोई पत्रिका होगी जिसमे आपका कोई निबन्ध प्रकाशित न हुआ हो। आपके कई निबन्धोने तो हिन्दी साहित्यकी कई गुत्थियोंको सुलझाया है। "पृथ्वीराजरासो"के विवादका अन्त आपके महत्त्वपूर्ण निबन्ध द्वारा ही हुआ है। वीसलदेवरासो और खुमानरासोके रचनाकाल और रचयिताके सम्बन्धमे विवाद है। आशा है, हिन्दी साहित्यके इतिहासलेखक आपके निबन्धो द्वारा तटस्थ होकर इन ग्रन्थोकी प्रामाणिकतापर विचार करेंगे।

श्रीमती पं० ब्र० चन्दाबाईजीने महिलोपयोगी साहित्यका सृजन किया है। अनेक निबन्ध-सग्रह आपके प्रकाशित हो चुके है। लेखनशैली सरल है, भाषा स्वच्छ और परिमार्जित है।

श्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी एम० ए० ने ज्ञानपीठसे प्रकाशित पुस्तकोंके सम्पादकीय वक्तव्योमे अनेक साहित्यिक चर्चाओपर प्रकाश डाला है। मुक्तिदूत और वर्द्धमानके सम्पादकीय वक्तव्य तो महत्त्वपूर्ण है ही, पर "वैदिक साहित्य" की प्रस्तावना एक नवीन प्रकाशकी किरणे विकीर्ण करती है। आपकी शैली गम्भीर, पुष्ट, सयत और व्यवस्थित है। धारा-वाहिक गुण प्रधान रूपसे पाया जाता है।

श्री मूलचन्द वत्सल पुराने साहित्यकारोमे है। आपने प्राचीन कवियो पर कई निबन्ध लिखे है। आपकी शैली सरल है। भाषा सीधी-सादी है।

श्री प० परमानन्द शास्त्री, वीर सेवा मन्दिर सरसावाने, अपभ्रशके अनेक कवियोपर शोधात्मक निबन्ध लिखे है। महाकवि 'रइधू' के तो आप विशेषज्ञ है। आपकी शैली शब्दबहुला है, कही-कही बोझिल भी मालूम पडती है।

श्री प्रो० राजकुमार साहित्याचार्यने दौलतराम और भूधरदासके पदोका आधुनिक विश्लेषण किया है। आपके द्वारा लिखित मदन पराजय की प्रस्तावना कथा-साहित्यके विकास-क्रम और मर्मको समझनेके लिए अत्यन्त उपादेय है। आपकी शैली पुष्ट और गम्भीर है। प्रत्येक शब्द अपने स्थानपर बिल्कुल फिट है। कवि होनेके कारण गद्यमे काव्यत्व आ गया है।

श्री प० पन्नालाल वसन्त साहित्याचार्यके अनेक साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हो चुके है। आपने "आदिपुराण" की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना लिखी है। जिसमे सस्कृत जैन साहित्यके विकास क्रमका बडा रोचक वर्णन किया है। आपकी शैली परिमार्जित और सरल है।

श्री जमनालाल साहित्यरत्न अच्छे निबन्धकार है। जैन जगत्मे आपके अनेक साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हुए हैं।

श्री ज्योतिप्रसाद जैन एम० ए०, एल-एल० बी० के भी ऐतिहासिक

और साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हुए है। आपके निबन्धोमे पूज्यपाद सम्बन्धी निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। शैली शोधपूर्ण है।

श्री प० बलभद्र न्यायतीर्थ के सामाजिक और साहित्यिक निबन्ध जैन सदेशमे प्रकाशित होते रहते है। आपकी भाषामे प्रवाह रहता है, एव शैलीमे विस्तार।

श्री ऋषभदास राँकाके अनेक प्रौढ निबन्ध सामाजिक और साहित्यिक विषयोपर प्रकाशित हुए है। आपकी शैली प्रवाहपूर्ण है, और वर्णनमे सजीवता है।

श्री नत्थूलाल शास्त्री साहित्यरत्नके सामाजिक और साहित्यिक निबन्ध जैन साहित्यके लिए गौरवकी वस्तु है। आपका "जैन हिन्दी साहित्य" निबन्ध विशेष महत्त्वपूर्ण है। आपकी शैलीमे रोचकता है।

श्री कस्तूरचन्द काशलीवालके शोधात्मक निबन्ध भी महत्त्वपूर्ण है। आपकी शैली रूक्ष होनेपर भी प्रवाहपूर्ण है। विषयके स्पष्टीकरणकी क्षमता आपकी भाषामे पूर्ण रूपसे विद्यमान है।

श्री प्रो० देवेन्द्रकुमार, श्री विद्यार्थी नरेन्द्र, श्री इन्द्र एम० ए०, श्री पृथ्वीराज एम० ए० आदि भी सुलेखक है। दार्शनिक निबन्धकारोमे श्री रघुवीरशरण दिवाकर का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आपने अनेक जीवन गुत्थियोको सुलझानेका प्रयत्न किया है। श्री प्रो० विमलदास एम० ए० भी अच्छे निबन्धकार है। आपके विवेचनात्मक कई निबन्ध प्रकाशित हो चुके है।

सामाजिक, आचारात्मक और दार्शनिक निबन्धकारोमे पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ, पं० वंशीधर व्याकरणाचार्य, पं० फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, श्री स्वतन्त्र, श्री कापडिया आदि है। श्री पण्डित अजितकुमार शास्त्री न्यायतीर्थ ने खण्डनमण्डनात्मक पद्धतिपर कई निबन्ध लिखे है। आपकी शैली तर्कपूर्ण और भाषा सयत है।

श्रीदरबारीलाल सत्यभक्त एक चिन्तनशील दार्शनिक और साहित्य-

कार है। आपकी रचनाओंके द्वारा केवल जैन साहित्य ही वृद्धिगत न हुआ, बल्कि समग्र हिन्दी साहित्यका भाण्डार बढा है।

इस सम्बन्धमे एक नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है, श्रीजैनेन्द्र कुमार जैनका। श्रीजैनेन्द्रजी उच्चकोटिके उपन्यास, कहानीकार तो है ही, निबन्धकारके रूपमे भी आपका स्थान बहुत ऊँचा है। अपने निबन्धोमे आप बहुत सुलझे हुए, चिन्तकके रूपमे उपस्थित होते है। इस समस्त चिंतनकी पार्श्वभूमि आपको जैन दर्शनसे प्राप्त हुई है। यही कारण है कि अनेक प्रकारकी उलझी हुई, समस्याओका समाधान सीधे रूपमे अनेकान्तात्मक सामञ्जस्य द्वारा सफलतापूर्वक करते है। इनकी शैलीके सम्बन्धमे यही कहना पर्याप्त होगा कि इन्होने हिन्दीको एक ऐसी नयी शैली दी है, जिसे जैनेन्द्रकी शैली ही कहा जाता है।

आत्मकथा, जीवनचरित्र और संस्मरण

आत्मकथा, जीवनचरित्र और सस्मरण भी साहित्यकी निधि है। मानव स्वभावत. उत्सुक, गुप्त और रहस्यपूर्ण बातोका जिज्ञासु एव अनुकरणशील होता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरोंके जीवन-चरित्रो, आत्मकथाओ और सस्मरणोको अवगत करनेके लिए सर्वदा उत्सुक रहता है, वह अपने अपूर्ण जीवनको दूसरोके जीवन-द्वारा पूर्ण बनानेकी सतत चेष्टा करता रहता है।

जीवन चरित्रोंकी सत्यतामे आशका पाठकको नही होती है, वह चरित्र-नायकके प्रति स्वतः आकृष्ट रहता है, अतः जीवनमे उदात्तभावनाओ-को सरलतापूर्वक ग्रहण कर लेता है। मानवकी जिज्ञासा जीवन-चरित्रोसे तृप्त होती है, जिससे उसकी सहानुभूति और सेवाका क्षेत्र विकसित होता है। कर्त्तव्यमार्गको प्राप्त करनेकी प्रेरणा मिलती है और उच्चादर्शोंको उपलब्ध करनेके लिए नाना प्रकारकी महत्त्वाकाक्षाएँ उत्पन्न होती हैं।

जीवन-चरित्रोसे भी अधिक लाभदायक आत्मचरित्र (Autobiography) है। पर जगबीती कहना जितना सरल है, आपबीती कहना उतना ही कठिन। यही कारण है कि किसी भी साहित्यमे आत्म कथाओकी सख्या और साहित्यकी अपेक्षा कम होती है। प्रत्येक व्यक्तिमे यह नैसर्गिक सकोच पाया जाता है कि वह अपने जीवनके पृष्ठ सर्व-साधारणके समक्ष खोलनेमे हिचकिचाता है, क्योकि उन पृष्ठोके खुलनेपर उसके समस्त जीवनके अच्छे या बुरे कार्य नग्नरूप धारणकर समस्त जनताके समक्ष उपस्थित हो जाते है। और फिर होती है उनकी कटु आलोचना। यही कारण है कि ससारमे बहुत कम विद्वान् ऐसे है जो उस आलोचनाकी परवाह न कर अपने जीवनकी डायरी यथार्थ रूपमे निर्भय और निधडक हो प्रस्तुत कर सके।

हिन्दी-जैन-साहित्यमे इस शताब्दीमे श्रीक्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी और श्रीअजितप्रसाद जैनने अपनी-अपनी आत्मकथाएँ लिखी है। जीवन-चरित्र तो १५-२० से भी अधिक निकल चुके है। साहित्यकी दृष्टिसे सस्मरणोका महत्त्व भी आत्मकथाओसे कम नही है, ये भी मानवका समुचित पथप्रदर्शन करते है।

मेरी जीवनगाथा[१]

यह औपन्यासिक शैलीमे लिखी गयी आत्मकथा है। श्री क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णीने इसमे अपना जीवनचरित्र लिखा है। यह इतनी रोचक है कि पढना आरम्भ करनेपर इसे अधूरा कोई भी पाठक नहीं छोड सकेगा। इसके पढनेसे यही मालूम होता है कि लेखकने अपने जीवनकी सत्य घटनाओको लेकर आत्मकथाके रूपमे एक सुन्दर उपन्यासकी रचना की है। जीवनकी अच्छी या बुरी घटनाओको पाठकोके समक्ष उपस्थित करनेमे लेखकमे तनिक भी हिचकिचाहट नही है। निर्भयता और निस्सकोचपूर्वक अपनी बीती लिखना जरा टेढी खीर है, पर लेखकको इसमे पूरी सफलता मिली

---

१. प्रकाशक . वर्णी-ग्रथ-माला २।३८ बी. भदैनी, काशी।

उसे अपने पापका फल समाज-बहिष्कार या अन्य प्रकारका दण्ड सहना ही पडता है। इसका आपने कितने सुन्दर शब्दोमे वर्णन किया है—

"पाप चाहे बडा मनुष्य करे या छोटा। पाप तो पाप ही रहेगा, उसका दण्ड उन दोनोको समान ही मिलना चाहिये। ऐसा न होनेसे ही ससारमे आज पंचायती सत्ताका लोप हो गया है। वडे आदमी चाहे जो करें उनके दोपको छिपानेकी चेष्टा की जाती है और गरीबोंको पूरा दण्ड दिया जाता हैं · यह क्या न्याय है ? देखो वडा वही कहलाता है, जो समदर्शी हो। सूर्यकी रोशनी चाहे दरिद्र हो चाहे अमीर दोनोंके घरोंपर समान रूपसे पडती है।"

इस आत्मकथाकी एक सबसे विशेषता यह भी है कि इसमे जैन समाजका सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और शिक्षा विकासका इतिहास मिल जायगा। क्योकि वर्णाजी व्यक्ति नहीं, सस्था है। उनके साथ अनेक सस्थाऍ सम्बद्ध है। ज्ञान प्रचार और प्रसार करनेमे आपने अटूट परिश्रम किया है। भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विहारकर जैन समाजको जाग्रत किया है।

अज्ञात जीवन[1]

श्री अजितप्रसाद जैन एम० ए० की यह आत्मकथा है। इस आत्मकथाका नाम ही औपन्यासिक ढगका है और एकाएक पाठकको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला है। घटनाऍ एक दूसरेसे बिल्कुल सम्बद्ध हैं, बाल्यकालसे लेकर वृद्धावस्थातककी घटनाओको मोतीकी लडीके समान पिरोकर इसे पाठकोका कण्ठहार बनानेका लेखकने पूरा प्रयास किया है। रोचकता और सरलता गुण पूरे रूपमे विद्यमान हैं।

यद्यपि लेखकने आत्मकथाका नाम अज्ञात जीवन रखा है, किन्तु लेखकका जीवन समाजसे अज्ञात नही है। समाजसे सम्मान और आदर

---

१ प्रकाशक रायसाहब रामदयाल अगरवाला, प्रयाग।

प्राप्त करनेपर भी वह अपनेको अज्ञात ही रखना अधिक पसन्द करता है, यही उसकी सज्जनताकी सबसे बडी पहिचान है।

इस आत्मकथामे सामाजिक कुरीतियोका पूरा विवरण मिलता है। भाषा सयत, सरल और परिमार्जित है अग्रेजी और उर्दूके प्रचलित शब्दोको भी यथास्थान रखा गया है।

जीवनचरित्रोमे सेठ माणिकचन्द, सेठ हुकमचन्द, कुमार देवेन्द्र-प्रसाद, श्री बा० ज्योतिप्रसाद, ब्र० शीतलप्रसाद, ब्र० प० चन्दाबाई, श्री मगनबाई एव श्वेताम्बर अनेक यति-मुनियोके जीवन-चरित्र प्रधान है। इन चरित्रोमेसे कई एक तो निश्चय ही साहित्यकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। पाठक इन जीवन-चरित्रोसे अनेक बाते ग्रहण कर सकते है।

इस श्रेष्ठ और रोचक पुस्तकके सम्पादक श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय हैं। आपने इसमे जैन समाजके प्रमुख सेवक ३७ व्यक्तियोके सस्मरण सकलित किये है। अधिकाश सस्मरणोके लेखक भी आप ही है। यह मानी हुई बात है कि महान् व्यक्तियोके पुण्य सस्मरण जीवनकी सूनी और नीरस घडियोमे मधु घोलकर उन्हे सरस बना देते है। मानव-हृदय, जो सतत वीणाके समान मधुर भावनाओकी झकारसे झकृत होता रहता है, पुण्य स्मरणोसे पूत हो जाता है। उसकी अमर्यादित अभिलाषाएँ नियन्त्रित होकर जीवनको तीव्रताके साथ आगे बढाती है। फलतः महान् व्यक्तियोके सस्मरण जीवनकी धाराको गम्भीर गर्जन करते हुए सागरमे विलीन नही कराते, बल्कि हरे-भरे कगारोकी शोभाका आनन्द लेते हुए उसे मधुमती भूमिकाका स्पर्श कराते है, जहाँ कोई भी व्यक्ति वितर्क बुद्धिका परित्यागकर रसमग्न हो जाता है और परप्रत्यक्षका अल्पकालिक अनुभव करने लगता है।

जैन जागरणके अग्रदूत[2]

प्रस्तुत सकलनमे ऐसे ही अनुकरणीय व्यक्तियोके सस्मरण है। ये

---

२. प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

है। वस्तुत पूज्य वर्णीजीकी जीती-जागती यशोगाथासे आज कौन अपरिचित होगा ?

इस २३ हाथके मिट्टीके पुतलेका व्यक्तित्व आज गजब ढा रहा है। समस्त मानवीय गुणोसे विभूषित इस महामानवमे मूक परोपकारकी अभिव्यजना, साधना और त्यागकी अभिव्यक्ति एव बहुमुखी विद्वत्ताका सयोग जिस प्रकार हो पाया है, शायद ही अन्यत्र मिले। इतनी सरल प्रकृति, गम्भीर मुद्रा, ठोस ज्ञान, अटल श्रद्धानादि गुणोके द्वारा लोग सहज ही इनके भक्त बन जाते हैं। जो भी इनके सम्पर्कमे आया वह अन्तरगमे मायाशून्यता, सत्यनिष्ठा, प्रकाण्ड पाण्डित्य, विद्वत्ताके साथ चरित्र, प्रभावक वाणी, परिणामोमे अनुपम शान्ति एव आत्मिक और शारीरिक विशुद्धता आदि गुणराशिसे प्रभावित हुए बिना नही रहा। इसके अतिरिक्त अज्ञानतिमिरान्ध जैनसमाजका ज्ञानलोचन उन्मीलित करके लोकोत्तर उपकार करनेका श्रेय यदि किसीको है तो श्रद्धेय वर्णीजी को। पूज्य वर्णीजीका जीवन जैनसमाजके लिए सचमुचमे एक सूर्य है। वे मुमुक्षु है, साधक है और है स्वयबुद्ध। उन्होने अपनी आत्मकथा लिखकर जैनसमाजका ही नही, अपितु मानवसमाजका बडा उपकार किया है। अध्ययनकी लालसा पूज्य वर्णीजीमे कितनी थी, यह उनकी आत्मकथासे स्पष्ट है। उन्होने जयपुर, मथुरा, खुरजा, काशी, चकौती (दरभगा जिला) और नवद्वीप आदि अनेक स्थानोकी न्यायशास्त्र पढनेके लिए खाक छानी। जहाँ भी न्यायशास्त्रके विद्वान्का नाम सुना, आप वही पहुँचे तथा श्रद्धा और भक्तिके साथ उसे अपना गुरु बनाया।

आत्मकथाके लेखक पूज्य वर्णीजीने अपने जीवनकी समस्त घटनाओका यथार्थ रूपमे अकन किया है। काशीके स्याद्वाद महाविद्यालयमे जब अध्ययन करते थे, उस समयका एक उदाहरण देखिये—

उन दिनो विद्यालयके अधिष्ठाता (प्रिंसिपल) थे बाबा भागीरथजी वर्णी। न्यायकी उच्चकक्षाके विद्यार्थी होनेके कारण आप उनके मुँहलगे

थे। एक शामको जब बाबाजी सामायिक (आत्मचिन्तन) कर रहे थे, उस समय आप चार पॉच साथियोंके साथ गंगापार रामनगर रामलीला देखनेको चले गये। जब नाव बीच गंगामे पहुँची तो हवाके तीव्र झोकोंसे डगमगाने लगी और 'अब डूबी, तब डूबी' की उसकी स्थिति आ गयी। विद्यालयकी छतपर खडे अधिष्ठाताजी सारा दृश्य देख रहे थे। विद्यार्थियोंकी नावको गंगामे डूबते देख उनके प्राण सूखने लगे और उनकी मङ्गलकामनाके लिए भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे। पुण्योदयसे किसी प्रकार नौका बच गयी और सभी विद्यार्थी रामलीला देखकर रातको १० बजे लौटे। सबके लीडर आत्मकथा-लेखक ही थे। आते ही अधिष्ठाताजीने आपको बुलाया और बिना आज्ञाके रामलीला देखनेके अपराधमे आपको विद्यालयसे पृथक् कर दिया। साथ ही विद्यालय-मन्त्रीको, जो आरामे रहते थे, पत्र लिख दिया कि गणेशप्रसाद विद्यार्थीको उद्दण्डताके अपराधमे पृथक् किया जाता है। जब पत्र लेकर चपरासी छोडनेको चला तो आपने चपरासीको दो रुपये देकर वह पत्र ले लिया और विद्यालयसे जानेके पहले आपने एक बार सभामे भाषण देनेकी अनुमति मॉगी। सभामे निर्भीकतापूर्वक आपने समस्त परिस्थितियोंका चित्रण करते हुए मार्मिक भाषण दिया। आपके भाषणको सुनकर अधिष्ठाताजी भी पिघल गये और आपको क्षमाकर दिया।

इस प्रकार आत्मकथा-लेखकने अपने जीवनकी छोटी-बडी सभी बातोंको स्पष्ट रूपसे लिखा है। घटनाऍ इतने कलात्मक ढगसे सजोयी गयी है, जिससे पाठक तल्लीन हुए बिना नही रह सकता। भाषा इतनी सरल और सुन्दर है कि थोडा पढा लिखा मनुष्य भी रसमग्न हो सकता है। छोटे-छोटे वाक्योंमे अपूर्व माधुर्य भरा है।

आजके समाजका चित्रण भी आपने अपूर्व ढगसे किया है। आज किस प्रकार धनिक मनुष्य अपने पैसेसे सैकडो पापोको छुपा लेते है, पर एक निर्धनका एक सुईकी नोकके बराबर भी पाप नहीं छिपा छिपता।

सभी अपने दिव्य आलोकसे जीवन-तिमिरको विच्छिन्न करनेमे सक्षम है। प्रत्येक महान् व्यक्तिका अन्तरग और वहिरग व्यक्तित्व जीवनको प्रेरणा और स्फूर्त्ति देता है।

समस्त प्रमुख व्यक्तियोको चार भागोमे विभक्त किया है। प्रथम भाग त्याग और साधनाके दिव्य प्रदीपोकी अमरज्योतिसे आलोकित है। ये दिव्य दीप है—ब्र० शीतलप्रसाद, बाबा भागीरथ वर्णी, आत्मार्थी कानजी महाराज, ब्र० प० चन्दाबाई और भूआ (वैरिस्टर चम्पतरायजीकी बहन)।

इन दिव्य दीपोंमे तैल और वर्त्तिका सजोनेवाले श्री गोयलीयके अतिरिक्त अन्य लेखक भी है। इन सबकी शैलीमे अपूर्व प्रवाह, माधुर्य और जोश है। भाषामे इतनी धारावाहिकता है कि पाठक पढना आरम्भ करनेपर अन्त किये विना नहीं रह सकता।

दूसरा भाग तत्त्वज्ञानके आलोक-स्तम्भोसे शोभित है। ये आलोक स्तम्भ है—गुरु गोपालदास बरैया, प० उमरावसिह, प० पन्नालाल बाकलीवाल, प० ऋषभदास, प० महावीरप्रसाद, प० अरहदास, प० जुगलकिशोर मुख्तार और प० नाथूराम प्रेमी।

इस स्तम्भके लेखकोमे श्री गोयलीयके अतिरिक्त श्री क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, श्री प० सुखलालजी सघवी, श्री प० नाथूराम 'प्रेमी' और श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर आदि प्रमुख है। इन सभी सस्मरणोमे रोचकता इतनी अधिक है कि गूँगेके गुडके स्वादकी तरह उसकी अनुभूति पाठक ही कर सकेगे। भाषामे ओज, माधुर्य और प्रवाह है। शैली अत्यन्त सयत और प्रौढ है।

तीसरे भागमे वे अमर समाज-सेवक है, जिन्होने समाजमे नवचेतनाका प्रकाश फैलाया है। ये है—बाबू सूरजभानु वकील, बाबू दयाचन्द गोयलीय, कुमार देवेन्द्रप्रसाद, वैरिस्टर जुगमन्दिरलाल जैनी, अर्जुनलाल

सेठी, बैरिस्टर चम्पतराय, बाबू ज्योतिप्रसाद, बाबू सुमेरचन्द एडवोकेट, बाबू अजितप्रसाद वकील, बाबू सूरजमल और महात्मा भगवानदीन।

इस स्तम्भके लेखक श्री नाथूराम प्रेमी, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्री महात्मा भगवानदीन, श्री माईदयाल, श्री गुलाबराय एम. ए, श्री अजितप्रसाद एम ए., श्री बनवारीलाल स्याद्वादी, श्री कामताप्रसाद जैन, श्री कौशलप्रसाद जैन, श्री दौलतराम मित्र, श्री जैनेन्द्रकुमार और श्री गोयलीय है। प्रयागमे जैसे त्रिवेणीके सगमस्थल पर गगा, यमुना और सरस्वतीकी धाराएँ पृथक्-पृथक् होती हुई भी एक है, ठीक उसी प्रकार यहाँ भी सभी लेखकोकी भिन्न-भिन्न शैलीका आस्वादन भिन्न-भिन्न रूपसे होनेपर भी प्रवाह ऐक्य है। इस स्तम्भके सस्मरणोको पढनेसे मुझे ऐसा मालूम पडा, जैसे कोई भगवान्का भक्त किसी ठाकुरद्वारीपर खडा हो पञ्चामृतका रसास्वादन कर रहा हो।

चतुर्थ भाग श्रद्धा और समृद्धिके ज्योति रत्नोसे जगमगा रहा है। वे रत्न है—राजा हरसुखराय, सेठ सुगनचन्द, राजा लक्ष्मणदास, सेठ माणिकचन्द, महिलारत्न मगनबाई, सेठ देवकुमार, सेट जम्बूप्रसाद, सेट मथुरादास, सर मोतीसागर, रा० ब० जुगमन्दिरदास, रा० ब० सुल्तानसिह और सर सेठ हुकुमचन्द।

इस स्तम्भके लेखक नाथूराम प्रेमी, प० हरनाथ द्विवेदी, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्री तन्मय बुखारिया, श्रीमती कुन्थुकुमारी जैन बी० ए० (ऑनर्स), श्री हीरालाल कागलीवाल और श्री गोयलीय है।

सचमुचमे यह सकलन बीसवी शताब्दीके जैन समाजका जीता-जागता एक चित्र है। समस्त पुस्तकके सस्मरण रोचक, प्रभावक और शिक्षाप्रद है। इस सग्रहके सस्मरणोको पढते समय अनेक तीर्थोमे स्नान करनेका अवसर प्राप्त होगा। कही राजगृहके गर्मजलके झरनोमे अवगाहन करना पडेगा, तो कही वहीके समशीतोष्ण ब्रह्मकुण्डके जलमे, तो कही पास ही के सुशीतल जलके झरनेमे निमज्जन करना होगा। आपको

अभिव्यक्तिके साथ भाषामें कितनी भावप्रवणता है। प्रेषणीयतत्त्वकी परम नविको कितनी है, यह सहजमें ही जाना जा सकता है।

तो गहिय चन्द-हासा उहेण। हक्कारिउ लक्खणु दह-मुहेण।
लइ पहर पहरु कि करहि खेउ। तुहु एक्कें चक्कें सावलेउ।
महु पइ पुणु आय कवणु गण्णु। किं सीह (हि) होइ सहाउ अण्णु।
तं निसुणेवि विष्फुरियाहरेण। मेल्लिउ रहंगु लच्छीहरेण।

—स्वयम्भू रामायण ७५।२२

श्रीराहुलजीने इसका हिन्दीमें अनुवाद यों किया है—

तो गहिय चन्दहासायुधेहिं। हक्कारेउ लक्ष्मण दशमुखेहिं।
ले प्रहरु प्रहरुका करहि क्षेप। तुह एको चक्को सावलेप।
ममतें पुनि आहि कवन गण्य। का सिंहह होइ स्वभाव अन्य।
सो सुनिया विस्फुरिता धरेहि। मेलेउ रथाग लक्ष्मीधरेहि॥

भाषाको शक्तिशाली बनानेके लिए कवि पुष्पदन्तने समासान्त पदोंका प्रयोग अत्यधिक किया है। निम्न उदाहरण दर्शनीय है—

विप-कालिंदि-काल णव-जलहर-पिहिय-णहतरालओ।
धुय-गय-गण्ड-मण्डलुड्डाविय-चल-मत्तालि-मेलओ।
अविरल-मुसल-सरिस-चिरधारा-वारिस-भरत-भूमलो।
हय-रवियर-पयाव-पसरुग्गय-करु तण-णील-सद्दलो॥

—आदिपुराण (२९-३०)

इसकी हिन्दी छाया—

विश-कालिंदी-काल-नवजलधर-छादित नभंतरालआ।
धुत-गज-गंड-मंडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलआ।
...-सदृश थिर धारा वर्ष भरंत-भूतला।
-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु-कहँ नील शाद्वला॥

१२ वी शतीके कवि विनयचन्द्र सूरिकी अपभ्रंश भाषामे अपूर्व मिठास है। भाषाकी स्वरलहरीमे विश्वका सगीत गूँजता है। भावप्रकाशन कितना अनूठा है, यह निम्नपदसे स्पष्ट है—

नेमिकुमरु सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कन्न-कुमारि।
श्रावणि सखणि कडुय मेहु। गज्जइ विरहिनि झिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम।
सखी भणइ सामिणि मन झूरि। दुज्जन तणा मँ वंछिति पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अछइ अनेरा वरह सयाइ॥

—प्राचीन गुर्जर-काव्य-संग्रह

परवर्ती जैनकवियोमे भाषाकी दृष्टिसे कवि बनारसीदासका सर्वोत्कृष्ट स्थान है। आपकी भाषा मनोरम होनेके साथ, कितनी प्रभावोत्पादक है, यह निम्न पद्यसे स्पष्ट है। सगीतकी अवतारणा स्थान-स्थानपर विद्यमान है। प्रशस्त होनेके साथ भाषामे कोमलकान्तता और प्रवहमानता भी अन्तर्निहित है। भाषाकी लोच लचक और हृदयद्रावकता तो निम्न पद्यका विशेष गुण है।

काज बिना न करै जिय उद्यम, लाज बिना रन माहि न जूझै।
डील बिना न सधै परमारथ, शील बिना सतसौं न अरूझै॥
नेम बिना न लहै निहचैपद, प्रेम बिना रस रीति न बूझै।
ध्यान बिना न थँभै मन की गति, ज्ञान बिना शिवपंथ न सूझै॥

वास्तवमे कवि बनारसीदास भाषाके बहुत बडे पारखी है। इनके सुन्दर वर्ण-विन्यासमे कोमलता किलकारियाँ भरती है, रस छलकता है और माधुर्य बाहर निकलनेके लिए वातायनमेसे झाँकता है। नाद सौन्दर्य-के साधन छन्द, तुक, गति, यति और लयका जितना सुन्दर सन्तुलित समन्वय इनकी भाषामे है, अन्यत्र वैसा कठिनाईसे मिलेगा। निम्न पद्यमे सगीत केवल मुखरित ही नही हुआ, बल्कि स्वर और तालके साथ मूर्त-रूपमे उपस्थित है।

गगाजलके साथ समुद्रका खारा उदक भी पान करनेको मिलेगा, पर विश्वास रखिये, स्वाद बिगडने न पायेगा।

इस प्रकार हिन्दी जैन साहित्यका गद्य भाग नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, सस्मरण, आत्मकथा, गद्यकाव्य आदिके द्वारा दिनो-दिन खूब पल्लवित और पुष्पित हो रहा है। जैन लेखकोका जितना ध्यान निबन्ध रचनाकी ओर है, यदि उसका शताश भी कथा-साहित्य या गद्यगीतोकी ओर चला जाय तो निश्चय ही हिन्दी जैन गद्य साहित्य अपने आलोकसे समग्र हिन्दी साहित्यको जगमगा दे। नवीन लेखकोको इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। जैन कथाओ द्वारा सुन्दर और रोचक गद्य पद्यमे काव्य लिखे जा सकते है।

इसके अतिरिक्त सस्मरण, जीवन-चित्र तथा विभिन्न विषयोके निबन्धो-के सकलन भी अभिनन्दन-ग्रन्थोके नामसे प्रकाशित हुए है। इनमे निम्न ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

(१) श्री प्रेमी-अभिनन्दन ग्रन्थ। (२) श्री वर्णी-अभिनन्दन ग्रन्थ (३) श्री ब्र प० चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ। (४) श्री हुकमचन्द अभिनन्दन ग्रन्थ। (५) श्री आचार्य शान्तिसागर श्रद्धाञ्जलि ग्रन्थ।

दशवाँ अध्याय

हिन्दी-जैन साहित्यका शास्त्रीय पक्ष

हिन्दी-जैन साहित्यके विभिन्न अग और प्रत्यगोका परिचय प्राप्त कर लेनेके अनन्तर इस साहित्यका शास्त्रीय दृष्टिसे यत्किञ्चित् अनुशीलन करना भी आवश्यक है। अतः शास्त्रीय दृष्टिकोणसे विवेचन करनेपर ही इसकी अनेक विशेषताएँ ज्ञात की जा सकेगी।

इस अभीष्ट दृष्टिकोणके अनुसार भाषा, छन्द, अलकार योजना, प्रकृतिचित्रण, सौन्दर्यानुभूति, रसविधान, प्रतीकयोजना और रहस्यवाद-का विश्लेषण किया जायगा। सर्वप्रथम जैन साहित्यकी भाषाका विचार करना है कि इस साहित्यमे प्रयुक्त भाषा कैसी है, इसमे शास्त्रीय दृष्टिसे कौन-कौन विशेषताएँ विद्यमान है। भावो और विचारोकी अभिव्यञ्जना भाषाके बिना असम्भव है।

हिन्दी-जैन काव्योका भाषाकी दृष्टिसे बड़ा ही महत्त्व है। अपभ्रश और पुरानी हिन्दीसे ही आधुनिक साहित्यिकभाषाका जन्म हुआ है।

भाषा

जैन लेखक आरम्भसे ही भाषाके रूपको सजाने और परिष्कृत बनानेमे सलग्न रहे है। सरस, कोमल, मधुर और मजुल शब्द सुबोध, सार्थक और स्वाभाविक रूपमे प्रयुक्त हुए है। शब्दयोजना, वाक्याशोका प्रयोग, वाक्योकी बनावट और भाषाकी लाक्षणिकता या ध्वन्यात्मकता विचारणीय है।

अपभ्रश भाषाके काव्योमे भाषाका विकासोन्मुख रूप दिखलायी पडता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा लोकभाषाकी ओर तेजीसे गमन कर रही है। पाठक देखेगे कि निम्नपदमे कोमल और परुष भावनाओकी

अभिव्यक्तिके साथ भाषामें कितनी भावप्रवणता है। प्रेषणीयतत्त्वकी परख कविको कितनी है, यह सहजमें ही जाना जा सकता है।

तो गहिय चन्द-हासा उहेण। हक्कारिउ लक्खणु दह-मुहेण।
लइ पहरु-पहरु कि करहि खेउ। तुहु एक्के चक्कें सावलेउ।
महु पइ पुणु आयं कवणु गण्णु। किं सीह (हि) होइ सहाउ अण्णु।
तं विसुणेवि विप्फुरियाहरेण। मेल्लिउ रहंगु लच्छीहरेण।

—स्वयम्भू रामायण ७५।२२

श्रीराहुलजीने इसका हिन्दीमें अनुवाद यों किया है—

तो गहिय चन्दहासायुधेहिं। हक्कारेउ लक्ष्मण दशमुखेहिं।
ले प्रहरु प्रहरुका करहि क्षेप। तुह एको चक्को सावलेप।
ममतैं पुनि आहि कवन गण्य। का सिंहह होइ स्वभाव अन्य।
सो सुनिया विस्फुरिता धरेहि। मेलेउ रथाग लक्ष्मीधरेहिं॥

भाषाको शक्तिशाली बनानेके लिए कवि पुष्पदन्तने समासान्त पदोंका प्रयोग अत्यधिक किया है। निम्न उदाहरण दर्शनीय है—

विस-कालिंदि-काल णव-जलहर-पिहिय-णहत्तरालओ।
धुय-गय-गण्ड-मण्डलुड्डाविय-चल-मत्तालि-मेलओ।
अविरल-मुसल-सरिस-थिरधारा-वारिस-भरत भूमलो।
हय-रवियर-पयाव-पसरुग्गय-करु तण-णील-सद्दलो॥

—आदिपुराण (७९-३०)

इसकी हिन्दी छाया—

विश-कालिंदी-काल-नवजलधर-छादित नभंतरालआ।
धुत-गज-गंड-मंडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलआ।
अविरल-मुसल-सदृश थिर धारा वर्ष भरंत-भूतला।
हत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु-कहँ नील शाद्वला॥

१२ वी शतीके कवि विनयचन्द्र सूरिकी अपभ्रंश भाषामे अपूर्व मिठास है। भाषाकी स्वरलहरीमे विश्वका संगीत गूँजता है। भावप्रकाशन कितना अनूठा है, यह निम्नपदसे स्पष्ट है—

नेमिकुमरु सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कन्न-कुमारि।
श्रावणि सखणि कडुय मेहु। गज्जइ विरहिनि झिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम।
सखी भणइ सामिणि मन झूरि। दुज्जन तणा मँ वंछिति पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अछइ अनेरा वरह सयाइ॥

—प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह

परवर्ती जैनकवियोंमे भाषाकी दृष्टिसे कवि बनारसीदासका सर्वोत्कृष्ट स्थान है। आपकी भाषा मनोरम होनेके साथ, कितनी प्रभावोत्पादक है, यह निम्न पद्यसे स्पष्ट है। संगीतकी अवतारणा स्थान-स्थानपर विद्यमान है। प्रशस्त होनेके साथ भाषामे कोमलकान्तता और प्रवहमानता भी अन्तर्निहित है। भाषाकी लोच लचक और हृदयद्रावकता तो निम्न पद्यका विशेष गुण है।

काज विना न करै जिय उद्यम, लाज विना रन माहि न जूझै।
डील विना न सधै परमारथ, शील विना सतसौं न अरूझै॥
नेम विना न लहै निहचैपद, प्रेम विना रस रीति न बूझै।
ध्यान विना न थँभै मन की गति, ज्ञान विना शिवपंथ न सूझै॥

वास्तवमे कवि बनारसीदास भाषाके बहुत बडे पारखी है। इनके सुन्दर वर्ण-विन्यासमे कोमलता किलकारियाँ भरती है, रस छलकता है और माधुर्य बाहर निकलनेके लिए वातायनमेसे झाँकता है। नाद सौन्दर्य-के साधन छन्द, तुक, गति, यति और लयका जितना सुन्दर सन्तुलित समन्वय इनकी भाषामे है, अन्यत्र वैसा कठिनाईसे मिलेगा। निम्न पद्यमे संगीत केवल मुखरित ही नही हुआ, बल्कि स्वर और तालके साथ मूर्त-रूपमे उपस्थित है।

कुछ कहती-सी जान पडती है। नादविशेष सौन्दर्यके साथ माधुर्यको भी प्रवाहित करनेमे सक्षम है—

केवलरूप विराजत चेतन, ताहि विलोकि अरे मतवारे।
काल अनादि वितीत भयो, अजहूँ तोहि चेत न होत कहा रे॥
भूलि गयो गतिको फिरवो, अब तो दिन च्यारि भये ठकुरारे।
लागि कहा रह्यो अक्षनिके संग, चेतत क्यो नहिं चेतनहारे॥

इस पद्यमे 'दिन च्यारि भये ठकुरारे' का ध्वन्यर्थ काव्य-रसिकोंके लिए कम महत्त्वपूर्ण नही है। अत. सक्षेपमे यही कहा जा सकता है कि इनकी भाषामे बोधात्मिका शक्तिकी अपेक्षा रागात्मिका शक्तिकी प्रबलता है, पर इनका राग सासारिक नही, आत्मिक अनुरक्ति है।

कवि भूधरदासने भाषाको सजाने, सँवारने और चमकीला बनानेमे अपनी पूर्ण पटुता प्रदर्शित की है। इनकी भाषामे भाव-प्रवणताके साथ मनोरजकता भी है। इनके काव्यमे कही प्रसाद माधुर्य है तो कहीं ओज माधुर्य।

भावोको तीव्रतर बनानेके लिए नाटकीय भाषाशैलीका प्रयोग भी कवि भूधरदासने किया है। आत्मानुभूतिकी अभिव्यञ्जना इस शैलीमे किस प्रकार की जा सकती है, यह निम्न पद्यसे स्पष्ट है—

जोई दिन कटै सोई आयुमे अवसि घटै,
बूँद बूँद बीतै जैसे अन्जुलीको जल है।
देह नित छीन होत नैन तेज हीन होत,
जोवन मलीन होत छीन होत बल है॥
आवै जरा नेरी तकै अन्तक अहेरी आय,
परभौ नजीक जान नरभौ विकल है।
मिलकै मिलापी जन पूछत कुशल मेरी,
ऐसी दशा माहीं मित्र काहे की कुशल है॥

इस पद्यमे 'ऐसी दशा माहीं मित्र काहे की कुशल है' मे सम्बोधनपर जोर देकर भाषाको भावप्रवण बनानेमे कविने कुछ उठा न रखा है।

बुधजन कविकी भाषामे भी चमकीलापन पाया जाता है "धर्म बिन कोई नहीं अपना, सब सम्पति धन थिर नहिं जगमे, जिसा रैन सपना" मे भाषाका स्वच्छ और स्वस्थरूप है।

कवि दौलतरामने सगीतकी अवतारणा करते हुए भाषाके आभ्यन्तरिक और बाह्यरूपको सँवारनेकी पूरी चेष्टा की है। कहीं-कहीं तो भाषा परेड करते हुए सैनिकोंके समान चहलकदमी करती हुई प्रतीत होती है। निम्नपद दर्शनीय है—

छाँडत क्यों नहिं रे नर, रीति अयानी।
बार-बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी॥
विषय न तजत न भजत बोध व्रत, दुख-सुख जाति न जानी।
शर्म चहै न लहै शठ ज्यों, घृत हेत विलोवत पानी॥
छाँडत क्यों नहिं रे नर, रीति अयानी।

जैन कवियोंकी सामाजिक पदावलियाँ सगीतके उपकूलोंमे बँधकर कितनी वेगवती हुई है, यह उपर्युक्त पदसे स्पष्ट है। अपूर्व शब्दलालित्य, नवीन अन्तःसगीत और भावाभिव्यक्तिकी नूतन शक्ति जैन कवियोंकी भाषामे विद्यमान है। निम्न पक्तियोमे तत्सम शब्दोने भाषामे कितनी मिठास और लचक उत्पन्न की है, यह दर्शनीय है—

नवल धवल पल सोहैं कलमैं, क्षुधतृष व्याधि टरी।
हलत न पलक अलक नख बढ़त न, गति नभमाँहि करी॥
ध्यानकृपान पानि गहि नाशी त्रेसठ प्रकृति अरी।
जा-बिन शरन भरन जर घर घर महा असात भरी।
दौल तास पद दास होत है, वास-मुक्ति-नगरी।
ध्यानकृपान पानि गहि नाशी, त्रेसठ प्रकृति अरी।

जैनकवियोकी वर्ण साधना भी अद्वितीय है। च त न र ल व आदि कोमल वर्णोंकी आवृत्तिने काव्यमे सगीत-सौन्दर्य उत्पन्न करनेमे बडी सहायता प्रदान की है। इन वर्णोंके उच्चारणसे श्रुति मधुरता उत्पन्न होती है। री, रे आदि सम्बोधनोकी आवृत्तिने तो भाषाका रूप और भी निखार दिया है। शब्दचित्र पाठकोंके समक्ष एक साकार मूर्ति प्रस्तुत करते है। निम्न पद्यमे 'च' की आवृत्ति दर्शनीय है—

चितवत वदन अमल चन्द्रोपम तज चिन्ता चित होय अकामी।
त्रिभुवनचंद पाप तप चन्दन, नमत चरन चन्द्रादिक नामी॥
तिहुँ जग छई चन्द्रिका कीरति चिह्न-चन्द्र चितत शिवगामी।
वन्दो चतुर-चकोर चन्द्रमा चन्द्रवरन चन्द्रप्रभ स्वामी॥

शब्दसाधना और शब्द योजना भी जैन कवियोकी अनूठी हुई है। सहानुभूति, अनुराग, विराग, ईर्ष्या, घृणा आदि भावनाओको तीव्र या तीव्रतर बनानेमे शब्द-चयन और शब्दयोजनाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक शब्दमे इस प्रकारकी लहरे विद्यमान है, जिनसे पाठकका हृदय स्पन्दित हुए बिना नही रह सकता। अत॰ पाठक देखेगे कि कवि भगवतीदासने भाव और विषयके अनुकूल भाषाके पट-परिवर्तनमे कितनी कुशलता प्रदर्शित की है—

अचेतनकी देहरी, न कीजे यासो नेह री,
ये औगुनकी गेहरी परम दुख भरी है।
याहीके सनेहरी न आवै कर्म छेहरी,
सुपावे दु ख तेहरी जे याकी प्रीति करी है।
अनादि लगी जेहरी जु देखत ही खेहरी,
तू यामे कहा लेहरी कुरोगनकी दरी है।
कामगज केहरी, सुराग द्वेष केहरी,
तू यामे दृग देहरी जो मिथ्या मति दरी है।

छन्द-विधान

मानवकी भावनाओं और अनुभूतियोंकी सजीव अभिव्यजना साहित्य है और ये भावनाएँ तथा अनुभूतियाँ कल्पना लोककी वस्तु नहीं है, किन्तु हमारे अन्तर्जगत्की प्रच्छन्न वस्तु है। साहित्यकार लय और छन्दके माध्यमसे अपनी अनुभूतियोकी अचल तन्मयतामे, एकात्म अनुभवकी भावनामे विभोर हो कलाको चिरन्तन प्राणतत्त्वका स्पर्श कराता है। अतएव छन्द कविके अन्तर्जगत्की वह अभिव्यक्ति है, जिसपर नियमका अकुश नही रखा जा सकता, फिर भी भिन्न-भिन्न स्वाभाविक अभिव्यक्तियोके लिए स्वरके आरोह और अवरोहकी परम आवश्यकता है। स्पन्दन, कम्पन और धमनियोमे रक्तोष्णका सचार लय और छन्दके द्वारा ही सम्भव है। गानके स्वर और लयको सुनकर अन्तरकी रागिनीका उद्रेक इतना अधिक हो जाता है, भावनाएँ इतनी सघन हो जाती है कि अगले पद या चरणको सुनने अथवा पढनेकी उत्कठा जाग्रत हुए बिना नही रह सकती। गूँजते स्वरकी पृष्ठभूमिपर नूतन मसृण भावनाएँ अभिनव रमणीय विश्वका सृजन करने लगती है। अत अत्मविभोर करने या होनेके लिए काव्यमे छन्द विधान किया गया है।

छन्द-विधान नाद-सौन्दर्यकी विशेषतापर अवलम्बित है। यह कोई बाहरी वस्तु नही, प्रत्युत जीवन तत्त्वोकी सजीव अभिव्यञ्जनाके लिए भाषाका विधान है। यह विधान काव्यके लिए बन्धन कभी नही होता, अपितु लय-सौन्दर्यकी वृद्धि और पोषण करनेके निमित्त एक ऐसी आधार-शिला है, जो नाद सौन्दर्यको उच्च, नम्र, समतल, विस्तृत और सरस बनानेमे सक्षम है। साधारण वाक्यमे जो प्रवाह और क्षमता लक्षित नही होती, वह छन्द व्यवस्थासे पैदा कर ली जाती है। भाषाका भव्य-प्रयोग छन्द-विधान कविताका प्राणापहारक नही अपितु धनुपपर चढी प्रत्यचाके तुल्य उसकी शक्तिका वर्धक है। जिस प्रकार नदीकी स्वाभाविक धाराको तीव्र और प्रवहमान बनानेके लिए पक्के घाटोकी आवश्यकता होती है,

उसी प्रकार भावनाओ और अनुभूतियोको प्रभावोत्पादक बनानेके लिए छन्दोकी आवश्यकता है। सीधे-सादे गद्यके वाक्योमे जोश नही रहता और न प्रेषणीयतत्त्व ही आ पाता है, अतएव भाषाके लाक्षणिक प्रयोगके लिए लय और छन्दका उपयोग प्राचीन कालसे ही मनीषी करते आ रहे है। स्वर-माधुर्य और काव्य चमत्कारके लिए भी लयात्मक-प्रवृत्तिका होना आवश्यक है। पदावलियोको भावुकतापूर्ण और स्मरणीय बनानेके लिए भी छन्दके साँचेमे भावनाओको ढालना ही पड़ता है, अन्यथा प्रेषणीय-तत्त्वका समावेश नहीं हो सकता। यो तो बिना छन्दके भी कविता की जा सकती है, पर वह निष्प्राण कविता होगी। उसमे जीवन या गति नहीं आ सकेगी। अतएव इच्छित स्वरसाधनके लिए छन्द आज भी आवश्यक विधान है। यह स्वाभाविक लयके स्वरैक्य और समरूपताकी रक्षाके लिए अनिवार्य सा है। भाषाकी स्वाभाविक लय-प्रवहणताके लिए छन्दका बन्धन भी अकृत्रिम और अनिवार्य-सा है। चुस्त भावनाओकी अभि-व्यञ्जनाके लिए यह विधान उतना ही आवश्यक है, जितना शरीरके स्वरयन्त्रको शक्तिशाली बनानेके लिए उच्चारणोपयोगी अवयवोका सशक्त रहना।

जैन कवियोने अपने काव्यमे वार्णिक और मात्रिक दोनो ही प्रकारके छन्दोका प्रयोग किया है। वार्णिक छन्दमे वर्णोंके लघु-गुरुके अनुसार क्रम और सख्या आदिसे अन्ततक समरूपमे रहती हैं और मात्रिक छन्दमे मात्राओकी सख्या, यति नियमके साथ निश्चित रहती है, अक्षरोकी न्यूना-धिकताका ख्याल नहीं किया जाता है।

जैनकाव्योमे दोहा, चौपाई, छप्पय, कवित्त, सवैया इकतीसा, सवेया तेईसा, अडिल्ल, सोरठा, घत्ता, कुसुमलता, व्योमावती, घनाक्षरी, पद्धरी, तोमर, कुडलिया, वसन्ततिलका आदि सभी छन्दोका प्रयोग किया है। दूहा, दोहा, छप्पय, कवित्त, सवैये और घनाक्षरी जैनकवियोके विशेष छन्द रहे है। अपभ्र श कालसे लेकर १९ वी सतीके अन्ततक जैनकवियोने

छप्पय, कवित्त और सवैयोका बडी ही बारीकीसे प्रयोग किया है। एक सच्चे कलाकारके समान मीनाकारी और पच्चीकारी जैनकवि करते रहे है। अपभ्रंश कविताओमे दोहाके सैकडो भेद-प्रभेदकर नवीन प्रयोग किये गये है। सन्तयुगमे लावनी और पद भी विपुल परिमाणमे लिखे गये है। इन सभी पदोमे सगीतका प्रभाव इतनी प्रचुर मात्रामे विद्यमान है, जिससे आध्यात्मिक रस बरसता है। मधुर रस काव्यमे सुन्दर ध्वनि योजनासे ही निष्पन्न होता है। कोमलपदरचनाने नादविशेषका सन्निवेश करके आनन्दको और भी आह्लादमय बनानेका प्रयास किया है।

सस्कृत छन्द वसन्ततिलका, मालिनी, भुजगप्रयात, शार्दूलविक्रीडित और मदाक्रान्ताका प्रयोग भी जैनकवियोने काव्यके भावोको बॉधनेके लिए ही नही किया, किन्तु राग और तालपर कोमलकान्तपदावलियोको बैठा कर अमृतकी वर्षा करनेके लिए किया है। अतएव यहॉ एकाध सगीतका लययुक्त उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

भुजंगप्रयात

तुमी कल्पनातीत कल्यानकारी। कलंकापहारी भवांभोधितारी।
रमाकंत अरहंत हंता भवारी। कृतातांतकारी महा ब्रह्मचारी॥
नमो कर्मभेत्ता समस्तार्थ वेत्ता। नमो तत्त्वनेता चिदानन्दधारी।
प्रपद्ये शरण्य विभो लोक धन्यं। प्रभो विघ्ननिघ्नाय संसारतारी॥

—वृन्दावन विलास पृ० ६८

शार्दूलविक्रीडितको गारवा राग और झपा तालमे, भुजगप्रयातको विलावल राग और दादरा तालमे एव वसन्ततिलकाको भैरव राग और झुमरा तालमे कवि मनरगलालने गाया है। मनरगका चौबीसी पूजापाठ सगीतकी दृष्टिसे अद्भुत है। इसमे प्राय. सभी प्रमुख सस्कृतके छन्दोका प्रयोग कविने बडी निपुणतासे किया है। वार्णिकवृत्तोको श्रुतिमधुर बनानेका कविने पूरा प्रयास किया है। न, म, त, र, ल और व वर्णोंकी

आवृत्ति द्वारा अनेक छन्दोमे अपूर्व मिठास विद्यमान है। कर्णकटु, कर्कश और अर्थहीन शब्दोका प्रयोग बिल्कुल नही किया है। छन्दोकी लय और तालका पूरा ध्यान रखा है।

पुरातन छन्दोके अतिरिक्त जैनकवियोने कतिपय नवीन छन्दोका भी उपयोग किया है, बाला छन्दके अनेक भेद-प्रभेदोका प्रयोग जैनकवियोके काव्योमे विद्यमान है। कवि भूधरदासने अपने पार्श्वपुराणमे चार चरण-वाले इस छन्दमे पहला, दूसरा और तीसरा चरण इन्द्रवज्राका और चौथा चरण उपेन्द्रवज्राका रखा है। पद्यमे माधुर्य लानेके लिए प्रत्येक चरणके मध्य भागमे हल्का-सा विराम रखा है, जिससे स्वराघात होनेके कारण मधुरिमा द्विगुणित हो गयी है।

मात्राछन्दकी उद्भावना तो बिल्कुल नवीन है। कवि भूधरदासने बताया है कि इसके प्रथम और तृतीय चरणमे ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ, अन्तमे लघु और लघुका पूर्ववर्ती अर्थात् उपान्त्य वर्ण गुरु होता है। दूसरे और चौथे चरणमे बारह-बारह मात्राएँ और अन्तके दो वर्ण गुरु होते है। इस छन्दके अनेक भेद-प्रभेदोका प्रयोग भी कविने सुन्दर रूपमे किया है। यद्यपि यह मात्रिक छन्द है,पर माधुर्यके लिए इसमे ह्रस्व-वर्णोंका प्रयोग ही अच्छा माना जाता है।

कवि बनारसीदासने अपने नाटक समयसारमे सवैया छन्दके विभिन्न भेद-प्रभेदोका प्रयोग किया है। यति और गणके नियमोने छन्दोमे लयकी तरगोका तारतम्य रखा है। लम्बे पद या चरण नही रखे है, जिससे श्वास क्रियाकी सुगमतामे किसी प्रकारकी रुकावट हो और पदका क्रम अनायास ही भग हो जाय। यहॉ एक-दो उदाहरण कलाकारकी सूक्ष्म कारीगरीको प्रदर्शित करनेके लिए दिये जाते है। पाठक देखेंगे कि ध्वनि-विश्लेषणके नियमानुसार लय-तरगका समावेश कितने अद्भुत ढगसे किया है। गुरु-लघुके तारतम्यने राग और तालको अद्भुत सतुलन प्रदान कर रस वर्षा करनेमें कुछ उठा नही रखा है।

सवैया तेईसा—

या घटमे भ्रमरूप अनादि, विलास महा अविवेक अखारो ।
तामँहि और सरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करै अतिभारो ॥
फेरत भेप दिखावत कौतुक, सो जलिये वरनादि पसारो ।
मोहसुँ भिन्न जुदो जड सो, चिनमूरति नाटक देखन हारो ॥

—नाटक समयसार २।९९

सैवया इकतीसा—

जैसे गजराज नाज घासके गरास करि,
भक्षत सुभाय नहि भिन्न रस लियो है ।
जैसे मतवारो नहि जानै सिखरनि स्वाद,
जुगमे मगन कहै गऊ दूध पियो है ॥
तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञानरूपी है सदीव,
पग्यो पाप पुन्यसो सहज सुन्न हियो है ।
चेतन अचेतन दुहूको मिश्र पिण्ड लखि,
एकमेक मानै न विवेक कछु कियो है ॥

पद्मावती छन्दका प्रयोग कवि बनारसीदासने हृत्तरगोको किस प्रकार आलोकित करनेके लिए किया है, यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है । जिस प्रकार वायुके झोकेसे नदीमे कभी हल्की तरगे और कभी उत्ताल तरगे तरगित होती है, उसी प्रकार कविने बलाघात द्वारा लयात्मक पदाविधानको प्रदर्शित किया है—

ताकी रति कीरति दासी सम, सहसा राजरिद्धि घर आवै ।
सुमति सुता उपजै ताके घट, सा सुरलोक सम्पदा पावै ॥
ताकी दृष्टि लखै शिवमारग, सो निरबन्ध भावना भावै ।
जो नर त्याग कपट कुंवरा कह, विधिसों सतखेत धन बावै ॥

—बनारसी विलास पृ० ५७

घनाक्षरी छन्दका प्रयोग भी कवि बनारसीदासने लयविधानके नियमोका प्रदर्शन करनेके लिए किया है। लयात्मक तरगे इस कठोर छन्दमे भी किस प्रकार स्वरकी मध्यरेखाके ऊपर-नीचे जाकर लचक उत्पन्न करती है, यह दर्शनीय है।

घनाक्षरी

ताही को सुबुद्धि वरै रमा ताकी चाह करै,
चन्दन सरूप हो सुयश ताहि चरचै।
सहज सुहाग पावै, सुरग समीप आवै,
बार बार मुकति रमनि ताहि अरचै।
ताहिके शरीर को अलिंगन अरोगताई,
मंगल करै मिताई प्रीत करै परचै।
जोई नर हो सुचेत चित्त समता समेत,
धरम के हेतको सुखेत धन खरचै॥

—बनारसी विलास पृ० ५६

कवि बनारसीदासने वस्तुछन्द नामके एक नये छन्दका भी प्रयोग किया है। यद्यपि इस छन्दमे कोई विशेष लोच-लचक नही है, तो भी सगीतात्मकता अवश्य है।

कवित्त छन्दमे लय और तालका सुन्दर समावेश भैया भगवतीदासने किया है। मात्राओ और वर्णाकी सख्याकी गणनाके सिवा विराम और गति विधिपर भी ध्यान रखा है, जिससे पढते ही पाठककी हृदय-वीनके तार झनझना उठते है। ध्वनि और अर्थमे साम्यका विधान भी इस छन्द द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मधुर ध्वनियोकी योजना भी प्रायः कवित्तोमे की गयी है।

कवित्त

कोउ तो करै किलोल भामिनीसो रीझि-रीझि,
वाहीसो सनेह करै काम राग अङ्ग मे।

कोउ तो लहै आनन्द लक्ष कोटि जोरि-जोरि
लक्ष लक्ष मान करै लच्छि की तरङ्ग मे ॥
कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै,
मो समान दूसरो न देखो कोऊ जङ्ग मे।
कहै कहा 'भैया' कछु कहिवे की बात नाहिं,
सब जग देखियतु राग रस रङ्ग मे ॥

—ब्रह्मविलास पृ० १७

मात्रिक कवित्त

चेतन नींद बडी तुम लीनी, ऐसी नींद लेय नहिं कोय।
काल अनादि भये तोहि सोवत, विन जागे समकित क्यो होय ॥
निहचै शुद्ध जयो अपनो गुण, परके भाव भिन्न करि खोय।
हस अश उज्वल है जबहीं, तबही जीव सिद्धसम होय ॥

—ब्रह्मविलास पृ० २६-२७

छप्पय छन्दमे इसी कविने अनुभूति, कल्पना और बुद्धि इन तत्त्वोका अच्छा समन्वय किया है। रूप सौन्दर्यके साथ भावसौन्दर्य भी अभिव्यक्त हुआ है। अपने अन्तस्तलके ज्वारको मानवके मगलके लिए बडे ही सुन्दर ढगसे कविने अभिव्यजित किया है। कविकी कविताविलासके खारे समुद्रको अपेय समझकर विपथगाके मधुर तीरको प्राप्त करनेके लिए साधन प्रस्तुत करते है। कई छप्पयमे तो कविने उल्लास और आह्लादकी मादकताका अच्छा विश्लेपण किया है। जैन तीर्थंकरोकी स्तुतियोके सिवा अन्य रसोकी व्यजनामे भी छप्पयका प्रयोग किया गया है। द्वित्व वर्णोंने सगीतात्मकताको और बढा दिया है—

जो अरहत सुजीव, जीव सब सिद्ध भणिज्जे।
आचारज पुन जीव, जीव उवझाय गणिज्जे ॥
साधु पुरुष सब जीव, जीव चेतन पर राजै।
सो तेरे घट निकट, देख निज शुद्धि विराजै ॥

सब जीव द्रव्यनय एकसे, केवलज्ञान स्वरूपमय।
तस ध्यान करहु हो भव्यजन, जो पावहु पदवी अखय॥

कवि भूधरदासके काव्य ग्रन्थोमे छन्दवैचित्र्यका उपयोग सर्वत्र मिलेगा। इन्होने सभी सुन्दर छन्दोका प्रयोग रसानुकूल किया है। वैराग्यका निरूपण करनेके लिए नरेन्द्र छन्दको चुना है, इसमे अन्तके गुरुवर्णपर जोर देनेसे सारी पक्ति तरगित हो जाती है। ससारके कुत्सित और घृणित स्वार्थ सामने नग्न नृत्य करते हुए उपस्थित हो जाते है।

इहि बिधि राज करै नरनायक, भोगै पुन्न विशाला।
सुखसागर मे रमत निरंतर, जात न जानै काला।
एक दिना शुभकर्म संजोगे, क्षेमंकर मुनि बन्दे।
देखि श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे॥

× × ×

किसही घर कलहारी नारी, कै वैरी सम भाई।
किसही के दुख वाहर दीखे, किसही उर दुचिताई॥

व्योमवती छन्दका प्रयोग तो कवि भूधरदासने बहुत ही उत्तम ढगसे किया है। अमूर्त भावनाऍ मूर्तिमान होकर सामने प्रस्तुत हो जाती है। सगीतकी लयने रस वर्षा करनेमे और भी अधिक सहायता की है—

भूखप्यास पीडै उर अंतर, प्रजलै आंत देह सब दागै।
अग्निसरूप धूप ग्रीषम की, ताती बाल झालसी लागै॥
तपै पहार ताप तन उपजै, कोपै पित्त दाह ज्वर जागै।
इत्यादिक ग्रीषमकी बाधा, सहत साधु धीरज नहीं त्यागै॥

× × ×

जे प्रधान केहरि को पकरैं, पन्नग पकर पाँवसों चापै।
जिनकी तनक देख भौं बाँकी, कोटक सूरदीनता जापै॥

ऐसे पुरुष पहार उडावन, प्रलय पवन तिय वेद पयापै।
धन्य धन्य ते साधु साहसी, मन सुमेरु जिनको नहिं काँपै॥

चौदह मात्राके चाल छन्दमे कविने भावनाओके आरोह-अवरोहका कितना सजीव और हृदय-ग्राह्य निरूपण किया है, यह निम्न पदमे दर्शनीय है।

यो भोग विषै अति भारी, तपतैं न कभी तनधारी।
जो अधिक उदै यह आवै, तौ अधिकी चाह बढावै॥

लयात्मक छन्दोमे हरिगीतिका छन्दका स्थान प्रमुख है। इसमे सोलह और बारह मात्राओके विरामसे अट्ठाईस मात्राएँ होती है। प्रत्येक चरणमे लयके सचरणके लिए ५ वी, १२ वी, १९ वी और २६ वी मात्राएँ लघु होती है। अन्तिम दो मात्राओमे उपान्त्य लघु और अन्त्य दीर्घ होती है। लय-विधानके लिए आवश्यक नियमोका पालन करना भी छन्द-माधुर्यके लिए उपयोगी होता है। कवि दौलतरामने अपनी 'छहढाला'मे हरिगीतिका छन्दोका सुन्दर प्रयोग किया है। निम्न पद्यका श्रुति माधुर्य काव्यको कितना चमत्कृत कर रहा है, यह स्वयमेव स्पष्ट है—

अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर सग दशधातैं टलैं।
परमाद तजि चउकर मही लखि समिति ईर्यातैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर श्रुतिसुखद सबसशय हरैं।
भ्रमरोग-हर जिनके वचन मुखचन्द्रतैं अमृत झरैं॥

—छहढाला, छठीं ढाल

जैन साहित्यमे सस्कृत छन्द और पुरातन हिन्दी छन्दोंके साथ आधुनिक नवीन छन्दोका प्रयोग भी पाया जाता है। मुक्तकछन्द और गीतोका प्रयोग आज अनेक जैन कवि कर रहे है।

मुक्तकछन्द लिखनेवाले श्री कवि चैनसुखदास न्यायतीर्थ, श्री प० दरबारीलाल सत्यभक्त, कवि खूबचन्द पुष्कल, कवि वीरेन्द्रकुमार, कवि

ईश्वरचन्द्र प्रभृति है। भावनाओकी समुचित अभिव्यजनाके लिए अनेक नवीन छन्दोका प्रयोग किया है। आज जैन प्रबन्धकाव्योमे सभी प्रचलित छन्दोका व्यवहार किया जा रहा है। गीतोमे भावनाकी तरह छन्द भी अत्याधुनिक प्रयुक्त हो रहे है।

हिन्दी-जैन-साहित्यमें अलंकार-योजना

काव्यके दो पक्ष है—कलापक्ष और भावपक्ष। जैसे मानव-शरीर और प्राणोका समवाय है, उसी प्रकार कलापक्ष काव्यका शरीर और भावपक्ष प्राण है। दोनो आपसमे सम्बद्ध है। एकके अभावमे दूसरेकी सुस्थिति सम्भव नही। भाषा अलकार, प्रतीक योजना प्रभृति कलापक्षके अन्तर्गत है और अनुभूति भावपक्षके। कोई भी कवि भावको तीव्र करने, व्यञ्जित करने तथा उनमे चमत्कार लानेके लिए अलकारोका प्रयोग करता है। जिस प्रकार काव्यको चिरन्तन बनानेके लिए अनुभूतिकी गहराई और सूक्ष्मता अपेक्षित है उसी प्रकार उस अनुभूतिको अभिव्यक्त करनेके लिए चमत्कारपूर्ण अलकृत शैलीकी भी आवश्यकता है।

हिन्दी-जैन कवियोकी कविता-कामिनी अनाडी राजकुलाङ्गनाके समान न तो अधिक अलकारोके बोझसे दबी है और न ग्राम्यबालाके समान निराभरणा ही है। इसमे नागरिक रमणियोके समान सुन्दर और उपयुक्त अलकारोका समावेश किया गया है। कवि बनारसीदास, भैया-भगवतीदास और भूधरदास जैसे रससिद्ध कवियोने अभिव्यजनाकी चमत्कारपूर्ण शैलीमे बडी चतुराईसे अलकार योजना की है। वास्तविकता यह है कि प्रस्तुत वस्तुका वर्णन दो तरहसे किया जाता है—एकमे वस्तुका यथातथ्य वर्णन—अपनी ओरसे नमक मिर्च मिलाये बिना और दूसरीमे कल्पनाके प्रयोग द्वारा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदिसे अलकृत करके अग-प्रत्यगके सौन्दर्यका निरूपण किया जाता है। कविकी प्रतिभा प्रस्तुत-

की अभिव्यजनापर निर्भर है। अलकार इस दिशामें परम-सहायक होते हैं। मनोभावोंको हृदय-स्पर्शी बनानेके लिए अलकारोंकी योजना करना प्रत्येक कविके लिए आवश्यक है।

जैन-कवियोंने प्रस्तुतके प्रति अनुभूति उत्पन्न करानेके लिए जिस अप्रस्तुत की योजनाकी है, वह स्वाभाविक एव मर्मस्पर्शी है, साथ ही प्रस्तुतकी भाँति भावोद्रेक करनेमें सक्षम भी। कवि अपनी कल्पनाके वलसे प्रस्तुत प्रसगके मेलमें अनुरजक अप्रस्तुतकी योजना कर आत्माभिव्यजनमें सफल हुए है। वस्तुतः जैन कवियोंने चर्म चक्षुओंसे देखे गये पदार्थोंका अनुभव कर कल्पना द्वारा एक ऐसा नया रूप दिया है, जिससे वाह्य जगत् और अन्तर्जगत्का सुन्दर समन्वय हुआ है। इन्होंने वाह्य जगत्के पदार्थोंको अपने अन्त.करणमे ले जाकर उन्हे अपने भावोंसे अनुरजित किया है और विधायक कल्पना द्वारा प्रतिपाद्य विषयकी सुन्दर अभिव्यजना की है। आत्माभिव्यजनमें जो कवि जितना सफल होता है, वह उतना ही उत्कृष्ट माना जाता है और यह आत्माभिव्यजन तबतक सम्भव नहीं जबतक प्रस्तुत वस्तुके लिए उसीके मेलकी दूसरी अप्रस्तुत वस्तु की योजना न की जाय। मनीषियोंने इस योजनाको ही अलकार कहा है। काव्यानन्दका उपभोग तभी सम्भव है, जब काव्यका कलेवर कलामय होनेके साथ अनुभूतिकी विभूतिसे सम्पन्न हो। जो कवि अनुभूतिको जितना ही सुन्दर बनानेका प्रयास करता है उसकी कविता उतनी ही निखरती जाती है। यह तभी सम्भव है जब उपमान सुन्दर हों। अतएव अलकार अनुभूतिको सरस और सुन्दर बनाते है। कवितामें भाव-प्रवणता तभी आ सकती है, जब रूप योजनाके लिए अलकृत और सॅवारे हुए पदोका प्रयोग किया जाय। दूसरे शब्दोमे इसीको अलकार कहते हैं।

शब्दालकारोंमे शब्दोको चमत्कृत करनेके साथ भावोको तीव्रता-प्रदान करनेके लिए अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति आदिका प्रयोग सभी जैन काव्योमें मिलता है। "**सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन**

कनक नग। धवल परम पद-रमन जगत-जन अमल कमल खग", मे अनुप्रासकी सुन्दर छटा है। भैया भगवतीदासके निम्न पद्यमे कितना सुन्दर अनुप्रास है। इसने अनुभूतिको तीव्रता प्रदान की है।—यह देखते ही बनता है।

कटाक कर्म तोरिके छटाँक गाँठ छोरके,
पटाक पाप मोरके तटाक दै मृपा गई।
चटाक चिन्ह जानिके, झटाक हीय आनके,
नटाकि नृत्य मानके खटाकि तै खरी ठई॥
घटाके घोर फारिके तटाक बन्ध टारके,
अटाके रामधारके रटाक रामकी जई।
गटाक शुद्ध पानके हटाकि अव आनको,
घटाकि आप दानको सटाक ज्यो वधू लई॥

कवि बनारसीदासने यमकालंकार की—"केवल पद महिमा कहो, कहो सिद्ध गुणगान" मे कितनी सुष्ठु योजना की है। भैया भगवतीदासकी कवितामे तो यमकालंकारकी भरमार है। निम्न पद्यमे यमककी कितनी सुन्दर योजना की गई है।

एक मतवाले कहे अन्य मतवारे सब,
एक मतवारे पर वारे मत सारे हैं।
एक पंच तत्व वारे एक-एक तत्व वारे,
एक भ्रम मतवारे एक एक न्यारे हैं।
जैसे मतवारे बकैं तैसे मतवारे बके,
तासो मतवारे तकैं बिना मतवारे है।
शान्तिरस वारे कहैं मतको निवारे रहैं,
तेई प्रान प्यारे रहैं और सब वारे हैं॥

इस पद्यमे प्रथम मतवारेका अर्थ मतवाले और द्वितीय मतवारेका

अर्थ मदोन्मत्त है, दूसरी पक्तिमे प्रथम मतवारेका अर्थ मतवाले और द्वितीय मतवारेका अर्थ मतन्योछावर है।

भैया भगवतीदासने 'परमात्म शतक'मे आत्माको सम्बोधित करते हुए परमात्माका रूप यमकालकारमे बहुत ही सुन्दर दिखलाया है।

> पीरे होहु सुजान, पीरे कारे है रहे।
> पीरे तुम बिन ज्ञान, पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ॥

इस पद्यमे प्रथम पीरेका अर्थ पियरे अर्थात् हे प्रिय है और द्वितीय पीरेका अर्थ पीले है। द्वितीय पक्तिमे प्रथम पीरेका अर्थ पीडे और द्वितीय पीरेका अर्थ पी-रे अर्थात् पियो है। इसी प्रकार निम्न पद्यमे भी यमकालकार भावोकी उत्कर्ष व्यजनामे कितना सहायक है। साधक ससारके विषयोसे ग्लानि प्राप्त करनेके अनन्तर कहता है कि मै बलवान कामको न जीत सका, व्यर्थ ही विषयासक्त रहा। आत्म-साधना न कर मै कामदेवके आधीन बना रहा अत मुझसे मूर्ख और कौन होगा। जब विषयोसे पूर्ण विरक्ति हो जाती है, उस समय इस प्रकारके भाव या विचारोका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह सत्य है कि आत्मभर्त्सना या आत्मालोचनाकी अग्नि के बिना विकार भस्म नही हो सकते है।

> मै न काम जीत्यो बली, मै न काम रसलीन।
> मै न काम अपनो कियो, मै न काम आधीन॥

इस पद्यमे प्रथम पक्तिमे प्रथम न कामका अर्थ है कामदेवको नहीं और दूसरे न कामका अर्थ है व्यर्थ ही, दूसरी पक्तिमे न कामका अर्थ है कार्य नही किया और दूसरे नकामका मै न काम, इस प्रकारका पदच्छेदका अर्थ करनेपर कामदेवके आधीन अर्थ निकलता है। इसी प्रकार निम्न पद्यमे "तारी" शब्दके विभिन्न अर्थ कर पदावृत्ति की गई है।

तारी पी तुम भूलकर, तारी तन रस लीन। ✓
तारी खोजहु ज्ञान की, तारी पति वर लीन ॥

कवि वृन्दावनदासने भी गुरुकी स्तुतिमें शब्दालङ्कारोंकी सुन्दर योजना की है। "जिन नामके परभावसों, परभावको दहो" मे प्रथम परभावका अर्थ प्रभाव है और द्वितीय परभावका अर्थ परभाव-भेद बुद्धि या अन्य पदार्थ विषयक बुद्धि है।

कवि बनारसीदासने आत्मानुभूतिकी व्यजना वक्रोक्ति अलकारमे भी की है। इस नामरूपात्मक जगत्‌के बीच परमार्थतत्त्वका शुद्ध स्वरूप भेदबुद्धि द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। स्वात्मानुभव ही शुद्ध स्वरूपको प्राप्त करनेमे सहायक होता है।

अर्थालकारोंमे उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, असम, दृष्टान्त, रूपक, विनोक्ति, विचित्र, उल्लेख, सहोक्ति, समासोक्ति, काव्यलिङ्ग, श्लेष, विरोधाभास एव व्याजस्तुति आदिका प्रयोग जैन काव्योंमे पाया जाता है।

जैन कवियोने सादृश्यमूलक अलकारोकी योजना स्वरूपमात्रका बोध करानेके लिए नही की है, किन्तु उपमेयके भावको उद्‌बुद्ध करनेके लिए की है। स्वरूपमात्र सादृश्यमे उपमान-द्वारा केवल उपमेयकी आकृति या रगका बोध हो सकता है किन्तु प्रस्तुतके समान ही आकृतिवाले अप्रस्तुत-की योजना कर देने मात्रसे तज्जन्य भावका उदय नहीं हो सकता है। अतएव "गो सदृशो गवय." के समान सादृश्यबोधक वाक्योंमे अलकार नही हो सकता। जबतक अप्रस्तुतके द्वारा प्रस्तुतके रूप या गुणमे सौन्दर्य या उत्कर्ष नही पहुँचता है तबतक अर्थालकार नही माना जा सकता। अर्थालकारके लिए "सादृश्यं सुन्दर वाक्यार्थोपकारम्" अर्थात् सादृश्यमे चमत्कृत्याधायकत्वका रहना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि जिस अप्रस्तुतकी योजनासे भावानुभूतिमे वृद्धि हो वही वास्तवमे आलकारिक रमणीयता है। कवि बनारसीदासने निम्न पद्यमे उपमालकारकी कितनी सुन्दर योजना की है।

आतमको अहित अध्यातम रहित रसो,
आसव महातम अखण्ड अण्डवत है।
ताको विसतार गिलिवेको परगट भयो,
ब्रह्मंडको विकासी ब्रह्म मंडवत है॥
जामै सब रूप जो सबमें सब रूप सोयें,
सबनिसों अलिप्त अकाश खडवत है।
सोहं ज्ञानभानु शुद्ध सवरको भेप धरे,
ताकी रुचि रेखको हमारे दण्डवत है॥

समदृष्टिकी प्रशंसा करते हुए कवि बनारसीदासने उपमालंकारकी अद्भुत छटा दिखलायी है। कवि कहता है—

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।
केलि करें शिव मारगमें जगमाँहि जिनेश्वरके लघुनन्दन॥

इस पद्यमे कविने चित्तकी उपमा चन्दनसे दी है। जिस प्रकार चन्दन शीतल होता है, आतापको दूर करता है, उसी प्रकार भेदविज्ञानी हृदय भी। अतएव यहाँ चाँदनी उपमान और हृदय उपमेय है। समान धर्म शीतलता है तथा उपमानवाची शब्द जिमि है। कवि कहता है कि जिनके मनमन्दिरमे आत्मविज्ञानका प्रकाश उत्पन्न हो गया, उनका हृदय चन्दनके समान शीतल हो जाता है।

कवि मनरंगलालने निम्न पद्योमे उपमालंकारकी योजना-द्वारा रसोत्कर्ष करनेमें कितनी विलक्षणता प्रदर्शित की है। भावना और चिन्तनमे कितना सतुलन है, यह उदाहरणोसे स्पष्ट है।

गिरिसम बेंच गयन्द सुभनकों खरपर चित्त चलावे।
पाय धरम लब्धि त्यागि शठ विपय-भोगको ध्यावे॥
मुसिक्याय कही अब जावो। जन्मान्तर लौ अब खावो॥
ले हार मने मुसिक्याना। जिमि पावत भूखो दाना॥

कवि वृन्दावनदासने भगवद्भक्तिकी विशेषता बतलाते हुए उपमालंकारकी कितनी सुन्दर योजना की है। यद्यपि यह पूर्णोपमा है, पर इसमें आत्म-भावनाको अभिव्यक्त करनेके लिए कविने "सुन्दर नारी की नाक कटी है" को उपमान बनाकर "जिनचन्द पदाम्बुज प्रीति विना" जीवनको उपमेय मानकर भावोंको मूर्तिक रूप प्रदान करनेका आयास किया है।

सब ही विधिसों गुणवान बडे, बलबुद्धि विभा नहीं टेक हटी है।
जिनचन्द पदाम्बुज प्रीति बिना, जिमि सुन्दर नारीकी नाक कटी है॥

जैन कवियोने अप्रस्तुत-द्वारा प्रस्तुतके भावोंकी सुन्दर अभिव्यजना करनेका पूरा यत्न किया है। प्रतीकों-द्वारा, साम्य रूपमे, मूर्त्तके लिए अमूर्त्त रूपमे आधारके लिए आधेय रूपमें और मानवीकरणके रूपमे उपमालंकारकी योजना की गई है। कई कवियोने निर्जीव वस्तुओंके वर्णनमें या सूक्ष्म भावोंकी गम्भीर अभिव्यजनामें ऐसे उपमानोंका भी प्रयोग किया है, जिनसे मानवके सम्बन्धमे अभिव्यक्ति की गई है। साहित्यिक दृष्टिसे ये पद्य ओर भी महत्त्व रखते है।

सौन्दर्य और दृश्य चित्रणके लिए भी जैन काव्योंमे उपमा और उत्प्रेक्षाका अधिक व्यवहार किया है। इन अलकारोंके सहारे इन्होंने अपनी कल्पनाका विस्तार बहुत दूरतक बढाया है। कवि-समय-सिद्ध उपमानोंके अलावा नूतन उपमानोका भी प्रयोग किया गया है। प्रसिद्ध उपमानोंके व्यवहारमे भी अपनी कलाका पूरा परिचय ये कवि दे सके है। चन्द्रप्रभ पुराणमें नेत्रोंकी उपमा कमलसे दी गयी है। कमलके तीन वर्ण प्रसिद्ध है—लाल, नीला, और श्वेत। बचपनमें नेत्र नीले वर्णके होते है अतएव उस समयके नेत्रोंकी उपमा नील कमलसे तथा युवावस्थामे नेत्र अरुण वर्णके होनेसे "कजारुण लोचन" कहकर वर्णन किया गया है। वृद्धावस्थामें नेत्रका रग कुछ श्वेत हो जाता है अतः "कंजश्वेत इव राजत" कहकर निरूपण किया है।

कविकी पहुँच कितनी दूरतक है यह उपर्युक्त उपमानोंकी योजनासे स्पष्ट है।

कज्जलयुक्त बालकोंकी बडी-बडी ऑखे चित्तको हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। श्यामरग भी चित्ताकर्षक और हृदयको शीतल करनेवाला होता है। अतएव केवल कमलकी उपमा यहाँ उपयुक्त नहीं हो सकती थी। इसी प्रकार युवावस्थामे अरुण नेत्र रहनेसे लाल कमलकी उपमा सौन्दर्यका पूरा चित्र सामने प्रस्तुत करनेमे सक्षम है। अरुणनेत्र प्रताप, शूरता और दुस्साहसके सूचक है। वीर वेषके वर्णनमे अरुण कमलवत् नेत्रोको कहना अधिक सौन्दर्य द्योतक है।

वृद्धावस्थामे शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है। तथा रक्तकी कमी होनेसे नेत्र भी स्वभावतः कुछ श्वेत हो जाते है। कविने वृद्धावस्थाका पूरा चित्र सामने लानेके लिए श्वेत कमलके समान नेत्रोको बतलाया है। कवि वृन्दावनने जिनेन्द्रके नेत्रोकी निम्न छप्पयके प्रथम चरणमे छह उपमाएँ दी है। और शेष पॉच चरणोमे प्रत्येक उपमाके छः छ. विशेषण दिये है। नेत्रोकी दूसरी उपमा भी कमलसे ही है, पर यह उपमा साधारण नहीं है छ. विशेषण युक्त है, अर्थात् सदल पत्र सहित, विकसित, दिवसका, सजल सरोवरका और मलयदेशका है। तात्पर्य यह है कि भगवान्के नेत्र मलयदेशमे विकसित दैवसिक सदल अरुण कमलके तुल्य है। साधारण कमलकी उपमा देनेसे यह अभिव्यजना कभी नही हो सकती थी। कोमलता, दयालुता, सर्वज्ञता, हितोपदेशिता और वीतरागताकी भावनाएँ उक्त उपमानोसे ही यथार्थमे अभिव्यजित हो सकी है।

मीन कमल मद घनद अमिय अंतकु छवि छज्जे।
जुगल सदल अति अरुन, सघन उज्जव भय सज्जै॥
हुलसित विकसित समद, दानि नाकी अति कूरे।
केलि दिवस शुचि अति उदार, पोषक अरि चूरे॥

भ्रम सरज नीत चित चिन्त दे, वृन्द मिण्ट अनगखधर।
जग मलय मदन अकहत अकृत, देवदृष्टि दुःसदृष्टि हर ॥

उपर्युक्त पद्यसे स्पष्ट है कि कविका हृदय उपमानोंका अक्षय भण्डार है। ये उपमान प्रकृतिसे तो लिये ही गये हैं, पर कुछ परम्परा भुक्त भी हैं। ज्योंही कवि सौन्दर्यकी अभिव्यंजना करनेकी इच्छा करता है, त्योंही उपमान उसकी कल्पनाकी पिटारीसे निकलने लगते हैं। कवि दौलतरामने भी उपमानोंकी झड़ी लगा दी है। एक ही उपमेयका सर्वाङ्गीण चित्रण करनेके लिए अनेकानेक उपमानोंका एक ही साथ व्यवहार किया है।

पद्मासद्म पद्मपद पद्मा—मुक्ति सद्म दरशावन है।
कलिमल-गंजन मन अलि रंजन मुनिजन सरन सुपावन है।

× × ×

जाको शासन पंचानन सो, कुमति मतंग-नशावन है।

इन कवियोंकी एक विशेषता है कि उनके उपमान किसी न किसी भावको पुष्ट करनेके लिए ही आते हैं। विश्वमें मोहका बन्धन सबसे सबल होता है, संसारमें ऐसा कोई प्राणी नहीं, जिसे मोहका विष व्याप्त न हो। मोहका तीक्ष्ण विष प्राणीको सदा मूर्च्छित रखता है। अतः कवि दौलतराम और भैया भगवतीदासने इस मोहका चार उपमानों-द्वारा विश्लेषण किया है। व्याल, ग्राह, गरल और मदिरा। इन चारों उपमानोंसे भिन्न भिन्न भावनाओंकी अभिव्यंजना होती है। व्याल—सर्प जिस प्रकार व्यक्तिको काट लेता है तो वह व्यक्ति सर्पके विषके प्रभावसे मूर्च्छित हो जाता है, उसे तनका भी होश नहीं रहता; इसी प्रकार मोहाविष्ट हो जानेसे प्राणी भी विवेकशून्य हो जाता है। रात-दिन इन्द्रियोंके विषय साधनोंमें व्याकुल रहता है। अतएव सर्प विष द्वारा प्रस्तुत मोहके प्रभावका विश्लेषण किया गया है। इसी प्रकार अवशेष तीन उपमान भी मोहाभिभूत दशाकी अभिव्यंजना करनेमें सक्षम हैं।

निकालना, कुत्तेका सूखी हड्डी चबाकर स्वाद लेना आदि उपमानोके द्वारा अभिव्यक्त की है। उपमालकारका वर्णन हिन्दी जैन साहित्यमे बहुत विस्तारके साथ मिलता है। उपमाके पूर्णोपमा और लुप्तोपमा इन दोनो प्रधान भेदोके साथ आर्थी, श्रौती, धर्मलुप्ता, उपमानलुप्ता और वाचकलुप्ता इन उपभेदोका व्यवहार भी किया गया है। सादृश्य सम्बन्ध वाचक शब्द इव, यथा, वा, सी, से, सो, लो, जिमि आदि का प्रयोग भी यथा स्थान मिलता है।

कवि बनारसीदास उपमा और उत्प्रेक्षाके विशेषज्ञ है। आपके नाटक समयसारमे इन दोनो अलकारोके पर्याप्त उदाहरण आये है। निम्न पद्यमे कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा की गई है, कल्पनाकी उडान कितनी ऊँची है, यह दखते ही बनेगा।

ऊँचे-ऊँचे गढ़के कंगुरे यों विराजत हैं,
मानो नभ लीलवेको दाँत दियो है।
सोहे चिहुं उर उपवनकी सघनताई,
घेरा करि मानो भूमि लोक घेरि लियो है॥
गहरी गम्भीर खाई ताकी उपमा बनाई,
नीचो करि आनत पताल जल पियो है।
ऐसो है नगर यामें नृप को न अंग कोऊ,
यों ही चिदानन्दसों शरीर भिन्न कियो है॥

उत्प्रेक्षा अलकारका कवि बनारसीदासने कितने अनूठे ढगसे प्रयोग किया है, भावोत्कर्ष कितना सुन्दर हुआ है—यह निम्न पद्यसे स्पष्ट है।

थोरे से धक्का लगे ऐसे फट जाये मानों,
कागदकी पूरी कीधो चादर है चैल की।

ससारके सम्बन्धमे विभिन्न प्रकारकी उत्प्रेक्षाएँ कवि रूपचन्द पाण्डे और नयसूरिने की है। भागचन्द और बुधचन्दके पदोमे भी उत्प्रेक्षाओंकी

भरमार है। कवि भूधरदासने हेतूत्प्रेक्षाका कितना सुन्दर समावेश किया है। कल्पनाकी उडानके साथ भावोकी गहराई भी आश्चर्यजनक है।

काउसग्गा-मुद्रा धरि वनमे, ठाढे रिषभ रिद्धि तज दीनी।
निहचल अंग मेरु है मानो, दोऊ भुजा छोर जिन दीनी॥
फँसे अनन्त जन्तु जग-चहले, दु खी देख करुना चित लीनी।
काटन काज तिन्हे समरथ प्रभु, किधौ बॉह ये दीरघ कीनी॥

भगवान्‌की कायोत्सर्ग स्थित मुद्राको देखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि हे प्रभो! आपने अपनी दोनो विशाल भुजाओको ससारकी कीचडमे फॅसे प्राणियोके निकालनेके लिए ही नीचेकी ओर लटका रखा है। ऊपरके पद्यमे इसी भावको दिखलाया गया है।

भगवान् शान्तिनाथकी स्तुति करता हुआ कवि कहता है कि देवलोग भगवान्‌को प्रतिदिन नमस्कार करते है, उनके मुकुटोमे लगी नीलमणियोकी छाया भगवान्‌के चरणोपर पडती है जिससे ऐसा मालूम पडता है मानो भगवान्‌के चरण-कमलोकी सुगन्धका पान करनेके लिए अनेक भ्रमर ही एकत्र हो गये है—कवि कहता है—

शान्ति जिनेश जयो जगतेश हरे अघताप निशेश की नाईं।
सेवत पॉय सुरासुरराय नमै सिरनाय महीतलताईं॥
मौलि लगे मनिनील दिपै प्रभुके चरनो झलकै वह झाईं।
सूँघन पॉय सरोज-सुगन्धि किधौ चलिये अलि पंकति आईं॥

जैन कवियोने एक ही स्थानपर उपमेयमे उपमानकी उत्कटताकी सम्भावना कर वस्तूत्प्रेक्षा या स्वरूपोत्प्रेक्षाका सुन्दर प्रयोग किया है। वाच्या और प्रतीयमाना दोनो ही प्रकारकी उत्प्रेक्षाओके उदाहरण वर्द्धमान चरित्रमे आये है। कविने वर्द्धमान स्वामीके रूप सौन्दर्यका निरूपण नाना कल्पनाओ द्वारा अलकृत रूपमे किया है।

रूपकालकारकी योजना करते हुए कवि बनारसीदासने कहा है कि

कायाकी चित्रशालामें कर्मका पलंग बिछाया है। उसपर मायाकी सेज सजाकर मिथ्या कल्पनाका चादर डाला गया है। इसपर अचेतनाकी नींदमें चेतन सोता है। मोहको मरोड नेत्रोंका बन्द करना है, कर्मके उदयका बल ही श्वासका घोर शब्द है और विषय-सुखकी दौर ही स्वप्न है। कविने यहाँ उपमेयमें उपमानका आरोप बडी कुशलतासे किया है। कवि कहता है—

> कायाकी चित्रसारीमें करम परजंक भारी,
> मायाकी संवारी सेज चादर कलपना।
> शैन करे चेतन अचेतन नींद लिए
> मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना॥
> उदै बल जोर यहै श्वासको शबद घोर।
> विषै सुखकारी जाकी दौर यही सपना।
> ऐसी मूढ दशामें मगन रहे तिहुं काल
> धावे भ्रम-जालमें न पावे रूप अपना॥

वस्तुत कवि बनारसीदासने अप्रस्तुतमें प्रस्तुतका केवल रूपसादृश्य ही नहीं दिखलाया, किन्तु प्रस्तुतके भावको तीव्र बनाया है। निरङ्ग रूपकोंमें सादृश्य, साधर्म्य, तथा प्रभाव इन तीनोंका ध्यान रखा है, पर साग रूपकमें सादृश्य और साधर्म्यका पूरा निर्वाह किया है। कविने कई स्थलोंपर आत्मा और परमात्माके बीचके व्यवधानको दूरकर आत्माको ही अभेदरूपक परमात्मा बतलाया है।

कवि भैया भगवतीदासके सिवा कवि वृन्दावनने भी अपनी कवितामें रूपकोंकी यथास्थान योजना की है। कवि वृन्दावन कहता है—

> आदि पुरान सुनो भवकानन।
> मिथ्यातम गयंद गंजनको, यह पुरान साँचो पंचानन।
> सुरगमुकतिको मग दरसावत, भविक जीवको भवभय भानन॥

यहाँ कविने बतलाया है, कि जैसे तृण, काष्ठ, आदिकी अग्नि भिन्न-भिन्न होनेपर भी एक ही स्वभावकी अपेक्षा एक रूप है, उसी प्रकार यह जीव भी नाना द्रव्योके सम्पर्कसे नाना रूप होनेपर भी चेतनाशक्तिकी अ पेक्षासे अभेद—एक रूप है।

ज्ञानके उदयतें हमारी दशा ऐसी भई
जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥

कविने इस पद्यांशमे सूर्यके उदाहरण-द्वारा ज्ञानकी विशेषता दिखलायी है। कवि कहता है कि ज्ञानका उदय होनेसे हमारी ऐसी अवस्था हो गई है, जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रात कालकी होती है। जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मोह-अन्धकार दूर हो गया है।

कवि वृन्दावन और भूधरदासने भी उदाहरणालकार-द्वारा प्रस्तुतका भावोत्कर्ष दिखलाया है। भूधरदासने दृष्टान्तालकारकी योजना निम्न पद्यमे कितने सुन्दर ढगसे की है, यह दर्शनीय है—

जनम जलधि जलजान जान जन हस मानकर।
सरब इन्द्र मिल आन-आन जिस धरहि शीसपर॥
पर उपभारी बान, बान उत्थपइ कुनय गन।
गन सरोज बन भान, भान मम मोह तिमिर धन॥
धन वरन देह दु.ख दाह हर, हरखत हेरि मयूर मन।
मनमथ मतंग हरि पास जिन, जिन विसरहु छिन जगत जन॥

यहाँ भगवान् पार्श्वनाथका ज्ञान उपमेय और सूर्य उपमान है तथा कमलका विकसित होना और अन्धकारका नष्ट होना समान धर्म है। बस, यही बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है।

कवि मनरगलालने उपमेयकी समताका प्रभाव प्रदर्शित करते हुए असम अलकारकी कितनी अनूठी योजना की है।

जा सम न दूजी और कन्या देखि रूप लजे रती ॥

इस प्रकार कवि भूधरदासने निम्न पद्यमे हृदयकी भावनाओ और मानसिक विचारोको कितना साकार करनेका आयास किया है। भावोके विकासमय आलोककी प्रोज्वल राशि जगमगाती हुई दृष्टिगत होती है।

कृमिरास कुवास सराप दहै, शुचिता सब धीवत्त जाय सही।
जिह पान किये सुध जात हिये, जननी जन जानत नार यही ॥
मदिरा सम आन निषिद्ध कहा, यह जान भले कुलमे न गही।
धिक है उनको वह जीभ जले, जिन मूढनके मत लीन कही।

इस पद्यमे कविने मदिराके समान अन्य हेय पदार्थका अभाव दिखलाकर मदिराकी अशुचिताका दिग्दर्शन कराया है। इसी प्रकार आखेटका निषेध करते हुए कवि कहता है कि—"काननमे बसै ऐसो आन न गरीब जीव, प्राननसो प्यारे प्रान पूँजी जिस परै है ॥" अर्थात् हिरणके समान अन्य कोई भी प्राणी दीन नहीं होता है।

एकके विना दूसरेके शोभित अथवा अशोभित होनेका वर्णन कर विनोक्ति अलकारकी योजना बडी ही चतुराईसे की गयी है। भैया भगवतीदासने—"आतमके काज विन रजसम राजसुख, सुनो महाराज कर कान किन दाहिने।" मे आत्मोद्धारके बिना राज्यसुखको भी धूल समान बताया है। कवि भूधरदासने रागके विना ससारके भोगोकी सारहीनताका चित्रण करते हुए विनोक्ति अल्कारकी अनूठी योजना की है

राग उदै भोगभाव लागत सुहावनेसे
विना राग ऐसे लागै जैसे नाग कारे है।
राग हीनसो पाग रहे तनमे सदीव जीव
राग गये आवत्त गिलानि होत न्यारे हैं ॥
रागसो जगत रीति झूँठी सब साँच जाने
राग मिटे सूझत असार खेल सारे है।

रागी बिन रागीके बिचारमे बडो ही भेद
जैसे भटा पथ्य काहु काहुको बयारे है ॥

कवि मनरंगलालने विनोक्ति अलकारकी योजना द्वारा अपने अन्त-रालकी व्यापकता और गहराईको बडे ही अच्छे ढगसे व्यक्त किया है।

नेम विना जो नर पर्याय। पशु समान होती नर राय ॥

× × ×

नाथ तिहारे साथ बिन, तनक न मोहि करार।
ताते हमहूँ साथ तुम, चलसी तजि घरवार ॥

× × ×

हे पुत्र चलो अब घेरे हाल। तुम बिन नगरी सब है बिहाल ॥

कवि मनरंगलालने एक ही क्रिया शब्दको दो अर्थोंमे प्रयुक्त कर सहोक्ति अलकारका भी समावेश किया है। कविने प्रत्येक अगमे कामदेव और सुषमाको साथ साथ रखा है—

अंग अंगमे छायो अनंग। जहँ देखो तहँ सुखमा संग ॥

भैया भगवतीदासने हसकी उक्ति देकर निम्न पद्यमे कितने ढगसे चैतन्यका फन्देसे फॉसना दिखलाया है। आपका अन्योक्ति अलकारपर विशेष अधिकार है। तोता, मतग आदिकी उक्तियोसे आत्माकी परतन्त्रता-की विवेचना की है।

हंस हंस हंस आप मुझ, पूर्व सँवारे फन्द।
तिहिं कुदाव मे बंधि रहे, कैसे होहु सुछन्द ॥

× × ×

सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ।
आये धोखे आम के, यापै पूरण इच्छ ॥

कवि मनरंगलालने निम्न पद्यमे अतिशयोक्ति अलकारका समावेश कितने अनूठे ढगसे किया है—

नासा लोल कपोल मझार। सब शोभाकी राखन हार।
ताहि देखि सुक वनमें जाय। लज्जित ह्वै निवसे अधिकाय॥

कवि बनारसीदासने अपने अर्द्धकथानकमें आत्म-चरितकी अभिव्यंजना करते हुए आक्षेपालङ्कारका कितना अच्छा समावेश किया है। कवि कहता है—

शंख रूप शिव देव, महाशंख बनारसी।
दोऊ मिले अबेव, साहिब सेवक एकसे॥

भैया भगवतीदास और बनारसीदासने श्लेषालङ्कारकी भी यथास्थान योजना की है। "अकृत्रिम प्रतिमा निरखत सु "करी न घरी न भरी न धरी" मे करीन भरीन और धरीन पदके तीन तीन अर्थ हैं। मोह अपने जालमें फँसाकर जीवोंको किस प्रकार नचाता है, कविने इसका वर्णन विचित्रालङ्कारमें कितना अनूठा किया है।

नटपुर नाम नगर अति सुन्दर, तामें नृत्य होहि चहुँ ओर।
नायक मोह नचावत सबको, ल्यावत स्वांग नये नित ओर॥
उछरत गिरत फिरत फिरका दै, करत नृत्य नाना विधि घोर।
इहि विधि जगत जीव नाचत, राचत नाहि तहाँ सुकिशोर॥

कवि बनारसीदासने आत्मलीलाका निरूपण विरोधाभास अलङ्कारमें करते हुए लिखा है—

"एकमें अनेक है अनेकहीमें एक है सो,
एक न अनेक कुछ कह्यो न परतु है।"

इसी प्रकार वृन्दावन और द्यानतरायने भी विरोधाभासकी सुन्दर योजना की है। परिकर, समासोक्ति, उल्लेख, विभावना और यथासंख्य अलङ्कारोंका प्रयोग जैन काव्योंमें यथेष्ट हुआ है।

हिन्दी जैन काव्योंमें प्रकृति-चित्रण

कविताको अलङ्कृत करने और रसानुभूतिको बढ़ानेके लिए कवि प्रकृतिका आश्रय ग्रहण करता है। अनादिकालसे प्रकृति मानवको सौन्दर्य

प्रदान करती चली आ रही है। इसके लिए वन, पर्वत, नदी, नाले, उषा, सन्ध्या, रजनी, ऋतु, सदासे अन्वेषणके विषय रहे है। हिन्दीके जैन कवियोको कविता करनेकी प्रेरणा जीवनकी नश्वरता और अपूर्णताके अनुभवसे ही प्राप्त हुई है। इसीलिए हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, घृणा-प्रेमका जीवनमे अनुभवकर उसके सारको ग्रहण करनेकी ओर कवियोंने सकेत किया है।

भावोकी सचाई (Sincerity) या सत्यः रसोद्रेककी क्षमता कोई भी कलाकार प्रकृतिके अचलसे ही ग्रहण करता है। इसी कारण जीवनके कवि होनेपर भी जैन कवियोकी सौन्दर्यग्राहिणी दृष्टि प्रकृतिकी ओर भी गई है और उन्होने प्रकृतिके सुन्दर चित्र अकित किये है। शान्त-रसके उद्दीपन और पुष्टिके लिए जैन कवियोने प्रकृतिकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर ऐसे रमणीय चित्र खीचे है जो विश्वजनीन भावोकी अभिव्यक्तिमे अपना अद्वितीय स्थान रखते है। प्रकृतिकी पाठशाला प्रत्येक सहृदयको निरन्तर शिक्षा देती रहती है। यही कारण है कि मानव और मानवेतर प्रकृतिका निरूपण कुशल कलाकार तल्लीनता और रसमग्नताके साथ करता ही है।

त्यागी जैन कवियोमे अनेक कवि ऐसे है, जिन्होने अपनी साधना के लिए वनाश्रम ग्रहण किया है। प्रकृतिके खुले वातावरणमे रहने के कारण सन्ध्या, उषा और रजनीके सौन्दर्यसे इन्होने अपने भीतरके विराग को पुष्ट ही किया है। इन्हे सन्ध्या नवोढ़ा नायिकाके समान एकाएक वृद्धा, कलूटी रजनीके रूपमे परिवर्तित देखकर आत्मोत्थानकी प्रेरणा प्राप्त हुई और इसी प्रेरणाको अपने काव्यमे अकित किया है। प्रकृतिके विभिन्न रूपोमे सुन्दरी नर्त्तकीके दर्शन भी अनेक कवियोंने किये है, किन्तु वह नर्तकी दूसरे क्षणमे ही कुरूपा और वीभत्ससी प्रतीत होने लगती है। रमणीके केश कलाप, सलज्ज कपोलकी लालिमा और साजसज्जाके विभिन्न रूपोमे विरक्तिकी भावनाका दर्शन करना कवियोकी अपनी विशेषता है।

परन्तु यह विरक्ति नीरस नहीं है, इसमें भी काव्यत्व है। भावनाओं और कल्पनाओंका सन्तुलन है। महलोंकी चकाचौंध, नगरके अशान्त कोलाहल और आपसके रागद्वेषोंसे दूर हटकर कोई भी व्यक्ति निरावरण प्रकृतिमे अपूर्व शान्ति और आनन्द पा सकता है। मन्द-मन्द पवन, विशाल वन प्रान्त और हरी हरी वसुन्धरा व्यक्तिको जितनी शान्ति दे सकती है, उतनी जन-सकीर्ण भवन नाना कृत्रिम साधन तथा नृपुरोकी छुनछुन कभी भी नहीं।

कवि अपने काव्यमें प्रकृतिके उन्हीं रम्य दृश्योको स्थान देते है जो मानवकी हृदय वीनके तारोको झनझना दे। ग्राम-सौन्दर्य और वन सौन्दर्यका चित्रण अपरिग्रही कवि या ग्रहीत परिमाण परिग्रही कवि जितना कर सकते है, उतना अन्य नहीं। जैन साहित्यमें वन-विभूति और नदी नालोपर, जहाँ दिगम्बर साधु ध्यान करते थे, उन प्रदेशोकी तस्वीरे बडी ही सूक्ष्मता और चतुराईके साथ खींची गयी है। ऐसा प्रतीत होगा कि गतिशील प्रकृति स्वय मूर्त्तमान रूप धारण कर आ गई है। विषयासक्त व्यक्ति प्रकृतिके जिस रूपसे अपनी वासनाको उद्‌बुद्ध करता है विरक्त उसी रूपसे आत्मानुभूतिकी प्रेरणा प्राप्त करता है।

अपभ्रंश भाषाके जैन कवियोने अपने महाकाव्योमे आलम्बन और उद्दीपन विभावके रूपमे प्रकृति चित्रण किया है। षट्ऋतु वर्णन, रणभूमि वर्णन, नदी-नाले-वन पर्वतका चित्रण, उषा-सन्ध्या-रजनी प्रभातका वर्णन, हरीतिमा आदिका चित्राकन सुन्दर हुआ है। इस प्रकृति-चित्रणपर सस्कृत काव्योके प्रकृति-चित्रणकी छाप पडी है। अपभ्रंश भाषाके जैन कवियोने नीति-धर्म और आत्मभावनाकी अभिव्यक्तिके लिए प्रकृतिका आलम्बन ग्रहण किया है। बिम्ब और प्रतिबिम्ब भावसे भी प्रकृतिके भव्य चित्रोको उपस्थित किया है।

पुरानी हिन्दी, व्रजभाषा और राजस्थानी ढुढारी भाषामे रचित प्रबन्ध काव्योमे प्रकृतिका चित्रण बहुत कुछ रीतिकालीन प्रकृति-चित्रणसे

मिलता जुलता है। इसका कारण यह है कि जैन कवियोने पौराणिक कथावस्तुको अपनाया, जिससे वे परम्परा मुक्त वस्तु वर्णनमे ही लगे रहे और प्रकृतिके स्वस्थ चित्र न खींचे जा सके। शान्तरसकी प्रधानता होनेके कारण जैन चरित काव्योंमें शृङ्गारकी विभिन्न स्थितियोका मार्मिक चित्रण न हुआ, जिसमे प्रकृतिको उन्मुक्त रूपमे चित्रित होनेका कम ही अवसर मिला।

परवर्ती जैन साहित्यकारोमे बनारसीदास, भगवतीदास, भूधरदास, दौलतराम, बुधजन, भागचन्द, नयनसुख आदि कवियोकी रचनाओमे प्रकृतिके रम्यरूपोको भावो द्वारा सॅवारा गया है। कवि बनारसीदासने कुबुद्धिकी तुलना कुब्जासे और सुबुद्धिकी तुलना राधिकाके साथ की है। यहॉ रूप चित्रणमे प्रकृतिका बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव देखने योग्य है।

कुटिल कुरूप अंग लगीहै पराए संग,
अपनो प्रवान करि आपुहि बिकाई है।
गहे गति अंधकी-सी सकती कमंधकी-सी,
बंधको बढाऊ करे धंधहीमे धाई है॥
रॉडकीसी रीति लिए भॉडकीसी मतवारी,
सॉड ज्यो सुछन्द डोले मॉडकीसी जाई है।
घरको न जाने भेद करे परधानी खेत,
याते दुर्बुद्धि दासी कुब्जा कहाई है॥

× × ×

रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील,
सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है।
प्राची ज्ञानमानकी अजाची है निदानकी
सुराची नरवाची ठौर साची ठकुराई है॥
धामकी खबरदार रामकी रमनहार,
राधारस पंथिनीमे ग्रन्थनिमे गाई है।

सतनिकी मानी निरवानी नूरकी निसानी,
यातैं सद्बुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥

कवि बनारसीदासने प्रकृतिको उपमान और उत्प्रेक्षा अलकारो-द्वारा चित्रमय रूपमे प्रस्तुत किया है। कविने शारीरिक मासलताके स्थान पर भावात्मकता, विचित्र कल्पना और स्थूल आरोपवादिताके स्थान पर चित्र-मयता और भावप्रवणताका प्रयोग किया है। प्रकृतिके एक चित्रको स्पष्ट करनेके लिए दूसरे दृश्यका आश्रय लिया गया है फिर भी रग-रूपो, आकार-प्रकार एव मानवीकरणमे कोई बाधा नहीं आई है। सादृश्य और सयोगके आधारपर सुन्दर और रमणीय भावोकी अभिव्यजना सौन्दर्यानुभूतिकी वृद्धिमे परम सहायक है। प्रकृतिके विभिन्न रूपोके साथ हमारा भावसयोग सर्वदा रहता है, इसी कारण कवि बनारसीदासने असलक्ष्य क्रमसे प्रकृतिका सुन्दर विवेचन किया है।

उदाहरणालकारके रूपमे प्रकृतिका चित्रण बनारसीदासके नाटक 'समयसार'मे अनेक स्थलो पर हुआ है। ग्रीष्मकालमे पिपासाकुल मृग बालूके समूहको ही भ्रमवश जल समझकर इधर उधर भटकता है, अथवा पवनके सचारसे स्थिर समुद्रके जलमे नाना प्रकारकी तरगे उठने लगती है और समुद्रका जल आलोडित हो जाता है। इसी प्रकार यह आत्मा भ्रमवश कर्मोका कर्त्ता कही जाती है और पुद्गलके ससर्गसे इसकी नाना प्रकारकी स्वभाव विरुद्ध क्रियाएँ देखी जाती है। कवि कहता है—

जैसे महाधूपकी तपतिमे तिसी यो मृग,
भ्रमनसो मिथ्याजल पिवनको धाये है।
जैसे अन्धकार माँहि जेवरी निरखि नर,
भरमसौं डरपि सरप मानि आयो है ॥
अपने सुभाय जैसे सागर सुथिर सदा,
पवन सयोग सो उछरि अकुलायो है।

तैसे जीव जड जो अव्यापक सहज रूप,
भरमसों करमको कर्त्ता कहायो है ॥

वर्षा ऋतुमे नदी, नाले और तालाबमे बाढ आ जाती है, जलके तेज प्रवाहमें तृण-काठ और अन्य छोटे-छोटे पदार्थ बहने लगते है। बादल गरजते और बिजली चमकती है। प्रकृति सर्वत्र हरी भरी दिखलाई पडती है। कवि बनारसीदासने आत्मज्ञानीकी रीतिका वर्षाके उदाहरण द्वारा उपदेशात्मक रूपसे कितना सुन्दर चित्रण किया है—

ऋतु बरसात नदी नाले सर जोर चढे,
बढे नाँहि मरजाद सागरके फैल की।
नीरके प्रवाह तृण काठ वृन्द वहे जात,
चित्रावेल आई चढनाहि कहूँ गैल की॥
बनारसीदास ऐसे पंचनके परपंच,
रचक न संक आवै वीर बुद्धि छैल की।
कुछ न अनीत न क्यों प्रीतिपर गुणसेती,
ऐसी रीति विपरीत अध्यात्म शैल की॥

जब प्रकृति मानवीय भावोके समानान्तर भावात्मक-व्यजन अथवा सहचरणके आधारपर प्रस्तुत की जाती है, उस समय उसे विशुद्ध उद्दीपनके अन्तर्गत नही रक्खा जा सकता। आलम्बनकी स्थितिमे व्यक्ति अपनी मन.स्थितिका आरोप प्रकृति पर करके भावाभिव्यजन करता है। सौन्दर्यानुभूति जो काव्यका आधार है प्रकृतिसे सम्बन्धित है। यद्यपि इसमे नाना प्रकारकी सामाजिक भावस्थितियोका योग रहता है तो भी आलम्बन रूपमे यह सौन्दर्यानुभूति कराती ही है। जो रससिद्ध कवि प्रकृतिके मर्मको जितना अधिक गहराईके साथ अवगत कर लेता है वह उतना ही सुन्दर भावाभिव्यजन कर सकता है।

भैया भगवतीदासने प्रकृतिके चित्रोको किसी मनःस्थिति विशेषकी पृष्ठभूमिके रूपमे प्रस्तुत किया है। मानवीयभावनाओको प्रकृतिके समा-

नान्तर उपस्थित करना और प्रकृतिरूप व्यापारोको आलम्बनके रूपमें अभिव्यक्त करना आपकी प्रमुख विशेषता है। उपमानके रूपमे प्रकृति चित्रण देखिये—

धूमनके धौरहर, देख कहा गर्व करै,
ये तो छिन माहि जाहि पौन परसत ही।
सन्ध्याके समान रग देखते ही होय भग,
दीपक पतग जैसे काल गरसत ही॥
सुपनेमे भूप जैसे इन्द्रधनु रूप जैसे,
ओस बूँद धूप जैसे दुरै दरसत ही।
ऐसोई भरम सब कर्मजाल वर्गणाको,
तामै मूढ मगन होय मरै तरसत ही॥

इन्होने प्रकृतिको स्थितियोके प्रसारमे समवायरूपसे आलम्बन मानकर कतिपय रेखाचित्र उपस्थित किये हैं। वर्षा और ग्रीष्म ऋतुका अपनी अभीष्ट मानसिक स्थितिको स्पष्ट करनेके लिए दृष्टान्तके रूपमे इन ऋतुओका वर्णन किया है—

ग्रीपममे धूप परै, तामे भूमि भारी जरै,
फूलत है आक पुनि अतिहि उमहि कै।
वर्षाऋतु मेघ झरै तामे वृक्ष केई फरै,
जरत जवास अध आपुहि तै डहि कै॥

यद्यपि उपर्युक्त पक्तियोमे प्रकृतिका स्वच्छ और चमत्कारिक वर्णन नही है फिर भी भावको सबल बनानेमे प्रकृतिको सहायक अकित किया है। कवि भूधरदासने रूपक बॉधकर जीवनकी मार्मिकताको प्रकृतिके आलम्बन-द्वारा कितने अनूठे ढगसे व्यक्त किया है—

रात दिवस घट माल सुभाव।
भरि-भरि जल जीवनकी जल॥

सूरज चाँद बैल ये दोय।
काल रैहट नित फेरै सोय॥

कवि अनुभूतिके सरोवरमें उतरकर प्रकृतिमें भावनाओंका आरोपकर रहा है कि कालरूपी अरहट सूरज चाँद रूपी बैलों-द्वारा रातदिन रूपी घड़ोंमें प्राणियोंके आयु रूपी जलको भर-भरकर खाली कर देता है।

भावोत्कर्षके लिए कविने प्रकृतिकी अनेक स्थलोंपर भयंकरता दिखलायी है। ऐसे स्थानोंपर कविकी लेखनी चित्रकारकी तूलिका-सी बन गई है। शब्द पिघल-पिघलकर रेखाएँ बन गये हैं और रेखाएँ शब्द बनकर मुखरित हो उठी हैं, कवि कहता है कि शीत ऋतुमें भयंकर सर्दी पड़ती है यदि इस ऋतुमें वर्षा होने लगे, तेज पूर्वी हवा चलने लगे तो शीतकी भयंकरता और भी बढ़ जाती है। ऐसे समयमें नदीके किनारे खड़े ध्यानस्थ मुनि समस्त शीतकी बाधाओंको सहन करते रहते हैं—

शीतकाल सबही जन काँपै, खडे जहाँ वन विरछ डहे हैं।
झंझावायु बहे वरसा ऋतु, वरसत बादल झूम रहे हैं॥
तहाँ वीर तटनी तट चौपट, ताल पालमें कर्म दहे हैं।
सहैं सँभाल शीतकी बाधा, ते मुनि तारन तरण कहे हैं॥

इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतुकी भयंकरता दिखलाता हुआ कवि गर्मीका चित्रण करता है—

भूख प्यास पीडै उर अन्तर प्रजलै आँत देह सब दागै।
अग्नि स्वरूप धूप ग्रीषम की ताती बाल झालसी लागै॥
तपै पहार ताप तन उपजै कोपै पित्त दाह ज्वर जागै।
इत्यादिक ग्रीषमकी बाधा सहत साधु धीरज नहीं त्यागै॥

ज्ञान वैभवसे युक्त आत्माको वसन्तका रूपक देकर कवि द्यानतरायने कितना सुन्दर चित्र खींचा है यह देखतेही बनता है। कविकी दृष्टिमें प्रकृतिका कण कण एक सजीव व्यक्तित्व लिये हुए है जिससे प्रत्येक मानव

प्रभावित होता है। जिस प्रकार वसन्त ऋतुमे प्रकृति राशि-राशि अपना सौन्दर्य बिखेर देती है उसी प्रकार ज्ञान वैभवके प्राप्त होते ही आत्माका अपार सौन्दर्य उद्बुद्ध हो जाता है और वह शर्मीली छुई-मुईसी दुलहिन सामने खडी हो जाती है। साधक इसे प्राप्त कर निहाल हो जाता है। कवि इसी भावनाको दिखलाता हुआ कहता है—

तुम ज्ञान विभव फूली वसन्त, यह मन मधुकर सुखसो रमन्त।
दिन बडे भये राग भाव, मिथ्यातम रजनीको घटाव॥
तुम ज्ञान विभव फूली वसन्त, यह मन मधुकर सुखसो रमन्त।
वह फूली फैली सुरुचि बेल, ज्ञाता जन समता सग केलि॥
तुम ज्ञान विभव फूली वसन्त, यह मन मधुकर सुखसो रमन्त।
द्यानत वाणी दिक मधुर रूप, सुर नर पशु आनन्द घन स्वरूप॥
तुम ज्ञान विभव फूली वसन्त, यह मन मधुकर सुखसो रमन्त।

कवि हेमविजयने प्रकृतिको सश्लिष्ट ओर सजीव रूप मे चित्रित किया है। कथा प्रवाहकी पूर्व पीठिकाके रूपमे प्रकृति भावोद्दीपनमे कितनी सहायक है यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है। पाठक देखेगे कि इस उदाहरण मे कथा प्रसगको मार्मिक बनानेके लिए अलकार-विधान और उद्दीपन विभावके रूपमे कितना सुन्दर प्रकृतिका चित्रण किया है—

घनघोर घटा उनयी जुनई, इतते उतते चमकी बिजली।
पियुरे-पियुरे पपीहा बिललाती, जुमोर किंगार किरीत मिली॥
बीच बिन्दु परे द्दग ऑसु झरे, पुनि धार अपार इसी निकली।
मुनि हेम के साहिब देखन कूँ, उग्रसेन लली सु अकेली चली॥
कहि राजिमती सुमती सखियान कूँ, एक खिनेक खरी रहु रे।
सखिरी सगरी अँगुरी मुही बाहि करति इसे निहुरे॥
अबही तबही कबही जबही, यदुरावकूँ जाय इसी कहुरे।
मुनि हेमके साहिब नेम जी ही अब तुरन्ते तुम्हकूँ बहुरे॥

कवि आनन्दघनको भी प्रकृतिकी अच्छी परख है। आपने मानव भावोकी अभिव्यक्तिके माध्यमके रूपमे प्रस्तुत प्रतीकोके लिए प्रकृतिका सुन्दर आयोग किया है। ज्ञानरूपी सूर्योदयके होते ही आत्माकी क्या अवस्था हो जाती है कविने इसका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। प्रातःकालको रूपक देकर ज्ञानोदयका कितना मर्म-स्पर्शी चित्रण किया है।

> मेरे घट ज्ञान भाव भयो भोर।
> चेतन चकवा चेतन चकवी, भागौ विरह कौ सोर॥
> फैली चहुँदिशि चतुर भाव रुचि, मिट्यौ भरम तमजोर।
> आपनी चोरी आपहि जानत, औरै कहत न चोर॥
> अमल कमल विकसित भये भूतल, मंद विशद शशि कोर।
> आनन्दघन एक वल्लभ लागत, ओर न लाख किरोर॥

रूपक अलकारके रूपमे कवि भागचन्दने अपने अधिकाश पदोमे प्रकृतिका चित्रण किया है। कविने उपमा और उत्प्रेक्षाकी पुष्टिके लिए प्रकृतिका आश्रय ग्रहण करना उचित समझा है। कुछ ऐसे दृश्य है जिनका मानव जीवनसे घना सम्बन्ध है। कुछ ऐसे भी भाव-चित्र है जो हमारे सामुदायिक उपचेतन मनमे जन्मकालसे ही चले आते है। जिनवाणी, गुरुवाणी, मन्दिर, चैत्य आदि मानवके मनको ही शान्त नहीं करते किन्तु अन्तरग तृप्तिका परम साधन वनते है। प्रत्येक भावुक हृदय-की श्रद्धा-उक्त वस्तुओके प्रति स्वभावत. रहती है। कवि वीतराग वाणी-को गगाका रूपक देकर कहता है—

> साँची तो गंगा यह वीतरागी वाणी,
> अविच्छिन्न धारा निज धर्मकी कहानी।
> जामे अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी,
> जहाँ नहीं संशयादि पंककी निशानी॥
> सप्त भंग जहं तरंग उछलत सुखदानी,
> सन्तचित्त मराल वृन्द रमै नित्य ज्ञानी।

जाकै अवगाहन तै शुद्ध होय प्रानी,
भागचन्द निहचै घटमाहि या प्रमानी ॥

प्रकृतिके अधिक चित्र इनकी कवितामे पाये जाते है। यद्यपि विशुद्ध रूपमे प्रकृतिका चित्रण इनकी कवितामे नही हुआ है फिर भी उपमानोका इतना सुन्दर व्यवहार किया गया है कि जिससे प्रस्तुतकी अभिव्यजनामे चार चॉद लग गये है। वर्षा होनेपर चारो ओर शीतलता छा जाती है। निदाघके आतापसे सन्तप्त मेदिनी शान्त हो जाती है। सूर्य अपना पराजय देखकर ग्लानिके कारण अपना मुँह बादलोमे छिपा लेता है। आकाशमण्डल घन-तिमिरसे आच्छादित हो जाता है। जहॉ तहॉ बिजली चमकती हुई दिखलाई पडती है। नदी नालोमे बाढ आ जाती है। वर्षासे धूल दब जाती है और नवीन धानोके पौधे लहलहाने लगते है। मेदिनी सर्वत्र हरी भरी दिखलाई पडती है। कवि इस रूपक द्वारा जिनवाणीकी महत्ताका रहस्योद्घाटन करता है।

बरसत ज्ञान सुनीर हो, श्रीजिन मुख घन सो।
शीतल होत सुबुद्धमेदिनी, मिटत भवातपपीर ॥
स्याद्वाद नय दामिनी दमकही होत निनाद गम्भीर।
करुणा नदी बहै चहुँदिशि तैं, भरी सो दोई नीर ॥

× × ×

मेघ घटा सम श्री जिनवानी।
स्यात्पद चपला चमक्त जामै, बरसत ज्ञान सुपानी ॥
धर्मसस्य जाते बहु बाढै, शिव आनन्द फलदानी।
मोहन धूल दबी सब यातै, क्रोधानल सुबुझानी ॥

आधुनिक जैन काव्योमे कविताकी पृष्ठभूमिके रूपमे तथा सत्योन्मीलनके रूपमे भी प्रकृतिका चित्रण किया गया है। निराश होनेके पश्चात् सहानुभूतिके रूपमे कोई भी कवि प्रकृतिको पाता है। जैन काव्योमे

प्रकृतिका यह रूप भी पाया जाता है। जीवनकी समस्याओका समाधान प्रकृतिके अचलसे जैन कवियोने ढूँढा है। अत उपयोगितावादी और उपदेशात्मक दोनो ही दृष्टिकोण आधुनिक जैन प्रवन्ध काव्योमे अपनाये गये है। 'वर्द्धमान', 'प्रतिफलन' और 'राजुल' मे भी प्रकृतिके सवेदनशील रूपोकी सुन्दर अभिव्यजना की गई है।

प्रतीक-योजना

कोई भी भावुक कवि तीव्र रसानुभूतिके लिए प्रतीक-योजना करता है। प्रतीक पद्धति भाषाको भाव-प्रवण बनाती ही है, किन्तु भावोकी यथार्थ अभिव्यञ्जना भी करती है। वर्ण्य विषयके गुण या भाव साम्य-रखनेवाले बाह्य चिह्नोको प्रतीक कहते है। मानव-हृदयकी प्रस्तुत भावनाओकी अभिव्यक्तिके लिए साम्यके आधारपर अप्रस्तुत प्राकृतिक प्रतीकोका उपयोग किया जाता है। ये प्रतीक प्रकृतिके क्षेत्रसे चुने हुए होनेके कारण इन्द्रियगम्य होते है और अमूर्त भावनाओकी प्रतीति करानेमे बहुत दूर तक सहायक होते है। वास्तविकता यह है कि जब तक हृदयके अमूर्तभाव अपने अमूर्तरूपमे रहते है, वे इतने सूक्ष्म होते है कि इन्द्रियोके द्वारा उनका सजीव साक्षात्कार नहीं हो सकता है। रससिद्ध कवि प्रतीकोके साँचेमे उन भावनाओको ढालकर मूर्त रूप दे देता है, जिससे इन्द्रियो द्वारा उनका सजीव प्रत्यक्षीकरण होने लगता है। जो अमूर्त भावनाएँ हृदयको स्पर्श नहीं करती थीं, वे ही हृदयपर सर्वाधिक गम्भीर प्रभाव छोडने मे समर्थ होती है।

प्रतीक-योजनाके प्रमुख साधक उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति तथा सारोपा और साध्यावसाना लक्षणा है। सारोपा लक्षणामे उपमान और उपमेय एक समान अधिकरणवाली भूमिकामे उपस्थित रहते है तथा साध्यावसानामे उपमेयका उपमानमे अन्तर्भाव हो जाता है। सादृश्यमूलक सारोपाकी भूमिकापर रूपकालकार द्वारा प्रतीक विधान और सादृश्य-

मूलक साध्यावसानाकी भूमिकापर अतिशयोक्ति अलकार द्वारा प्रतीक-विधान किया जाता है। यह प्रतीक विधान कहीं भावोकी गम्भीरता प्रकट करता है तो कहीं स्वरूपकी स्पष्टता। स्वरूप और भाव दोनोकी विभूति बढानेवाली प्रतीक-योजना ही अमूर्तको मूर्तरूप देकर सूक्ष्म भावनाओका साक्षात्कार करा सकती है।

प्रतीक विधानमे प्रतीककी स्वाभाविक बोधगम्यताका खयाल अवश्य रखना पडता है। ऐसा न होनेसे वह हमारे हृदयके सूक्ष्म रागो एव भावोको उद्दीप्त नहीं कर सकता है। जिस वस्तु, व्यापार या गुणके साहश्यमें जो वस्तु, व्यापार या गुण लाया जाता है उसे उस भावके अनुकूल होना चाहिये। अत' प्रस्तुतकी भावाभिव्यजनाके लिए अप्रस्तुतका प्रयोग रसोद्बोधक या भावोत्तेजक होनेसे ही सच्चा प्रतीक बन सकता है।

भिन्न-भिन्न सस्कृतियोके अनुसार साहित्यमे रसोत्कर्पके लिए कवि भिन्न-भिन्न प्रतीकोका प्रयोग करते है। सभ्यता, शिष्टाचार, आचार-व्यवहार, आत्मदर्शन प्रभृतिके अनुसार ही कलामे प्रतीकोकी उद्भावना की जाती है। हिन्दी जैन काव्योमे उपमानके रूपमे प्रतीकोका अधिक प्रयोग किया गया है। यद्यपि प्रतीक-विधानके लिए साहश्यके आधारकी आवश्यकता नही होती, केवल उसमे भावोद्बोधन या भावप्रवणताकी शक्ति रहनी चाहिये, तो भी प्रभाव साम्यको लेकर ही प्रतीकोकी योजना की जाती है। कोरे साहश्य-मूलक उपमान भावोत्तेजन नही करा सकते है। आकार-प्रकार या नाप-जोखकी सदृशता सामने एक मूर्त्ति ही खडी कर सकती है, पर भावोत्तेजन नहीं। अतएव कवि मार्मिक अन्तर्दृष्टि द्वारा ऐसे प्रतीकोका विधान करता है, जो प्रस्तुतकी भावाभिव्यञ्जना पूर्णरूपसे कर सके।

मनीषियोने भावोत्पादक (Emotional Symbols) और विचारोत्पादक (Intelectual Symbols) ये दो भेद प्रतीकोके किये है। जैनकाव्योमे इन दोनो भेदोमेसे किसी भी भेदके शुद्ध उदाहरण

नहीं मिल सकेंगे। भावोत्पादक प्रतीकोंमें विचारोंका मिश्रण और विचारोत्पादक प्रतीकोंमें भावोंकी स्थिति बनी ही रहती है। विचार और भाव इतने भिन्न भी नहीं हैं, जिससे इन्हें सीमारेखा अंकित कर विभक्त किया जा सके। सुविधाके लिए जैन साहित्यमें प्रयुक्त प्रतीकोंको चार भागोंमें विभक्त किया जाता है—विकार और दुःख विवेचक प्रतीक, आत्मबोधक प्रतीक, शरीरबोधक प्रतीक और गुण और सर्वसुखबोधक प्रतीक। यद्यपि तत्त्वनिरूपण करते समय कुछ ऐसे प्रतीकोंका भी जैन कवियोंने आयोजन किया है, जिनका अन्तर्भाव उक्त चार वर्गोंमें नहीं किया जा सकता है, तो भी भावोत्तेजनमें सहायक उक्त चारों वर्गके प्रतीक ही हैं।

विकार और दुःख विवेचक प्रतीकोंमें प्रधान भुजंग, विष, मतंग, तम, कम्बल, सन्ध्या, रजनी, मधुछत्ता, ऊँट, सीप, सेर, पवन, तुष, लहर, शूल, कुब्जा आदि हैं।

भुजंग[1] प्रतीकका प्रयोग तीन विकारोंको प्रकट करनेके लिए किया है। राग द्वेष भाव कर्मको जिनसे यह आत्मा निरन्तर अपने स्वरूपको विकृत करती रहती है, मिथ्यात्व भावको, जिससे आत्मा अपने स्वरूपको विस्मृत हो, पर भावोंको अपना समझने लगती है और तीव्र विषयाभिलाषाको, जिससे नवीन कर्मोंका अर्जन होता रहता है। ये तीनों ही विकार भाव आत्माकी परतन्त्रताके कारण हैं, सर्पके समान भयंकर और दुखदायी हैं। अतएव सर्प प्रतीक द्वारा इन विकारोंकी भयंकरता अभिव्यक्त की गयी है। इस प्रतीकका प्रयोग संस्कृत और प्राकृत जैन साहित्यमें भी पाया जाता है, किन्तु हिन्दी भाषाके जैन कवियोंने राग-द्वेषकी सूक्ष्म भावनाकी अभिव्यक्ति इस प्रतीक द्वारा की है।

विष[2] प्रतीक विषयाभिलाषाकी भयंकरताका द्योतन करानेके लिए आया है। पंचेन्द्रिय विषयोंकी आधीनता विवेक बुद्धिको समाप्त कर देती

---

१. ब्रह्मविलास पृ० २६८। २. नाटक समयसार पृ० १७, २९, ४८।

है। विष मृत्युका कारण माना जाता है, पर विषयाभिलाषा मृत्युसे भी बढकर है। यह एक जन्मकी ही नहीं किन्तु जन्म जन्मान्तरोकी मृत्युका कारण है। विषयाधीन व्यक्ति ही अपने आचार-विचारसे च्युत होकर आत्मिक गुणोका ह्रास करता है। जिस प्रकार विषका प्रभाव मूर्छा माना है, उसी प्रकार विषयाभिलाषासे भी मूर्छा आती है। विषयाभिलाषाकी मूर्छा स्थायी प्रभाव रखनेवाली होती है, अत. यह आत्मिक गुणोको विशेष रूपसे आच्छादित करती है। कवि बनारसीदास और भैया भगवतीदासने विष प्रतीकका प्रयोग विषयेच्छाके कुप्रभावको अभिव्यक्त करनेके लिए किया है। अपभ्रंश भाषाकी कविताओमे भी यह प्रतीक आया है।

मतंग[१] प्रतीक अज्ञान और अविवेकके भावको व्यक्त करनेके लिए आया है। अज्ञानी व्यक्तिकी क्रियाएँ मदोन्मत्त हाथीके तुल्य ही होती है। जो विषयान्ध हो चुका है, वह व्यक्ति विवेकको खो देता है। कवि दौलतरामने मतग प्रतीकका प्रयोग तीव्र विषयाभिलाषाकी अभिव्यजनाके लिए किया है। पचेन्द्रियके मोहक विषय किसी भी प्राणीके विवेकको आच्छादित करनेमे सक्षम हैं। जो इन विषयोके अधीन रहता है, वह ज्ञानशक्तिके मूर्छित हो जानेसे अज्ञवत् चेष्टाएँ करता है। उसके क्रिया कलाप बहिर्विषयक ही होते है।

तम[२] अज्ञान और मोहका प्रतीक है। जिस प्रकार अन्धकार सघन होता है, दृष्टिको सदोष बनाता है, उसी प्रकार अज्ञान और मोह भी आत्मदृष्टिको सदोष बनाते है। आत्माके अस्तित्वमे दृढ विश्वास न कर अतत्त्वरूप श्रद्धान करना मिथ्यात्व है। इसके प्रभावसे जीवको स्वपरका विवेक नहीं रहता है। इसके दोषोंकी अभिव्यञ्जना कवि द्यानतरायने

---

१ बनारसी-विलास पृ० १४०–१५३। २. ब्रह्मविलास, द्यानत-[illegible]. वृन्दावन-विलास आदि।

तम प्रतीक द्वारा की है। तम प्रतीकका प्रयोग आत्माके मोह, मिथ्यात्व और अज्ञान इन तीनोके भावोकी अभिव्यजनाके लिए किया गया है।

कम्बल[1] प्रतीकका प्रयोग आशा-निराशाकी द्वन्दात्मक अवस्थाके विश्लेषणके लिए किया गया है। यह स्थिति विलक्षण है, इस अवस्थामे मानसिक स्थिति एक भिन्न रूपकी हो जाती है।

सन्ध्याका[2] प्रयोग आन्तरिक वेदना, जो राग-द्वेषके कारण उत्पन्न होती है, की अभिव्यक्तिके लिए किया है। रजनीका प्रयोग निराशा और सयम च्युतिकी अभिव्यक्तिके लिए किया गया है। रजनीमे एकाधिक भावोका मिश्रण है। मोहके कारण व्यक्तिके मनमे अहर्निश अन्धकार विद्यमान रहता है, कवि भूधरदासने इसी भावकी अभिव्यञ्जना रजनी-द्वारा की है।

मधुछत्ता[3] विषयाभिलाषाका प्रतीक है। कञ्चन और कामिनी ऐसे दो पदार्थ है, जिनके प्रलोभनसे कोई भी रागी व्यक्ति अपनेको अछूता नही रख सकता है। तृष्णा और विषयाभिलाषाके उत्तरोत्तर बढनेसे व्यक्ति असयमित हो जाता है, जिससे उसे नाना प्रकारके दुःख उठाने पडते है। इन मनोरम विषयोको प्राप्त करनेकी वाञ्छासे ही जीवनको कुत्सित और नारकीय बनाया जा रहा है।

ऊँट[4] अहकारका प्रतीक है। अहकारके आधीन रहनेसे नम्रता गुण नष्ट हो जाता है, ऐसा कोरा व्यक्ति आत्मविज्ञापन करता है। ऊँट अपनी टेढी गर्दन द्वारा नीचेकी अपेक्षा ऊपरको ही देखता है, इसी प्रकार घमडी व्यक्ति दूसरोके छिद्रोका ही अन्वेषण करता है। उसकी आत्माका मार्दव गुण तिरोहित हो जाता है। उसके आत्मिक गुण भी ऊँटकी गर्दनके समान वक्र ही रहते है।

---

१. नाटक समयसार पृ० २९। २.-३. द्यानत-विलास। ४. दोहा पाहुड दो० १५८।

सीप[1] कामिनीके मोहक रूपके प्रति आसक्तिका प्रतीक है। सीप जैसे जलसे उत्पन्न होती है, और जलमे ही सवर्द्धनको प्राप्त होती है। इसी प्रकार आसक्ति वासना जन्य अनुरक्तिसे उत्पन्न होती है और उसीमे वृद्धिंगत भी। सीपकी रूपाकृति एक विलक्षण प्रकारकी होती है, उसी प्रकार आसक्ति भी चित्र-विचित्रमय होती है।

खैर[2] द्रव्यकर्मोंका प्रतीक है। द्रव्यकर्मोंका सम्बन्ध कैसे होता है ? इनके सयोगसे आत्मा किस प्रकार रक्त-विकृत हो जाती है और कर्मोंके कितने भेद किस प्रकारसे विपच्यमान होते है, आदि अनेक अन्तस्की भावनाओकी अभिव्यञ्जना इस प्रतीकके द्वारा की गयी है।

पंचन[3] विपयका प्रतीक है। पञ्चेन्द्रियोके द्वारा विषय सेवन किया जाता है तथा इसी विषयासक्तिके कारण आत्मा अपने स्वभावसे च्युत है। विभाव परिणतिकी अभिव्यञ्जना भी इस प्रतीक द्वारा कवि मनरगलाल और लालचन्दने की है।

तुप[4] शक्तिका प्रतीक है। यह वह शक्ति है जो आत्मकल्याणसे जीवनको पृथक् करती है, और विषयोके प्रति आसक्ति उत्पन्न करती है।

लहर तृष्णा या इच्छाका प्रतीक है, कवि बनारसीदासने नदीके प्रवाहके प्रतीक-द्वारा आत्म सयोग सहित कर्मकी विभिन्न दशाओंका अच्छा विश्लेषण किया है—

जैसे महीमण्डलमें नदीको प्रवाह एक,
ताहीमें अनेक भाँति नीरकी ढरनि है।
पाथरके जोर तहाँ धारकी मरोर होत,
काँकरकी खानि तहाँ झागकी झरनि है॥
पौनकी झकोर तहाँ चचल तरग उठै,
भूमिकी निचानि तहाँ भौरकी परनि है।

१. दोहा पाहुड दो० १५१। २. दोहा पाहुड दो० १५०। ३ दोहा पाहुड दो० ४५। ४ दोहा पाहुड दो० १५।

तैसो एक आत्मा अनन्त रस पुद्गल,
दोहूके संयोगमे विभावकी भरनि है ॥

यद्यपि यहाँ उदाहरणालकार है, परन्तु कविने नदी-प्रवाहके प्रतीक-द्वारा भावोका उत्कर्ष दिखलानेमें सफलता प्राप्त की है। कवि बनारसी-दासने अपनी प्रतीकोको स्वय स्पष्ट करते हुए लिखा है—

कर्म समुद्र विभाव जल, विषय कषाय तरंग।
बडवानल तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सर्वंग ॥
भरम भवर तासे फिरै, मन जहाज चहुँ ओर।
गिरै, फिरै बूढै तिरै, उदय पवनके जोर ॥

विषयी जीव भ्रमवश ससारके सुखोको उपादेय समझता है। कवि भगवतीदासने प्रतीको-द्वारा इस भावका कितना सुन्दर विश्लेपण किया है—

सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ।
आये धोखे आमके, यापै पूरण इच्छ ॥
यापै पूरण इच्छ वृच्छको भेद न जान्यो।
रहे विषय लपटाय, मुग्धमति भरम भुलान्यो ॥
फलमाँहि निकसे तूल, स्वाद पुन कछू न हूआ।
यहै जगतकी रीति देखि, सेमर सम सूवा ॥

इस पद्यमे सूवा आत्माका प्रतीक, सेमर ससारके कमनीय विषयोका प्रतीक, आम आत्मिक सुखका प्रतीक और तूल सासारिक विषयोकी साररहीनताका प्रतीक है। कविने आत्माको ससारकी रीति नीतिसे पूर्णतया सावधान कर दिया है।

आत्मबोधक प्रतीकोंमे सुवा, हस, शिवनायक प्रतीक प्रधान है। इन प्रतीको द्वारा आत्माके विभिन्न स्वरूपोकी अभिव्यजना की गयी है। सूवा उस आत्माका प्रतीक है, जो विकारो और प्रलोभनोकी ओर आकृष्ट होती है। विषके रमणीय पदार्थ उसके आकर्षणका केन्द्र बनते है, पर

वह उन आकर्षणोंको किसी भी समय ठुकरा कर स्वतन्त्र हो जाती है, और साधना कर निर्वाणको पाती है। कवि बनारसीदास, भगवतीदास, रूपचन्द, बुधजन, भागचन्द, दौलतराम आदि कवियोंने आत्माकी इसी अवस्थाकी अभिव्यंजना सूवा प्रतीक द्वारा की है। कवि द्यानतरायने हंस प्रतीक-द्वारा आत्माको समता गुण ग्रहण करनेका उपदेश दिया है। इस प्रतीकसे आत्माकी उस अवस्थाकी अभिव्यंजना की है, जो अवस्था अणुवेगके धारण करनेसे उत्पन्न होती है। कवि कहता है—

सुनहु हंस यह सीख, सीख मानो सदगुर की।
गुरुकी आन न लोपि, लोपि मिथ्यामति उरकी॥
उरकी समता गहौ, गहौ आतम अनुभौ सुख।
सुख सरूप थिर रहै, रहै जगमें उदास रुख॥

शिवनायक प्रतीक-द्वारा उस शक्तिशाली आत्माका विश्लेषण किया है, जो मिथ्यात्व, राग, द्वेष, मोहके कारण परतन्त्र है। परन्तु अपनी वास्तविकताका परिज्ञान होते ही वह प्रकाशमान हो जाती है। आत्मा अद्भुत शक्तिशाली है, यह स्वभावतः राग, द्वेष, मोहसे रहित है, शुद्ध-बुद्ध और निरंजन है। कवि इसको सम्बोधन कर सुबुद्धि द्वारा कहलाता है—

इक बात कहूँ शिवनायकजी, तुम लायक ठौर कहाँ भटके।
यह कौन विचक्षण रीति गही, विनु देखहि अक्षन सौं अटके॥
अजहूँ गुण मानो तो सीख कहूँ, तुम खोलत क्यों न पटै घटके।
चिन मूरति आप विराजत हो, तिन सूरत देखे सुधा गटके॥

शरीरबोधक प्रतीकोंमें चर्खा, पिंजरा भूसा, काँच और मंजूषा आदि प्रमुख है। ये सभी प्रतीक शरीरकी विभिन्न दशाओंकी अभिव्यंजनाके लिए आये है। कवि भूधरदासने चर्खेके प्रतीक-द्वारा शरीरकी वास्तविक स्थितिका निरूपण करते हुए कहा है—

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना।
पग खूँटे द्वय हालन लागे, उर मदिरा खखराना॥
छीदी हुईं पाँखडी पसली, फिरै नहीं मनमाना।
चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना॥
रसना तकलीने बल खाया, सो अब कैसे खूटे।
सबद सूत सूधा नहीं निकसै, घटी घडी पल टूटे॥
आयु मालका नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहे, वैद बाढई हारे॥
नया चरखला रंगा-चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा बरन गये गुन अगले, अब देखैं नहिं भावै॥
मोटा महीं कातकर भाई, कर अपना सुरझेरा।
अंत आगमें ईंधन होगा, भूधर समझ सबेरा॥

गुण या सुख बोधक प्रतीकोंमें मधु, फूल, पुष्प, किसलय, मोती, ऊषा, अमृत, प्रभात, दीप और प्रकाश प्रमुख हैं। इन प्रतीकों द्वारा सुख और आत्मिक गुणोंकी अनेक तरहसे सुन्दर अभिव्यञ्जना की गयी है।

मधु ऐन्द्रियक सुखकी भावनाको अभिव्यक्त करता है। ऐन्द्रियक सुख क्षणविध्वंसी हैं। जब जीवन उपवनमें वसन्त आता है, उस समय जीवनका प्रत्येक कण सौन्दर्यसे स्नात हो जाता है। उसकी जीवन डाली-पर कोकिल कुहू कुहू करने लगती है। मलयानिलके स्पर्शसे शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है, हृदयमें नवीन अभिलाषाएँ जाग्रत होती हैं। ऐन्द्रियक सुख इस प्राणीको आरम्भमें आनन्दप्रद मालूम पड़ते हैं, परन्तु पीछे दुःख मिश्रित दिखलायी पड़ने लगते हैं। मधु प्रतीक-द्वारा कवि बुधजनने सासारिक विषयेच्छाका सुन्दर विश्लेषण किया है। इस सुखेच्छाकी भावानुभूतिके लिए ही कविने मधु प्रतीकका आयोजन किया है।

फूल हर्ष और आनन्दका प्रतीक है। वासन्ती समीर मनमें राशि-राशि अभिलाषाओंको जाग्रत करता है। हृदयमें स्मृतियाँ, आँखोंमें मधुर

स्वप्न और अन्तरालमें उन्मत्त आकाक्षा युक्त मानव जीवनका मूर्तिमान रूप पुष्प और फल प्रतीक-द्वारा अभिव्यजित किया गया है।

किसलय प्रतीक सासारिक प्रेम, रागमय अनुरक्ति एव मधुर प्रलोभनोंकी अभिव्यक्तिके लिए प्रयुक्त हुआ है। वसन्त ऋतुके आगमनके समय नवीन कोपले निकल आती है, मस्त प्रभात रक्त किसलयोको लेकर मदिर भावोका कूजन करता है। फलत. वासनात्मक प्रेम उत्पन्न होता है। यह अनुरक्ति ससारके विषयोके प्रति सहज होती है।

अमृत आत्मानन्दकी अभिव्यञ्जनाके लिए व्यवहृत हुआ है। अज्ञान, मिथ्यात्व और राग द्वेष-मोहके निकल जानेपर ज्ञानकलिका अपनी पखुडियोंमे विकार और वासनाको बन्द कर लेती है कोयल अपनी नीरवतामें उसके अनन्त सौन्दर्यके दर्शन करती है, रजनीके तारे रात भर उस आत्मानन्दकी बाट जोहते रहते हैं। यह आत्मानन्द भी कषायोदयकी मन्दता, क्षीणता और तीव्रोदयके कारण अनेक रूपोमे व्यक्त होता है। अमृत, प्रदीप और प्रकाश-द्वारा आत्मज्ञान और आत्मानन्दकी अभिव्यञ्जना की गई है।

मोती, प्रभात और ऊषा प्रतीको-द्वारा जीवन और जगत्के शाश्वत सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जना कवियोने की है। भैया भगवतीदासने आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी ओर सकेत करते हुए कहा है—

लाई हौं लालन बाल अमोलक, देखहु तो तुम कैसी बनी है।
ऐसी कहूँ तिहुँ लोकमें सुन्दर, और न नारि अनेक घनी है॥
याही तै तोहि कहूँ नित चेतन, याहुकी प्रीति जो तोसौं सनी है।
तेरी औराधेकी रीझ अनन्त, सो मोपै कहूँ यह जात गनी है॥

प्राचीन जैन कवियोने जीवनके मार्मिक पक्षोके उद्घाटनके लिए अलकार रूपमे ही प्रतीकोकी योजना की है। नवीन कविताओमे वैचित्र्य-प्रदर्शनके लिए भी प्रतीकोका आयोजन किया गया है। अतएव सक्षेपमे

आत्माकी तडपन और उसकी बेचैनीकी अवस्थाका चित्रण महाकवि बनारसीदासने बडे ही मार्मिक शब्दोमे किया है। कवि कहता है—

मै विरहिन पियके अधीन, यो तलफो ज्यो जल बिन मीन।
मेरा मनका प्यारा जो मिले, मेरा सहज सनेही जो मिलै॥

अनुभूतिके दिव्य होने पर जब बहिरुन्मुखी वृत्तियॉ अन्तरुन्मुखी हो जाती है, तो बहिर्जगत्मे कुछ दिखलायी नही पडता, किन्तु आन्तरिक जगत्मे ही दिव्यानुभूति होने लगती है। इसी अवस्थाका चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

बाहिर देखूॅ तो पिय दूर। घट देखें घटमे भरपूर।

जब अनुभव करते-करते लम्बा अरसा बीत गया और आत्मदर्शन नही हुआ तो उसके धैर्यका बॉध टूट गया और मुॅहसे अचानक निकल पडा—

अलख अमूरति वर्णन कोय। कबधौ पियको दर्शन होय॥
सुगम पंथ निकट है ठौर। अन्तर आड विरहकी दौर॥
जहँ देखूँ पियकी उनहार। तन मन सरबस डारो वार॥
होहुँ मगनमे दरशन पाय। ज्यो दरियामे बूँद समाय॥
पियको मिलो अपनपो खोय। ओला गल पानी ज्यो होय॥

चतुर्थ अवस्थामे पहुॅचनेपर, जब कि मोक्षरमासे रमण होने ही वाला है, आत्मानुभूति की निम्न पुकार होने लगती है—

पिय मोरे घट मै पिय माहि, जल तरग ज्यो द्विविधा नाहिं।
पिय मो करता मैं करतूति, पिय ज्ञानी मै ज्ञान विभूति॥
पिय सुख सागर मैं सुख सींव, पिय शिव मंदिर मैं शिव नीव॥
पिय ब्रह्मा मै सरस्वति नाम, पिय माधव मो कमला नाम॥
पिय शकर मैं देवि भवानि, पिय जिनवर मै केवलि बानि॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सिंहावलोकन

हिन्दी-जैन-साहित्यका आरम्भ ७वी शतीसे हुआ है। अपभ्रंश भाषा और पुरानी हिन्दीमे सबसे प्राचीन रचनाएँ जैन-कवियोकी ही उपलब्ध हैं। इन दोनो भाषाओमे विपुल परिमाणमे ग्रन्थोका प्रणयन कर हिन्दी-साहित्यके लिए उपजाऊ क्षेत्र तैयार करना जैन-लेखकोका ही कार्य है। भले ही सकीर्णता और साम्प्रदायिक मोहमे आकर इतिहास निर्माता इस नग्न सत्यको स्वीकार न करे। साहित्यका अनुशीलन पूर्वोक्त प्रकरणोमे किया जा चुका है, अत. यहाँपर समयक्रमानुसार कवियोकी नामावली दी जा रही है।

आठवीं शताब्दीमे स्वयभूदेवने हरिवशपुराण, पउमचरिउ (रामायण) और स्वयम्भू छन्द, दशवीं शताब्दीमे देवसेनने सावयधम्म दोहा, पुप्फदन्तने महापुराण, यशोधर चरित और नागकुमार चरित ; योगीन्द्रदेवने परमात्मप्रकाश दोहा और योगसार दोहा , रामसिह मुनिने दोहापाहुड एव धनपाल कविने भविसयत्तकहा लिखी है। ग्यारहवी शताब्दीमें कनकामर मुनिने करकण्डु चरित , जिनदत्तसूरिने चाचरि, उपदेश रसायन और कालस्वरूप कुलक रचे है। बारहवीं शताब्दीमे हेमचन्द्रसूरिने प्राकृत व्याकरण, छन्दोनुशासन, और देशीनाममाला आदि, हरिभद्र-सूरिने नेमिनाथ चरित, शालिभद्र सूरिने बाहुबलिरास, सोमप्रभने कुमार-पाल प्रतिबोध, जिनपद्म सूरिने स्थूलभद्र फाग और विनयचन्द्र सूरिने नेमिनाथ चतुष्पदिकाकी रचना की है।

१३ वीं शताब्दीमे रासा ग्रन्थ और कथात्मक चउपई ग्रन्थ रचे

गये है। इस शताब्दीके रचयिताओपर अपभ्रंशका पूरा प्रभाव है। अनेक कवियोने अपभ्रंश भाषामे भी काव्यग्रन्थोकी रचना की है। यो तो अपभ्रंश साहित्यकी परम्परा १७वी शती तक चलती रही, पर इस शताब्दीके जैन रचयिताओने हिन्दी भाषामे काव्य लिखना आरम्भ कर दिया था। विषयकी दृष्टिसे इस शतीके काव्योमे हिंसापर अहिंसाकी और दानवतापर मानवताकी विजय दिखलानेके लिए पौराणिक चरितोंके रंग भरकर महापुरुषोके चरित वर्णित किये गये है। कलाकारोने काव्यकलाको रस, अलंकार और सुन्दर लयपूर्ण छन्द तथा कवित्तो-द्वारा अलंकृत किया है। अपभ्रंशके कलाकारोमे लक्खण कविका अणुव्रतरत्नप्रदीप, अम्बदेव सूरिका समररास, और राजशेखर सूरिका उपदेशामृत तरंगिणी और नेमिनाथ फाग प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ है।

हिन्दी भाषाके काव्योमे जम्बूस्वामी रासा, रेवतगिरि रासा, नेमिनाथ चउपई, उपदेशमाला कथानक छप्पय आदि काव्य प्रमुख है। यद्यपि इन ग्रन्थोमे काव्यत्व अल्प परिमाणमे और चरित्र तथा नीति अधिक परिमाणमे है, तो भी हिन्दी काव्य साहित्यके विकासको अवगत करनेके लिए इनका अत्यधिक महत्त्व है।

१४ वी शताब्दीमे मानवके आचारको उन्नत और व्यापक बनानेके लिए सप्तक्षेत्र रास, संघपति समरा रास और कच्छुलि रासा प्रभृति प्रमुख रचनाएँ लिखी गयी है।

१५ वी शताब्दीमे भट्टारक सकलकीर्त्तिने आराधनासार प्रतिबोध, विजयभद्र या उदवन्तने गौतम रासा, जिनउदय गुरुके शिष्य और ठक्कर माल्हेके पुत्र विद्धणू ने ज्ञानपंचमी चउपई और दयासागर सूरिने धर्मदत्त चरित्र रचा है। अपभ्रंश भाषामे महाकवि रइधूने पार्श्वपुराण, मेहेसर चरित्र, सम्यक्त्वगुणनिधान, सुकौशलचरित, करकण्डुचरित, उपदेशरत्नमाला, आत्मसम्बोध काव्य, पुण्यास्रवकथा और सम्यक्त्वकौमुदीकी रचना की है। काव्यकी दृष्टिसे रइधूके ग्रन्थ उच्चकोटिके हैं।

१६ वीं शताब्दीमे ब्रह्म जिनदास युगप्रवर्तक ही नही, युगान्तरकारी कवि हुए है। इन्होने आदिपुराण, श्रेणिक चरित, सम्यत्तवरास, यशोधर रास, धनपालरास, • व्रतकथाकोश, दशलक्षणव्रत कथा, सोलह कारण, चन्दनषष्ठी, मोक्षसप्तमी, निर्दोष सप्तमी आदि मानवताके प्रतिष्ठापक ग्रन्थ रचे। इसी शताब्दीमे चतुरुमल्ने नेमीश्वर गीत बनाया और धर्मदासने धर्मोपदेश श्रावकाचार रचा।

हिन्दी जैन काव्यके विकासके लिए सत्रहवी शताब्दी विशेष महत्त्व की है। इस शतीमे गद्य और पद्य दोनोमे साहित्य लिखा गया। महाकवि बनारसीदास, रूपचन्द और रायमल जैसे श्रेष्ठ कवियोको उत्पन्न करनेका गौरव इसी शतीको है। इनके अतिरिक्त त्रिभुवनदास, हेमविजय, कुँवरपाल और उदयराजपतिकी रचनाएँ भी कम गौरवपूर्ण नही है। गद्य लेखकोमे पाण्डे राजमल्ल एव अखराजकी रचनाएँ प्रमुख मानी जाती है। राजभूषणने लोक निराकरण रास, ब्रह्मवस्तुने पार्श्वनाथ रासो, मुनिकल्याण कीर्तिने होलीप्रबन्ध, नयनसुखने मेघमहोत्सव, हरिकलशने हरिकलश, रूपचन्दने परमार्थ दोहा शतक, परमार्थगीत, पद सग्रह, गीत परमार्थी, पञ्चमगल, नेमिनाथ रासो, रायमल्ने हनुमन्त कथा, प्रद्युम्न चरित, सुदर्शन रासो, निर्दोष सप्तमीव्रत कथा, नेमीश्वर रासो, श्रीपाल रासो, भविष्यदत्त कथा, त्रिभुवनचन्द्रने अनित्यपञ्चाशत्, प्रास्ताविक दोहे, षट्द्रव्य वर्णन और फुटकर कवित्त, बनारसीदासने बनारसीविलास, नाटक समयसार, अर्द्धकथानक और नाममाला, कल्याणदेवने देवराज वच्छराज चउपई, मालदेवने भोजप्रबन्ध, पुरन्दरकुमार चउपई, पाण्डे जिनदासने जम्बूचरित्र, ज्ञानसूर्योदय, पाण्डे हेमराजने प्रवचनसार टीका, पचास्तिकाय टीका और भाषा भक्तामर, विद्याकमलने भगवती गीता, मुनिलावण्यने रावण-मन्दोदरी सवाद, गुणसूरिने ढोला सागर, लूणसागरने अञ्जनासुन्दरी सवाद, मानशिवने भाषा कवि रस मजरी, केशव-

टासने जन्मप्रकाशिका, जटमल्ने बावनी गोरा बादलकी बात, प्रेम विलास चउपई एव हसराजने हसराज नामक ग्रन्थ लिखा है।

१८ वी शताब्दीमें हेमने छन्द मालिका, केसरकीर्त्तिने नामरत्नाकर, विनयसागरने अनेकार्थनाममाला, कुअरकुशाल्ने लखपत जयसिन्धु, मानने सयोग द्वात्रिंशिका, कवि विनोदने फुटकर पद्य, उदयचन्द्रने अनूप-रसाल, उदयराजने वैद्य विरहणि प्रवन्ध, मानसिंह विजयगच्छने राजविलास. सुबुद्धविजयने प्रतापसिंहका गुण वर्णन; जगरूपने भावदेव सूरिरास, लक्ष्मी-वल्लभने कालज्ञान; धर्मसीने उभ क्रिया, समरथने रसमजरी, रामचन्द्रने रामविनोद, दीपचन्द्रने वैद्यसार बालतन्त्रकी भाषा वचनिका , जयधर्मने शकुन प्रदीप, रामचन्द्रने सामुद्रिक भाषा, नगराजने सामुद्रिक भाषा; लालचन्द्रने स्वरोदय भाषा टीका, रत्नशेखरने रत्नपरीक्षा, लक्ष्मीचन्द्रने आगरा गजल, खेत्तल्ने उदयपुर गजल और चित्तौड गजल, मनरूप विजयने जूनागढ़ वर्णन, उदयचन्द्रने बीकानेर गजल; दुर्गादासने मरोट, किसनने कृष्णा बावनी; केशवने केशव बावनी, जिनहर्षने जसराज बावनी और लक्ष्मीवल्लभने हेमराजबावनी नामक ग्रन्थ लिखे।

इसी शताब्दीमें जिनहर्षने उपदेशछत्तीसी सवैया, भैया भगवतीदासने ब्रह्मविलास; द्यानतरायने उपदेशशतक, अक्षरी बावनी, धर्मविलास और आगमविलास , पण्डित शिरोमणिदासने धर्मसार , बुलाकीदासने महा-भारत और प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, पण्डित श्यामलाल्ने सामायिक पाठ ; विनोदीलाल्ने श्रीपालचरित्र ; पण्डित लक्ष्मीदासने यशोधरचरित्र और धर्मप्रबोध , पंडित शिवलाल्ने चर्चासागर ; भूधरदासने जैनशतक, पार्श्वपुराण और पदसग्रह ; आनन्दघनने आनन्दबहत्तरी; यशोविजयने जसविलास , विनयविजयने विनयविलास, किसनसिंहने क्रियाकोश, भद्र-बाहुचरित्र और रात्रिभोजन कथा ; मनोहरलाल्ने धर्मपरीक्षा, जोधराज गोदीकाने सम्यक्त्वकौमुदी, खुशालचन्द्र कालाने हरिवंशपुराण, पद्मपुराण और उत्तरपुराण; रूपचन्द्रने नाटक समयसारकी टीका, प० दौलतरामने

परमानन्दविलास, प्रवचनसार, चिद्विलास वचनिका और चौवीसी पाठ ; भारामल्लने चारुदत्तचरित्र , सप्तव्यसन चरित्र, दानकथा, शीलकथा, और रात्रिभोजनकथा, गुलाबरायने शिखिरविलास , थानसिहने सुबुद्धि-प्रकाश , नन्दलाल छावडाने मूलाचारकी वचनिका , मन्नालाल सागाकर ने चरित्रसारकी वचनिका, मनरङ्गलालने चौबीसी पूजापाठ, नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसन चरित्र, सप्तऋपिपूजा, षट्कर्मोपदेश रत्नमाला, वरागचरित्र, विमलनाथपुराण, शिखिरविलास, सम्यक्त्वकौमुदी, आगमशतक और अनेक पूजा ग्रन्थ, चेतनविजयने लघुपिंगल, आत्मबोध और नाममाला, मेघराजने छन्दप्रकाश, उदयचन्दने छन्द प्रबन्ध, उत्तमचन्दने अलकार आशय भडारी, क्षमाकल्याणने अवड चरित्र और जम्बूकथा; ज्ञानसागरने माला पिगल, कामोद्दीपन, पूरबदेश वर्णन, चन्द चौपाई समालोचना और निहाल वावनी, मूलकचन्दने वैद्य-हुलास , मेघने मेघविनोद और मेघमाला, गगारामने लोलिब राजभापा, सूरतप्रकाश और भावनिदान, चैनसुखदासने शतश्लोकीकी भापा टीका, रामचन्द्रने अवपदिशा शकुना-वली, तत्त्वकुमारने रत्न परीक्षा, गुरुविजयने कापरडा, कल्याणने गिरनार सिद्धाचल गजल, भक्ति विजयने भावनगर वर्णन गजल, मनरूपने मेडता वर्णन, पोरबन्दर और सोजात वर्णन रघुपतिने जैनसार वावनी, निहालने ब्रह्मबावनी, चेतनने अध्यात्म बाराखडी, सेवाराम शाहने चौबीसी पूजा-पाठ, यति कुशलचन्द्र गणिने जिनवाणी सार, हरजसरायने साधु गुणमाला और देवाधिदेवस्तवन, क्षमाकल्याण पाठकने साधु प्रतिक्रमण विधि और श्रावकप्रतिक्रमण विधि एव विजयकीर्त्तिने श्रेणिकचरित्रकी रचना की है।

विक्रमकी २० वी शतीके आरम्भमे एवं ई० सन् की १९वी शती-के अन्तमे प० सदासुखने रत्नकरण्डश्रावकाचारकी टीका, अर्थप्रकाशिका, समयसारकी टीका, नित्य पूजाकी टीका और अकलकाष्टककी टीका, भागचन्दने ज्ञानसूर्योदय, उपदेश सिद्धान्तरत्नमाला, अमितगतिश्रावका-चार टीका, प्रमाण परीक्षा टीका और नेमिनाथ पुराण; दौलतरामने

कायवाला; मुनि आत्मारामने जैन तत्त्वादर्श, तत्त्वनिर्णय प्रासाद और अज्ञानतिमिर भास्कर; मुनि श्रीपालचन्द्रने सम्प्रदाय शिक्षा, चम्पारामने गौतम परीक्षा, वसुनन्दी श्रावकाचार टीका, चर्चासागर और योगसार; कृपाविदने द्वादशानुप्रेक्षा, मनमोहन पञ्चासिका, ज्ञानप्रकाश और शिक्षा प्रकाश, जौहरीलालने पद्मनन्दिपञ्चविंशतिकाकी टीका; नन्दरामने योगसार वचनिका, यशोधरचरित और त्रिलोकसारपूजा, नाथूराम दोशीने सुकुमाल चरित, सिद्धिप्रिय स्तोत्र, श्रीपाल चरित, रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका, समाधितन्त्र टीका, दर्शनसार और परमात्मप्रकाश टीका पन्नालालने विद्वज्जनबोधक और उत्तर पुराण वचनिका; पारसदासने ज्ञानसूर्योदय और सार चतुर्विंशतिकाकी वचनिका; फतेलालने विवाह पद्धति, दशावतार नाटक, राजवार्तिकालंकार टीका, रत्नकरण्ड टीका, तत्त्वार्थसूत्र टीका और न्यायदीपिका वचनिका, बख्तावरमल रतनलालने जिनदत्त चरित, नेमिनाथ पुराण, चन्द्रप्रभ पुराण, भविष्यदत्त चरित्र प्रीतिंकर चरित, प्रद्युम्नचरित, व्रतकथाकोश और अनेक पूजाएँ, चिदानन्दने सवैया बावनी और स्वरोदय; मन्नालाल बैनाडाने प्रद्युम्न चरित्र वचनिका, महानन्दने महापुराण और सामायिक पाठ, मिहिरचन्दने सज्जनचित्तवल्लभ पद्यानुवाद, हीराचन्द अमोलकने पञ्चपूजा, शिवचन्दने नीतिवाक्यामृत टीका, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार और तत्त्वार्थकी वचनिका, शिवजीलालने रत्नकरण्डवचनिका, चर्चासार, बोधसार, अध्यात्मतरंगिणी एवं स्वरूपचन्दने मदनपराजय वचनिका और त्रिलोकसार टीका आदि ग्रन्थोंकी रचना की है।

ईस्वी सन् की २०वीं शतीमें गुरु गोपालदास बरैया, बा० जैनेन्द्रकिशोर, जवाहरलाल वैद्य, महात्मा भगवानदीन, बा० सूरजभानु वकील, पं० पन्नालाल बाकलीवाल, पं० नाथूराम प्रेमी, पं० जुगलकिशोर मुख्तार, सत्यभक्त पं० दरबारीलाल, अर्जुनलाल सेठी, लाला मुन्शीलालजी, बाबू दयाचन्द गोयलीय, मि० वाडीलाल मोतीलाल शाह, ब्र० शीतलप्रसाद,

मुनि जिनविजय, बाबू माणिकचन्द, बाबू कन्हैयालाल, प० दरयावसिंह सोधिया, खूबचन्द सोधिया, निहालकरण सेठी, प० खूबचन्द शास्त्री, प० मनोहरलाल शास्त्री, प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, प० फूलचन्द्र शास्त्री, प० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, मुनि शान्तिविजय, मुनि कल्याणविजय, लाला न्यामतसिंह, स्व० भगवत्स्वरूप भगवत, कवि गुणभद्र आगास, कवि कल्याणकुमार 'शशि', कृष्णचन्द्राचार्य, मुनि कन्तिसागर, अगरचन्द्र नाहटा, वीरेन्द्रकुमार एम०ए०, प० लालाराम शास्त्री, प० मक्खनलाल शास्त्री, कविवर चैनसुखदास न्यायतीर्थ, प० अजितकुमार शास्त्री, प० हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री, प्रो० हीरालाल, एम० ए०, पी०एच०डी०, प० के० भुजवली शास्त्री, प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य, प० सुखलाल सघवी, प० अयोध्याप्रसाद गोयलीय, वा० लक्ष्मीचन्दजी, प० चन्दाबाई, प० बालचन्द्र एम० ए०, प्रो० गो० खुशालचन्द्र जैन एम०ए०, प० दरबारीलाल न्यायाचार्य, प्रो० देवेन्द्रकुमार, कवि पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रो० दलसुख मालवणिया, प० बालचन्द्र शास्त्री, बा० छोटेलाल एम० आर० ए० एस, प० परमानन्द शास्त्री, श्री महेन्द्र राजा एम० ए०, पृथ्वीराज एम० ए०, प० बलभद्र न्यायतीर्थ, डा० नथमल टाटिया, श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, कवि तन्मय बुखारिया, कवि हरिप्रसाद 'हरि', भँवरलाल नाहटा, कवि 'सुधेश' आदि साहित्यकार उल्लेख योग्य है। इस प्रकार हिन्दी जैन साहित्य निरन्तर समृद्धिशाली होता जा रहा है।

परिशिष्ट

कतिपय ग्रन्थरचयिताओंका संक्षिप्त परिचय

धर्मसूरि—इनके गुरुका नाम महेन्द्रसूरि था। इन्होंने संवत १२६६ में जम्बूस्वामी रासाकी रचना की है। इस ग्रन्थकी भाषा गुजरातीसे प्रभावित हिन्दी है। प्रबन्धकाव्यके निर्माणकी शक्ति कविमें विद्यमान है। जम्बूस्वामीरासाकी भाषाका नमूना निम्न प्रकार है।

जिण चउवित्स पय नमेवि गुरुचरण नमेवि ।
जम्बूस्वामिहिं तणूं चरिय भविउ निसुणेवि ॥
करि सानिध सरस्सति देवि जीयरयं कहाणउ ।
जबू स्वामिहिं (सु) गुणगहण संखेवि वखाणउ ॥
जंबुदीवि सिरि भरहखित्ति तिहि नयर पहाणउ ।
राजगृह नामेण नयर पहुवी वक्खाणउ ॥

विजयसेन सूरि—इनके शिष्य वस्तुपालमन्त्री थे। वस्तुपालने संवत् १२८८ के लगभग गिरनारका संघ निकाला था। विजयसेन सूरिने रेवन्त गिरिरासाकी रचना इस यात्रा तथा इस यात्रामें गिरिनार पर किये गये जीर्णोद्धारका लेखाजोखा प्रस्तुत करनेके लिए की है। इस ग्रन्थकी भाषा पुरानी हिन्दी है, पर गुजरातीका प्रभाव स्पष्ट है। नमूना निम्न प्रकार है—

परमेसर तित्थेसरह पयपंकज पणमेवि ।
भणिसु रास रेवंतगिरि-अंबिकदिवि सुमरेवि ॥
गामागर-पुर-वण गहण सरि-सरवरि-सुपएसु ।
देवभूमि दिसि पच्छिमह मणहरु सोरठ देसु ॥

विनयचन्द्र सूरि—संस्कृत और प्राकृत भाषाके मर्मज्ञ विद्वान्

कवि विनयचन्द्रसूरि है। इनका समय विक्रम सवत्की तेरहवी शती है। इनके गुरु रत्नसिह थे। कवि विनयचन्द्र सस्कृत, प्राकृत और हिन्दी इन तीनो ही भाषाओमे कविता करते थे। आपके द्वारा हिन्दी भाषामे 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' नामक ४० पद्योका एक छोटा-सा ग्रन्थ तथा उपदेशमाला कथानक छप्पय ८१ पद्योका ग्रन्थ उपलब्ध है। नेमिनाथ चउपईमे प्रारम्भकी कुछ चौपाइयॉ निम्न प्रकार है—

सोहग सुंदरु घण लावन्नु, सुमरवि सामिउ सामलवन्नु।
सखिपति राजल चढि उत्तरिय, बार मास सुणि जिम वज्जरिय ॥१॥
नेमिकुमर सुमरवि गिरनार, सिद्धी राजल कन्न कुमारि।
श्रावणि सरवणि कडुए मेहु, गज्जइ विरहि रिझिज्जइ देहु ॥
विज्जु झवक्कइ रक्खसि जेव, नेमिहि विणु सहि सहियइ केव।
सखी भणइ सामिणि मन झूरि, दुज्जण तणा मनवछित पूरि ॥
गयेउ नेमि तउ विनठउ काइ, अछइ अनेरा वरह सयाइ।

अम्बदेव—यह नगेन्द्रगच्छके आचार्य पासड सूरिके शिष्य थे। इन्होने सवत् १३७१ मे सघपति समरारास नामक ग्रन्थ लिखा है। अणहिल्लपुर पट्टनके ओसवाल शाह समरासघपतिने सवत् १३७१ मे शत्रुञ्जयतीर्थका उद्धार अपार धन व्यय करके कराया था। कविने इसी इतिवृत्तको लेकर इस रास ग्रन्थकी रचना की है। भाषा राजस्थानीका परिष्कृतरूप है। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

वाजिय सख असंख नादि काहल दुडुदुडिया।
घोडे चडइ सल्लारसार राउत सीगडिया ॥
तउ देवालउ जोत्रिवेगि घाघरि खु झमक्कइ।
समविसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ॥

जिनपद्मसूरि—इनके पिताका नाम आवाशाह और पितामहका नाम लक्ष्मीधर था। यह खीमड कुलमे उत्पन्न हुए थे। सवत् १३८९ मे

ज्येष्ठ शुक्लाष्टमी सोमवारको ध्वजा, पताका, तोरण, वन्दन मालादिसे अलकृत आदीश्वर जिनालयमे नान्दिस्थापन विधि सहित श्री सरस्वती-कण्ठाभरण तरुण प्रभाचार्यने खरतरगच्छीय जिनकुशल सूरिके पदपर इन्हे प्रतिष्ठित किया था। शाह हरिपालने सघभक्ति और गुरुभक्तिके साथ इन्हे युगप्रधानपद बडे उत्सवके साथ प्रदान किया था। इन्हीं आचार्यने थूलिभद्रफागु चैत्रमहीनेमे फाग खेलनेके लिए रचा है। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

ऊह सोहग सुन्दर रूपवंतु गुणमणि भंडारो।
कंचण जिम झलकंत कंति सजम सिरिहारो॥
थूलिभद्र मुणिराउ जाम महियली बोहतउ।
नयरराय पाडलियमॉहि पहूतउ विहरतउ॥

विजयभद्र—इनका अपर नाम उदयवन्त भी मिलता है। इन्होने सवत् १४१२ मे गौतमरास नामक ग्रन्थ रचा है। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

जवूदीवि सिरभरहखित्ति खोणीतलमंडणु।
मगधदेस सेविय नरेस रिउ-दल-बल खंडणु॥
धणवर गुव्वर नाम गामु जहिं गुणगण सज्जा।
णिप्पु वसे वसुभूइ तत्थ जसु पुहवी भज्जा॥

ईश्वरसूरि—ईश्वरसूरिके गुरुका नाम शान्तिसूरि था। इन्होने माडलगढके बादशाह गयासुद्दीनके पुत्र नासिरुद्दीनके समय—वि० स० १५५५—१५६९ मे पुज मन्त्रीकी प्रार्थनासे स० १५६१ मे ललितागचरित्रकी रचना की है। इनकी भाषा प्राकृत और अपभ्रंश मिश्रित है। कविताका नमूना निम्न है—

महिमहति मालवदेस, धण कणयलच्छि निवेस।
तिहँ नयर मँडवदुग्ग, महिनवउ जाण कि सग्ग॥

तिहँ अतुलबल गुणवंत, श्रीग्यासमुत जयवंत।
समरत्थ साहसधीर, श्रीपातसाह निसीर॥

संवेगसुन्दर उपाध्याय—इनके गुरुका नाम जयसुन्दर था तथा यह वडतपगच्छके अनुयायी थे। इन्होने सवत् १५४८ मे 'साराविखा-चनरासा' नामक उपदेशात्मक ग्रन्थकी रचना की है। इस ग्रन्थमे आचारात्मक विपय निरूपित है।

महाकवि रइधू—इनके पितामहका नाम देवराय और पिताका नाम हरिसिह तथा माताका नाम विजयश्री था। यह पद्मावती पुरवाल जातिके थे। ये गृहस्थ विद्वान् थे। कविकुल तिलक, सुकवि इत्यादि इनके विशेपण है। ये प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इन्होने अपने जीवनकालमे अनेक मूर्तियोकी प्रतिष्ठाएँ कराई थी। इनके दो भाई थे—बाहोल और माहणसिह। इनके दो गुरु थे—ब्रह्मश्रीपाल और भट्टारक यशःकीर्ति। भट्टारकजीके आशीर्वादसे इनमे कवित्व शक्तिका स्फुरण हुआ था तथा ब्रह्मश्रीपाल्से विद्याध्ययन किया था। कविवर रइधू ग्वालियरके निवासी थे। इनके समकालीन राजा डूँगरसिह, कीर्त्तिसिह, भट्टारक गुणकीर्ति, भट्टारक यशःकीर्ति, भट्टारक मलयकीर्ति और भट्टारक गुणभद्र थे।

इनका समय १५ वी शतीका उत्तरार्द्ध और १६ वी शतीका पूर्वार्ध है। इन्होने अपनी समस्त रचनाएँ ग्वालियरके तोमरवशी नरेश डूँगरसिह और उनके पुत्र कीर्तिसिहके शासनकालमे लिखी है। इन दोनो नरेशोका शासनकाल वि० स० १४८१ से वि० स० १५३६ तक माना जाता है। कविने 'सम्यक्त्वगुणनिधान'का समाप्तिकाल वि० स० १४९२ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा मगलवार दिया है। इस ग्रन्थको कविने तीन महीनोमे लिखा था। सुकौशलचरितका समाप्तिकाल वि० स० १४९६ माघ कृष्ण दशमी बताया गया है।

महाकवि रइधू अपभ्रश भाषाके रससिद्ध कवि है। आपकी रचनाओमे कविताके सभी सिद्धान्त सन्निहित है। आपकी कृतियोकी एक

विशेषता यह भी है कि इनमे काव्यके साथ प्रशस्तियोंमे इतिहास भी अंकित किया गया है। आपने अपनी रचनाएँ प्रायः ग्वालियर, दिल्ली और हिसारके आस पासमे लिखी है। अत. उत्तर भारतकी जैन जनताका तत्कालीन इतिवृत्त इनमे पूर्णरूपसे विद्यमान है। हरिवंश पुराणकी आद्य प्रशस्तिमे बताया गया है कि उस समय सोनागिरिमे भट्टारक शुभचन्द्र पदारूढ हुए थे। इससे अनुमान किया जाता है कि ग्वालियर भट्टारकीय गद्दीका एक पट्ट सोनागिरिमे भी था। 'सम्मइजिनचरिउ'की प्रशस्तिमे आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभकी विशालमूर्तिके निर्माण किये जानेका उल्लेख है। पंक्तियाँ निम्न प्रकार हे .—

तातम्मि खणि वंभवय भार भारेण
सिरि अयखालंक वसम्मि सारेण।
ससारतणु-भोय-णिव्विण चित्तेण
वर धम्म झाणामएणेव तित्तेण।
खेल्हाहिहाणेण णमिऊण गुरुतेण
जसकित्ति विणयत्तु मंडिय गुणोहेण।
भो मयण दावग्गि उल्हवण णणदाण
ससारजलरासि उत्तार वर जाण।
तुम्हह पसाएण भव दुह-कयंतस्स
ससिपह जिणेदस्स पडिमा विसुद्धस्स।
काराविया मइजि गोपायले तुग
उड्डुचावि णामेण तित्थम्मि सुइ सग।

यशोधरचरित और पुण्यास्रव कथाकोशकी प्रशस्तिमे भी अनेक ऐतिहासिक उल्लेख है। कविने अपनी रचनाओंमे तत्कालीन जैन समाज का मानचित्र दिखलानेका आयास किया है। इनकी निम्न रचनाएँ प्रसिद्ध है .—

सम्यक्त्वजिनचरित, मेवेश्वरचरित, त्रिषष्टिमहापुराण, सिद्धचक्रविधि,

बलभद्रचरित, सुदर्शनशीलकथा, धन्यकुमारचरित, हरिवंशपुराण, सुकौशलचरित, करकण्डुचरित, सिद्धान्ततर्कसार, उपदेशरतमाला, आत्मसम्बोधकाव्य, पुण्यास्रवकथा, सम्यक्त्वकौमुदी तथा पूजनोंकी जयमालाएँ। इन्होने इतना अधिक साहित्य रचा है, कि उसके प्रकाशनमात्रसे अपभ्रंश साहित्यका भाण्डार भरा-पूरा दिखलायी पड़ेगा।

रूपचन्द—कवि रूपचन्दजी आगराके निवासी थे। ये महाकवि बनारसीदासके समकालीन है। यह रससिद्ध कवि है। इनकी रचनाएँ परमार्थ दोहा शतक, परमार्थ गीत, पदसग्रह, गीतपरमार्थी, पचमगल एव नेमिनाथरासो उपलब्ध है। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

अपनो पद न विचारके, अहो जगतके राय।
भववन छायक हो रहे, शिवपुर सुधि विसराय॥
भववन भरमत ही तुम्हे, बीतो काल अनादि।
अब किन घरहिं सँवारई, कत दुख देखत बादि॥
परम अतीन्द्रिय सुख सुनो, तुमहि गयो सुलझाय।
किञ्चित इन्द्रिय सुख लगे, विषयन रहे लुभाय॥
विषयन सेवते भये, तृष्णा ते न बुझाय।
ज्यों जल खारा पीवते, बाढे तृषाधिकाय॥

पाण्डे रूपचन्द—इन्होने सोनगिरिमे जगन्नाथ श्रावकके अध्ययनके लिए कवि बनारसीदासके नाटक समयसारपर हिन्दीटीका सवत् १७२१मे लिखी है। ग्रन्थकी भाषा सुन्दर और प्रौढ है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिसे अवगत है कि यह अच्छे कवि थे। इनकी कविताका नमूना निम्न है—

पृथ्वीपति विक्रमके राज मरजाद लीन्हें,
सत्रह सै वीते परिठांनु आप रसमैं।

आसू मास आदि धौसु संपूरन ग्रन्थ कीन्हौ,
वारतिक करिकै उदार ससि मैं ।
जो पै यहु भाषा ग्रन्थ सबद सुबोध या कौ,
ठौह बिनु सम्प्रदाय नवै तत्त्व बस मै ।
यातैं ग्यानलाभ जाँति संवनिको वैन मानि,
वात रूप ग्रन्थ लिखे महाशान्त रस मै ॥१॥

राजमल्ल—हिन्दी जैन गद्य लेखकोमेसे सबसे प्राचीन गद्य-लेखक राजमल्ल है। इन्होने सवत् १६००के आसपास समयसारकी हिन्दी टीका लिखी थी। इनकी इस टीकासे ही समयसार अध्ययन-अध्यापनका विषय बना था। महाकवि बनारसीदासको इन्हीकी टीकाके आधारपर नाटक समयसार लिखनेकी प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

पाण्डे जिनदास—इन्होने ब्रह्म शान्तिदासके पास शिक्षा प्राप्त की थी। यह मथुराके निवासी थे। इन्होने सवत् १६४२ मे जम्बूस्वामी चरित्रको समाप्त किया था। इनकी एक अन्य रचना जोगीरासो भी उपलब्ध है। कविताका नमूना निम्न है—

अकबर पातसाह के राज, कीनी कथा धर्मके काज।
भूल्यो बिछूहो अच्छर जहाँ, पंडित गुनी सवारो तहाँ॥
करै धर्म सो टीका साह, टोडर सुत आगरै सनाहु॥

कुँवरपाल—महाकवि बनारसीदासके घनिष्ठ मित्रोमे इनका स्थान था। युक्ति-प्रबोधमे बताया गया है कि बनारसीदासने अपनी शैलीका उत्तराधिकार इन्हीको सौंपा था। पाडे हेमराजकी प्रवचनसार टीकामे इनको अच्छा ज्ञाता बतलाया गया है। बनारसीदासकी सूक्तिमुक्तावलीमे जो इनके पद्य दिये गये है, उनके आधारपर इन्हे अच्छा कवि कहा जा सकता है।

परम धरम वन दहै, दुरित अवर गति धारहि।
कुयश धूम उदगरै, भूरिभय भस्म विथारहि॥

दुखफुलिंग फुंकरै, तरल तृष्णा कल काढहि।
धन ईंधन आगम संजोग, दिन-दिन अति वाढ़हिं॥
लहलहै लोभ पावक प्रबल, पवन मोह उद्धत वहै।
दज्झहि उदारता आदि बहु, गुणपतंग कुँवरा कहै॥

पाण्डे हेमराज—वचनिकाकारोमे पाण्डे हेमराजका नाम आदरके साथ लिया जाता है। इनका समय सत्रहवी शतीका अन्तभाग और अठारहवी शतीका आरम्भिक भाग है। यह पण्डित रूपचन्दजीके शिष्य थे। इनकी पॉच वचनिकाएँ और एक छन्दोवद्ध रचना उपलब्ध है। वचनिकाओमे प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकायटीका, भाषाभक्तामर, नयचक्रकी वचनिका और गोम्मटसार वचनिका है। 'चौरासीबोल' छन्दोबद्ध काव्य है। पाण्डे हेमराज श्रेष्ठ कवि थे। इन्होने शार्दूल-विक्रीडित, छप्पय और सवैया छन्दोमे सुन्दर भावोको अभिव्यक्त किया है। इनके गद्यका उदाहरण निम्न है—

"ऐसे नाही कि कोइ कालद्रव्य परिणाम बिना होहि जातैं परिणाम विना द्रव्य गदहेके सींग समान है, जैसे गोरसके परिणाम दूध, दही, घृत, तक्र इत्यादि अनेक है, इनि अपने परिणामनि बिना गोरस जुदा न पाइए जहॉजु परिणाम नाही तहाँ गोरसकी सत्ता नाहीं तैसे ही परिणाम बिना द्रव्यकी सत्ता नाही"।

कविताका उदाहरण—

प्रलय पवन करि उठी आगि जो तास पटंतर।
वमै फुलिंग शिखा उतग पर जलै निरन्तर॥
जगत समस्त निगल्ल भस्म कर हैगी मानो।
तडतडात दव अनल ,जोर चहुँदिशा उठानो॥
सो इक छिनमै उपशमे, नामनीर तुम लेत।
होइ सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत॥

बुलाकीदास—इनका जन्म आगरामे हुआ था। आप गोयलगोत्री अग्रवाल थे। इनका व्येक 'कसावर' था। इनके पूर्वज बयाने (भरतपुर) मे रहते थे। साहु अमरसी, प्रेमचन्द्र, श्रमणदास, नन्दलाल और बुलाकीदास यह इनकी वशपरम्परा है। श्रमणदास बयाना छोडकर आगरासे आकर बस गये थे। इनके पुत्र नन्दलालको सुयोग्य देखकर पण्डित हेमराजने अपनी कन्याका विवाह उसके साथ किया था। इसका नाम जैनी या जैनुलदे था। इसी जैनीके गर्भसे बुलाकीदासका जन्म हुआ था। अपनी माताके आदेशसे कवि बुलाकीदासने सवत् १७५४ मे अपने ग्रन्थकी समाप्ति की थी। कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

सुगुनकी खानि कीधौं सुकृतकी वानि सुभ,
कीरतिकी दानि अपकीरति कृपानि है।
स्वारथ विधानि परस्वारथकी राजधानी,
रमाहूकी रानि कीधौं जैनी जिनवानि है॥
धरमधरनि भव भरम हरनि कीधौं
असरन-सरनि कीधौं जननि जहानि है।
हेम सो पन सीलसागर‥ ‥ मनि,
दुरित दरनि सुरसरिता समानि है॥

किशनसिंह—यह रामपुरके निवासी सगही कल्याणके पौत्र तथा आनन्दसिंहके पुत्र थे। इनकी खण्डेलवाल जैन जाति थी और पाटनी गोत्र था। यह रामपुर छोडकर सागानेर आकर रहने लगे थे। इन्होने सवत् १७८४ मे क्रियाकोश नामक छन्दोबद्ध ग्रन्थ रचा था, जिसकी श्लोकसख्या २९०० है। इसके अलावा भद्रबाहुचरित सवत् १७८५ और रात्रिभोजनकथा सवत् १७७३ मे छन्दोबद्ध लिखे है। इनकी कविता साधारण कोटि की है। नमूना निम्न है—

माथुर वसंतराय बोहरांको परधान,
संगही कल्याणदास पाटणी बखानिये।

रामपुर वास जाकौ सुत सुखदेव सुधी,
ताकौ सुत किस्नसिंह कवित्ताम जानिये ॥
तिहि निसिभोजन त्यजन व्रत कथा सुनी,
तांकी कीनीं चौपई सुआगम प्रमाणिये।
भूलि चूकि अक्षरधर जौ वाकौ बुधजन,
सोधि पढि वीनती हमारी मनि आनिये ॥

खड्गसेन—यह लाहौरके निवासी थे। इनके पिताका नाम लूणराज था। कविके पूर्वज पहले नारनोल्में रहा करते थे। यहींसे आकर लाहोरमें रहने लगे थे। इन्होंने नारनोल्में भी चतुर्भुज वैरागीके पास अनेक ग्रन्थोका अध्ययन किया था। इन्होंने संवत् १७१३ में त्रिलोकदर्पणकी रचना सम्पूर्ण की थी। कविता साधारण ही है। उदाहरण—

वागड देश महा विसतार, नारनोल तहाँ नगर निवास।
तहाँ कौम छत्तीसो बसे, अपणें करम तणां रस लसै ॥
श्रावक बसै परम गुणवन्त, नाम पापडीवाल वसन्त।
सब भाई मै परमित लियैं, सानू साह परमगण कियै।
जिसके दो पुत्र गुणश्वास, लूणराज ठाकुरीदास।
ठाकुरसीके सुत है तीन, तिनकौ जाणौ परम प्रवीन।
वडो पुत्र धनपाल प्रमाण, सोहिलदास महासुख जाण।

रामचन्द—इन्होंने 'सीताचरित' नामक एक विशालकाय छन्दोबद्ध चरित ग्रन्थ लिखा है, इस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या ३६०० है। यह रविषेणके पद्मपुराणके आधारपर रचा गया है। इसके रचनेका समय १७१३ है। कविता साधारण है। कविका उपनाम 'चन्द्र' आया है।

शिरोमणिदास—यह कवि पण्डित गंगादासके शिष्य थे। भट्टारक सकलकीर्तिके उपदेशसे संवत् १७३२ में धर्मसार नामक दोहा-चौपाईबद्ध ग्रन्थ सिहरोन नगरमें रचा है। इस नगरके शासक उस समय राजा

देवीसिंह थे। इस ग्रन्थमे कुल ७५५ दोहा चौपाई है। रचना स्वतन्त्र है, किसीका अनुवाद नहीं है। इनका एक अन्य ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि भी बतलाया जाता है।

मनोहरलाल या मनोहरदास—यह कवि धामपुरके निवासी थे। आगरू साहके यहाँ इनका आश्रम था। सेठके सम्बन्धमें इन्होंने मनोरंजक घटना लिखी है। सेठकी दरिद्रताके कारण वह बनारससे अयोध्या चले गये, किन्तु वहाँके सेठने सम्मान और प्रचुर सम्पत्तिके साथ वापस लौटा दिया। कविने हीरामणिके उपदेश एव आगरा निवासी सालिवाहण, हिसारके जगदत्तमिश्र तथा उसी नगरके रहनेवाले गगराज-के अनुरोधसे 'धर्मपरीक्षा' नामक ग्रन्थकी रचना सवत् १७०५ में की है। कहीं कहीं बहुत सुन्दर है। इस ग्रन्थका परिमाण ३००० पद्य है। कविने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है।

> कविता मनोहर खंडेलवाल सोनी जाति,
> मूलसंघी मूल जाको सागानेर वास है।
> कर्मके उदयतैं धामपुरमै वसन भयौ,
> सबसौं मिलाप पुनि सज्जनकौ दास है।
>
> व्याकरण छद अलंकार कछु पढ्यौ नाहिं,
> भाषा में निपुन तुच्छ बुद्धि का प्रकास है।
> बाईं दाहिनी कछू समझे संतोष लीयें,
> जिनकी दुहाई जाकें जिनही की आस है।

जयसागर—यह भट्टारक महीचन्द्रके शिष्य थे। गाधारनगरके भट्टारक श्री मल्लिभूषणकी शिष्यपरम्परासे इनका सम्बन्ध था। इन्होंने हूँवड जातिमे श्रीरामा तथा उसके पुत्रके अध्ययनार्थ 'सीताहरण' काव्यकी रचना सवत् १७३२ मे की है। कविता साधारण कोटिकी है। भाषा राजस्थानी है।

खुशालचन्द काला—यह कवि देहलीके निवासी थे। कभी-कभी यह सागानेर भी आकर रहा करते थे। इनके पिताका नाम सुन्दर और माताका नाम अभिधा था। इन्होने भट्टारक लक्ष्मीदासके पास विद्याध्ययन किया था। इन्होने हरिवंशपुराण संवत् १७८० मे, पद्मपुराण संवत् १७८३ मे, धन्यकुमार चरित्र, जम्बूचरित्र और व्रतकथाकोशकी रचना की है।

जोधराज गोदीका—यह सागानेरके निवासी है। इनके पिताका नाम अमरराज था। हरिनाम मिश्रके पास रहकर इन्होने प्रीतिकर चरित्र, कथाकोष, धर्मसरोवर, सम्यक्त्व कौमुदी, प्रवचनसार, भावदीपिका आदि रचनाएँ लिखी है। कविता इनकी साधारण कोटि की है, नमूना निम्न प्रकार है—

श्री सुखराम सकल गुण खान, बीजामत सुगछ नभ भांन।
बसवा नाम नगर सुखधाम, मूलवास जानौ अभिराम॥
अन्नोदकके जोग बसाय, बसुवा तजै भरतपुर आय।
जिन मन्दिरमें कियो निवास, मूलवास जानौ अभिराम॥

लब्धरुचि—पुरानी हिन्दीकी शैलीमे रचना करनेवाले कवि लब्धरुचि है। इन्होने संवत् १७१३ मे चन्दननृपरास नामक ग्रन्थ लिखा है। इनकी भाषापर गुजरातीका भी पर्याप्त प्रभाव है।

लोहट—कवि लोहटके पिताका नाम धर्म था। यह बघेरवाल थे। यह सबसे छोटे थे। हींग और सुन्दर इनके बडे भाई थे। पहले यह साभरमे रहते थे और फिर बून्दीमे आकर रहने लगे थे। कविके समयमे राव भावसिंहका राज्य था। इन्होने बून्दी नगर एव वहाँके राजवंशका वर्णन किया है। इन्होने यशोधर चरितका पद्यानुवाद संवत् १७२१ मे समाप्त किया है।

ब्रह्मरायमल—यह मुनि अनन्तकीर्त्तिके शिष्य थे। जयपुर राज्यके निवासी थे। इन्होने शसोरगढ, रणथम्भोर एव सागानेर आदि

ऐसे पुरुष महन्त बुद्धिका धारक ईकाल विषे होना दुर्लभ है ताते यासू मिले सर्व सन्देह दूरि होय है। घणी लिखवा करि कहा आपणां हेतका वांछीक पुरुष शीघ्र आप यांसू मिलाप करो"।

पण्डितजी जैसे महान् विद्वान् थे, वैसे स्वभावके बडे नम्र थे। अहंकार उन्हे छू तक नही गया था। इन्हे एक दार्शनिकका मस्तिष्क, दयालुका हृदय, साधुका जीवन और सैनिककी दृढता मिली थी। इनकी वाणीमे इतना आकर्षण था कि नित्य सहस्रो व्यक्ति इनका शास्त्रप्रवचन सुननेके लिए एकत्रित होते थे। गृहस्थ होकर भी गृहस्थीमे अनुरक्त नहीं रहे। अपनी साधारण आजीविका कर लेनेके बाद आप शास्त्रचिन्तनमे रत रहते थे। इनकी प्रतिभा विलक्षण थी, इसका एक प्रमाण यही है कि आपने किसीसे बिना पढे ही कन्नड लिपिका अभ्यास कर लिया था।

इनके जन्म सवत्मे विवाद है। प० देवीदास गोधाने इनका जन्म सवत् १७९७ दिया है, पर विचार करने पर यह ठीक नहीं उतरता है। मृत्यु निश्चित रूपसे सवत् १८२४ मे हुई थी। इन्हे आततायियोका शिकार होना पडा था। इनकी विद्वत्ता, वक्तृता एव ज्ञानकी महत्ताके कारण जयपुर राज्यके कतिपय ईर्ष्यालुओने इनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा था। फलत. राजाने सभी जैनोको कैद करवाया और षड्यन्त्रकारियोके निर्देशानुसार इनके कतल करनेका आदेश दिया। इस घटनाका निरूपण कवि वखतरामने अपने बुद्धिविलासमे निम्न प्रकार किया है—

तब ब्राह्मणनु मतो यह कियो, शिव उठान को टोना दियो।
तामे सबे श्रावगी कैद, करिके दंड किए नृप फंद।
गुर तेरह पंथिनु कौ भ्रमी, टोडरमल नाम साहिमी।
ताहि भूप मार्यौ पलमाहिं, गाड्यो मद्धि गंदिगो ताहि॥

पण्डितजीकी कुल ११ रचनाएँ है, इनमे सात टीकाग्रन्थ, एक स्वतन्त्र-ग्रन्थ, एक आध्यात्मिकपत्र, एक अर्थ सदृष्टि और एक भाषा पूजा।

निम्न ग्रन्थोकी टीकाएँ लिखी है। ये इस युगके सबसे बडे टीकाकार, सिद्धान्तमर्मज्ञ और अलौकिक विद्वान् थे।

गोम्मटसार [जीवकाण्ड]—सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका। यह सवत् १८१५ मे पूर्ण हुई।

गोम्मटसार [कर्मकाण्ड] ,,

लब्धिसार— ,, यह टीका सवत् १८१८ मे पूर्ण हुई।

क्षपणासार—वचनिका सरस है।

त्रिलोकसार—इस टीकामे गणितकी अनेक उपयोगी और विद्वत्ता-पूर्ण चर्चाएँ की गयी है।

आत्मानुशासन—यह आध्यात्मिक सरस सस्कृत ग्रन्थ है, इसकी वचनिका सस्कृत टीकाके आधार पर है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय—इस ग्रन्थकी टीका अधूरी ही रह गयी।

अर्थसंदृष्टि—इसे पडितजीने बडे परिश्रम और साधनासे लिखा है। गोम्मटसारादि सिद्धान्त ग्रन्थोका अध्ययन कितना विशाल था, यह इससे स्पष्ट होता है।

आध्यात्मिकपत्र—यह रचना रहस्य पूर्ण चिट्ठीके नामसे प्रसिद्ध है और वि० स० १८११ मे लिखी गयी है। यह एक आध्यात्मिक रचना है।

गोम्मटसारपूजा—गोम्मटसारकी टीकाके उपरान्त इस पूजाकी रचना की गयी है।

मोक्षमार्गप्रकाश—यह एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक और आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इसमे नौ अध्याय है। जैनागमका सार रूप है। एक ग्रन्थके स्वाध्यायसे ही बहुत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

टीकाकारके अतिरिक्त पडितजी कवि भी थे। ग्रन्थोके अन्तमे जो प्रशस्तियाँ दी है, उनसे इनके कविहृदयका भी पता लग जाता है। लब्धिसारकी टीकाके अन्तमे अपना परिचय देते हुए लिखते हैं—

मै हौं जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरो;
लग्यो है अनादि ते कलंक कर्म मल को।
वाही को निमित्त पाय रागादिक भाव भए,
भयो है शरीरको मिलाप जैसे खलको॥
रागादिक भावनको पायके निमित्त पुनि,
होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको।
ऐसे ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग,
बने तो बने यहाँ उपाय निज थलको॥

पं० जयचन्द—श्री प० टोडरमलजीके समकालीन विद्वानोमे प० जयचन्दजी छावडाका नाम भी आदरके साथ लिया जाता है। आप भी जयपुरके निवासी थे। प्रमेयरत्नमालाकी वचनिकामे लिखा है—

देश ढुढांहर जयपुर जहाँ, सुवस बसै नहि दुःखी तहाँ।
नृप जगतेश नीति बलवान, ताके बडे-बडे परधान॥
प्रजा सुखी तिनकै परताप, काहूकैं न वृथा संताप।
अपने अपने मत सब चलै, जैन धर्महू अधिको भलैं॥
तामे तेरह पंथ सुपंथ, शैली बडी गुनी गुन ग्रन्थ।
तामे मै जयचन्द्र सुनाम, वैश्य छावडा कहै सुगाम॥

प० जयचन्द्रजी बडे ही निरभिमानी, विद्वान् और कवि थे। इनकी स० १८७० की लिखी हुई एक पद्यात्मक चिट्ठी वृन्दावनविलासमे प्रकाशित है। इससे इनकी प्रतिभाका सहज ही परिज्ञान किया जा सकता है। यह भी टोडरमलजीके समान सस्कृत और प्राकृत भाषाके विद्वान् थे। न्याय, अध्यात्म और साहित्य विपयपर इनका अपूर्व अधिकार था। इनकी निम्न १३ वचनिकाएँ उपलब्ध है—

१ सर्वार्थसिद्धि वि० स० १८६१
२ प्रमेयरत्नमाला ,, १८६३

३ द्रव्यसंग्रहवचनिका ,, १८६३
४ आत्मख्यातिसमयसार ,, १८६४
५ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ,, १८६६
६ अष्टपाहुड ,, १८६७
७ ज्ञानार्णव , १८६९
८ भक्तामरस्तोत्र ,, १८७०
९ आप्तमीमांसा ,, १८८६
१० सामायिक पाठ
११ पत्रपरीक्षा
१२ मतसमुच्चय
१३ चन्द्रप्रभ द्वितीय सर्ग मात्र

भूधरमिश्र—यह कवि आगरेके निकट शाहगञ्जमें रहते थे। जातिके ब्राह्मण थे। इनके गुरुका नाम पण्डित रंगनाथ था। पुरुषार्थ-सिद्ध्युपायके अध्ययनसे आपको जैनधर्मकी रुचि उत्पन्न हुई थी। रंग-नाथसे अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। पुरुषार्थसिद्ध्युपायपर इनकी एक विशद टीका है। इसमें अनेक जैन ग्रन्थोंके प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। यह टीका संवत् १८८१ की भाद्रकृष्णा दशमीको समाप्त हुई थी। चर्चासमाधान नामक एक अन्य ग्रन्थ भी इनके द्वारा लिखा हुआ मिलता है। इनकी कविताका नमूना निम्न है—

नमों आदि करता पुरुष, आदिनाथ अरहंत।
द्विविध धर्मदातार धुर, महिमा अतुल अनन्त॥
स्वर्ग-भूमि-पातालपति, जपत निरन्तर नाम।
जा प्रभुके जस हंसकौं, जग पिंजर विश्राम॥

दीपचन्द काशलीवाल—यह सांगानेरके निवासी थे, पर पीछे आमेर आकर रहने लगे थे। इनका समय अनुमानतः १८वीं शतीका

उत्तरार्ध है। इनका अध्यात्मज्ञान एव कवित्वशक्ति उच्चकोटिकी थी। यद्यपि इनकी भाषा ढूँढारी है पर टोडरमल, जयचन्द्र आदि विद्वानोकी भाषाकी अपेक्षा सरस और सरल है। अनेक स्थलोपर भाषाकी तोड-मरोड भी पायी जाती है। चिद्विलास, आत्मावलोकन, गुणस्थानभेद, अनुभवप्रकाश, भावदीपिका एव परमात्मपुराण आदि गद्यमे तथा अध्यात्मपच्चीसी, द्वादशानुप्रेक्षा, ज्ञानदर्पण, स्वरूपानन्द, उपदेशसिद्धान्त आदि पद्यमे है। परमात्मपुराण मौलिक है, इसमे ग्रन्थकारकी कल्पना और प्रतिभाका सर्वत्र प्रयोग दिखलाई पडता है। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजीने इनके आत्मावलोकनका उद्धरण अपनी रहस्यपूर्ण चिट्ठी मे दिया है।

"ज्ञान अनन्तशक्ति स्वसवेदरूप धरे लोकालोकका जाननहार अनन्त गुणकौं जानैं। सतपर जाय सत्वीर्य, सत् प्रमेय, सत् अनन्तगुणके अनन्त सत् जामे अनन्त महिमा निधि ज्ञानरूप ज्ञानपरणति ज्ञाननारी ज्ञानसों मिलि परणति ज्ञानका अंग-अंग मिलते है ज्ञानका रसास्वाद परणति ज्ञानको ले ज्ञान परणतिका विलास करै। जाननरूप उपयोग चेतना ज्ञानकी परणति प्रकट करै। जो परणति नारीका विलास न होता तो ज्ञान अपने जानन लक्षणकौ यथारथ न राखि सकता"।

—परमात्मपुराण

कविताका उदाहरण—

करम कलोलन की उठत झकोर भारी,
यातैं अविकारीको न करत उपाव है।
कहुँ क्रोध करै कहुँ महा अभिमान करैं,
कहुँ माया पगि लग्यो लोभ दरयाव है॥
कहुँ कामवशि चाहि करैं अति कामनीकी,
कहुँ मोह धारणा तैं होत मिथ्याभाव है।

ऐसे तो अनादि लीनो स्वपर पिछानि अब,
सहज समाधि में स्वरूप दरसाव है ॥

—उपदेशसिद्धान्तरत्न

पं० टाल्लूराम—यह माधवराजपुर निवासी अग्रवाल थे। इन्होंने संवत् १८६७ में गुरूपदेश श्रावकाचार छन्दोबद्ध, संवत् १८७१ में सम्यक्त्वप्रकाश और अनेक पूजा ग्रन्थोंकी रचना की है। यह अच्छे कवि थे। दोहा, चौपाई, सवैया, पद्धरि, सोरठा, अडिल्ल, कुण्डलिया आदि विविध छन्दोंके प्रयोगमें यह कुशल हैं। एक नमूना देखिए—

जिनके सुमति जागी, भोग सों भयो विरागी,
परसङ्ग त्यागी, जो पुरुष त्रिभुवन में।
रागादि भावन सों जिनकी रहन न्यारी,
कबहूँ न भजन रहें धाम धन में ॥
जो सदैव आपको विचारें सब सुधा,
तिनके विकलता न कापें कहू मनमें।
तेई मोखमारगके साधक कहावे जीव,
भावे रहो मन्दिरमें भावे रहो वन में ॥

भारामल—कवि भारामल फर्रुखाबादके निवासी सिंगई परशुराम के पुत्र थे और इनकी जाति खरौआ थी। इन्होंने भिण्ड नगरमें रहकर संवत् १८१३ में चारुचरित्रकी रचना की थी। सप्तव्यसनचरित्र, दानकथा, शीलकथा और रात्रिभोजनकथा भी इनकी छन्दोबद्ध रचनाएँ है। कविता साधारण कोटिकी है।

बखतराम—कवि बखतराम जयपुर लश्करके निवासी थे। इनके चार पुत्र थे—जीवनराम, सेवाराम, खुशालचन्द्र और गुमानीराम। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दीका द्वितीय पाद है। इन्होंने मिथ्यात्व-खण्डन और बुद्धिविलास नामक दो ग्रन्थ रचे हैं। बुद्धिविलासके

आरम्भमे कविने जयपुरके राजवशका इतिहास लिखा है। सवत् ११९१ मे मुसलमानोने जयपुरमे राज्य किया है। इसके पूर्वके कई हिन्दू राजवशोकी नामावली दी है। इस ग्रन्थका वर्ण्य विषय विविध धार्मिक विषय, सघ, दिगम्बर पट्टावली, भट्टारकों तथा खण्डेल्वाल जातिकी उत्पत्ति आदि है। इस ग्रन्थकी समाप्ति कविवरने मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी सवत् १८२७ मे की है। कविताका नमूना निम्न है—कवि राजमहलका वर्णन करता हुआ कहता है —

अंगन फरि केल परवात, मनु रचे विरंचि जु करि समान।
है आव सलिल सा तिंह बनाय, तँह प्रगट परस प्रतिबिंब आय॥
कवहूँ मणि मन्दिर माँझि जाय, तिय दूजी लखि प्यारी रिसाय।
तव मानवती लखि प्रिय हसाय, कर जोरि जोर लेहै बनाय॥

चिदानन्द—यह निःस्पृहयोगी और आध्यात्मिक सन्त थे। स्वर-शास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे। स्वरोदय नामक एक रचना इनकी स्वरज्ञान पर उपलब्ध है। यह सवत् १९०५ तक जीवित रहे थे। इनकी कविता सरस और अनुभव पूर्ण है। इनकी कविताका नमूना निम्न है।

जो लौ तत्त्व न सूझ पडै रे
तौ लौ मूढ भरमवश भूल्यौ, मत ममता गहि जगसौ लडैरे॥
आकर रोग शुभ कंप अशुभ लख, भवसागर इण भाँति सडै रे।
धान काज जिम मूरख खितहड, ऊखर भूमि को खेत खडै रे॥
उचित रीत ओ लख विन चेतन, निश दिन खोटो घाट घडै रे।
मस्तक मुकुट उचित मणि अनुपम, पग भूषण अज्ञान जडै रे॥
कुमतावश मन वक्र तुरग जिम, गहि विकल्प मग माहिं अडै रे।
'चिदानन्द' निजरूप मगन भया, तव कुतर्क तोहि नाहि गडै रे॥

रंगविजय—यह कवि तपागच्छके थे। इनके गुरुका नाम अमृत-विजय था। आप आध्यात्मिक और स्तुतिपरक पद्यरचनामे प्रवीण हैं।

नेमिनाथ और राजमतिको लक्ष्यकर सरस शृंगारिक पद रचे है। कविता चुभती हुई है। निम्नपद पठनीय है—

आवन देरी या होरी।
चन्द्रमुखी राजुल सौं जंपत, ल्याउँ मनाय पकर वरजोरी॥
फागुन के दिन दूर नहीं अब, कहा सोचत तू जियमें भोरी॥
बाँह पकर राहा जो कहाबूँ, छाँडूँ ना मुख माडूँ रोरी॥
सज शृंगार सकल जदुवनिता, अबीर गुलाल लेइ भर झोरी॥
नेमीसर संग खेलौ खिलौना, चग मृदग डफ ताल टकोरी॥
है प्रभु समुद्रविजै के छोना, तू है उग्रसेन की छोरी॥
'रंग' कहै अमृत पद दायक, चिरजीवहु या जुग जुग जोरी॥

टेकचन्द—हिन्दीके वचनिकाकारोमे इनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। टीकाकार होनेके साथ यह कवि भी हैं। कथाकोश छन्दोबद्ध, बुधप्रकाश छन्दोबद्ध तथा कई पूजाएँ पद्यबद्ध हैं। वचनिकाओंमे तत्त्वार्थकी श्रुतसागरी टीकाकी वचनिका सवत् १८३७ मे और सुदृष्टितरंगिणीकी वचनिका सवत् १८३८ मे लिखी गयी है। षट्पाहुडकी वचनिका भी इनकी हैं। कविता इनकी साधारण ही है। गद्यका रूप भी ढूँढारी है।

नथमल बिलाला—यह कवि मूलत. आगराके निवासी थे, पर बादमे भरतपुर और अन्तमे हीरापुर आकर रहने लगे थे। इनके पिताका नाम शोभाचन्द था। इन्होंने भरतपुरमे सुखरामकी सहायतासे सिद्धान्तसारदीपकका पद्यानुवाद सवत् १८२४ मे लिखा है। यह ग्रन्थ विनालकाय है, श्लोक सख्या ७५०० है। भक्तामरकी भाषा हीरापुरमे पण्डित लालचन्दजीकी सहायतासे की थी। इनके अतिरिक्त जिनगुणविलास, नागकुमारचरित, जीवन्धर चरित और जम्बूस्वामी चरित भी इन्हींकी रचनाएँ है। इनका गद्य प० टेकचन्दजीके गद्यकी अपेक्षा कुछ परिष्कृत है। कविताके क्षेत्रमे साधारण है।

पण्डित सदासुखदास—विक्रमकी बीसवीं शतीके विद्वानोंमें पण्डित सदासुखदासका नाम प्रसिद्ध है। यह जयपुरके निवासी थे। इनके पिताका नाम दुलीचन्द और गोत्रका नाम कासलीवाल था। यह डेडराज वंशमें उत्पन्न हुए थे। अर्थप्रकाशिकाकी वचनिकामें अपना परिचय देते हुए लिखा है—

डेडराज के वंश माहिं इक किंचित् ज्ञाता।
दुलीचंदका पुत्र कासलीवाल विख्याता॥
नाम सदासुख कहैं आतमसुखका बहु इच्छुक।
सो जिनवाणी प्रसाद विषयतैं भये निरिच्छुक॥

पण्डित सदासुखदासजी बड़े ही अध्ययनशील थे। आप सदाचारी, आत्मनिर्भय, अध्यात्मरसिक और धार्मिक लगनके व्यक्ति थे। सन्तोष आपमें कूट-कूटकर भरा था। आजीविकाके लिए थोड़ा-सा कार्य कर लेनेके उपरान्त आप अध्ययन और चिन्तनमें रत रहते थे। पण्डितजीके गुरु प० मन्नालालजी और प्रगुरु पण्डित जयचन्दजी छावड़ा थे। आपका ज्ञान भी अनुभवके साथ साथ वृद्धिगत होता गया। यद्यपि आप बीसपन्थी आम्नायके अनुयायी थे, पर तेरहपन्थी गुरुओंके प्रभावके कारण आप तेरहपन्थको भी पुष्ट करते थे। वस्तुतः आप समभावी थे, किसी पन्थविशेषका मोह आपमें नहीं था। आपके शिष्योंमें पण्डित पन्नालाल संघी, नाथूराम दोशी और पण्डित पारसदास निगोत्या प्रधान हैं। पारसदासने 'ज्ञानसूर्योदय नाटक' की टीकामें आपका परिचय देते हुए आपके स्वभाव और गुणोंपर अच्छा प्रकाश डाला है। यहाँ कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं।

लौकिक प्रवीना तेरापंथ माँहि लीना,
मिथ्याबुद्धि करि छीना जिन आतमगुण चीना है।
पढ़ैं ओ पढ़ावैं मिथ्या अलटकूँ कढ़ावैं,
ज्ञानदान देय जिन मारग बढ़ावैं है॥

दीसैं घरवासी रहे घरहूतैं उदासी,
जिन मारग प्रकाशी जग कीरत जगभासी है।
कहाँ लौ कहीजे गुणसागर सुखदास जूके,
ज्ञानामृत पीय बहु मिथ्याबुद्धि नासी है॥

श्री पण्डित सदासुखदासके गार्हस्थ्य जीवनके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त नही है। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि पण्डितजीको एक ही पुत्र था, जिसका नाम गणेशीलाल था। यह पुत्र भी पिताके अनुरूप होनहार और विद्वान् था। पर दुर्भाग्यवश बीस वर्षकी अवस्थामें ही इकलौते पुत्रका वियोग हो जानेसे पण्डितजी पर विपत्तिका पहाड टूट पडा। ससारी होनेके कारण पण्डितजी भी इस आघातसे विचलित-से हो गये। फलतः अजमेर निवासी स्वनामधन्य सेठ मूलचन्दजी सोनीने इन्हे जयपुरसे अजमेर बुला लिया। यहॉ आने पर इनके दुःखका उफान कुछ शान्त हुआ।

पण्डित सदासुखजीकी भाषा ढूँढारी होने पर भी पण्डित टोडरमलजी और पण्डित जयचन्दजीकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत और खडी बोलीके निकट है। भगवती आराधनाकी प्रशस्तिकी निम्न पक्तियॉ दर्शनीय हैं।

मेरा हित होने को और, दीसै नाहिं जगत मे ठौर।
यातैं भगवति शरण जु गही, मरण आराधन पाऊँ सही॥
हे भगवति तेरे परसाद, मरणसमै मति होहु विषाद।
पच परमगुरु पद करि ढोक, सयम सहित लहू परलोक॥

इनका समाधिमरण सवत् १९२३ मे हुआ था।

पं० भागचन्द—बीसवीं शताब्दीके गण्यमान्य विद्वानोंमें पं० भागचन्दजीका स्थान है। आप सस्कृत और प्राकृत भाषाके साथ हिन्दी भाषाके भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। ग्वालियरके अन्तर्गत ईसागढ़के निवासी थे। सस्कृतमें आपने महावीराष्टक स्तोत्र रचा है। अमितगति श्रावकाचार,

उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला, प्रमाणपरीक्षा, नेमिनाथपुराण और ज्ञान-सूर्योदयनाटककी वचनिकाएं लिखी हैं। आप ओसवाल जातिके दिगम्बर मतानुयायी थे। इन्होंने पद भी रचे हैं। हिन्दी कविता इनकी उत्तम है। पदोंमें रस और अनुभूति छलछलाती है।

कवि दौलतराम—कवि दौलतराम हिन्दीके उन लब्धप्रतिष्ठ कवियोंमें परिगणित हैं, जिनके कारण माँ भारतीका मस्तक उन्नत हुआ है। यह हाथरसके रहनेवाले थे और पल्लीवाल जातिके थे। इनका गोत्र गंगीटीवाल था, पर प्रायः लोग इन्हें फतेहपुरी कहा करते थे। इनके पिताका नाम टोडरमल था। इनका जन्म विक्रम संवत् १८५५ या १८५६ के बीचमें हुआ है।

कविके पिता दो भाई थे, छोटे भाईका नाम चुन्नीलाल था। हाथरसमें ही दोनों भाई कपड़ेका व्यापार करते थे। कवि दौलतरामके श्वसुरका नाम चिन्तामणि था, यह अलीगढ़के निवासी थे। कविके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यह छींट छापनेका काम करते थे। जिस समय छींट या थान छापनेके लिए बैठते थे, उस समय चौकीपर गोम्मटसार, त्रिलोकसार और आत्मानुशासन ग्रन्थोंको विराजमान कर लेते थे और छापनेके कामके साथ साथ ७०-८० श्लोक या गाथाएँ भी कण्ठाग्र कर लेते थे।

संवत् १८८२ में मथुरानिवासी सेठ मनीरामजी पं० चम्पालालजीके साथ हाथरस आये और वहाँ उक्त पंडितजीको गोम्मटसारका स्वाध्याय करते देखकर बहुत प्रसन्न हुए तथा अपने साथ मथुरा लिवा ले गये। वहाँ कुछ दिन तक रहनेके उपरान्त आप सासनी या लश्करमें आकर रहने लगे। आपके दो पुत्र हुए, बड़े पुत्रका नाम टीकाराम है, इनके वंशज आजकल भी लश्करमें निवास करते हैं।

इनकी दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं—छहढाला और पदसंग्रह। छहढालाने गागरमें सागर भरा दिया है। भाव, भाषा और अनुभूतिकी दृष्टिसे यह रचना बेजोड़ है।

कविको अपनी मृत्युका परिज्ञान अपने स्वर्गवासके छः दिन पहले ही हो गया था। अतः उन्होंने अपने समस्त कुटुम्बियोंको एकत्रित कर कहा— "आजसे छठे दिन मध्याह्नके पश्चात् मैं इस शरीरसे निकलकर अन्य शरीर धारण करूँगा"। सबसे क्षमा याचना कर संवत् १९२३ मार्गशीर्ष कृष्ण अमावास्याको मध्याह्नमें देहलीमें इन्होंने प्राण त्याग किया था।

कविवरके समकालीन विद्वानोंमें रत्नकरण्डके वचनिकाके कर्त्ता पं० सदासुख, बुधजनविलासके कर्त्ता बुधजन, तीस-चौबीसीके कर्त्ता वृन्दावन, चन्द्रप्रभ काव्यकी वचनिकाके कर्त्ता तनसुखदास, प्रसिद्ध भजन रचयिता भागचन्द और पं० बखतावरमल आदि प्रमुख हैं।

पं० जगमोहनदास और पं० परमेष्ठी सहाय—यह निस्संकोच स्वीकार किया जा सकता है कि हिन्दी जैनसाहित्यकी श्रीवृद्धिमें खण्डेलवाल और अग्रवाल जातिके विद्वानोंका प्रमुख भाग रहा है। जयपुर, आगरा, दिल्ली और ग्वालियर हिन्दी साहित्यके रचे जानेके प्रमुख स्थान हैं। आगरा सदासे अग्रवालोंका गढ़ रहा है। यहाँपर भी समय-समयपर विद्वान् होते रहे, जिन्होंने हिन्दी जैन साहित्यकी श्रीवृद्धिमें योग दिया। आरा निवासी पं० परमेष्ठी सहाय और पं० जगमोहनदासको हिन्दी जैन साहित्यके इतिहाससे पृथक् नहीं किया जा सकता है। श्री पं० परमेष्ठीसहायने 'अर्थप्रकाशिका' नामकी एक टीका जगमोहनदासकी तत्त्वार्थ विषयक जिज्ञासाकी शान्तिके लिए लिखी है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें बताया गया है—

पूरब इक गंगातट धाम, अति सुन्दर आरा तिस नाम।
तामैं जिन चैत्यालय लसैं, अग्रवाल जैनी बहु बसैं॥
बहु ज्ञाता तिन मे जु रहाय, नाम तासु परमेष्ठीसहाय।
जैनग्रन्थ रुचि बहु केरे, मिथ्या धरम न चित्त में घेरे।
सो तत्त्वार्थसूत्र की, रची वचनिका सार।
नाम जु अर्थ प्रकाशिका, गिणती पाँच हजार॥

सो भेजी जयपुर विषैं, नाम सदासुख जास ।
सो पूरण ग्यारह सहस, करि भेजी तिन पास ॥
अग्रवाल कुल श्रावक कीरतचन्द्र जु आरे माँहि सुवास ।
परमेष्ठीसहाय तिनके सुत, पिता निकट करि शास्त्राभ्यास ॥
कियो ग्रन्थ निज परहित कारण, लखि बहु रुचि जगमोहनदास ।
तत्त्वारथ अधिगमसु सदासुख, दास चहूँ दिश अर्थप्रकाश ॥

इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि प० परमेष्ठीसहायके पिताका नाम कीर्तिचन्द्र था । उन्हींके पास जैनागमका अध्ययन किया था तथा अपनी कृति अर्थप्रकाशिकाको जयपुरनिवासी प्रसिद्ध वचनिकाकार प० सदासुखजीके पास सशोधनार्थ भेजा था ।

प० जगमोहनदास अच्छे कवि थे । इनकी कविताओका एक सग्रह 'धर्मरत्नोद्योत' नामसे स्व० प० पन्नालालजी बाकलीवालके सम्पादकत्वमे प्रकाशित हो चुका है। हमारा अनुमान है कि इनका जन्म सवत् १८६५–७० होना चाहिए , क्योकि प० सदासुखजी इनके समकालीन है। और सदासुखजीका जन्म सवत् १८५२ मे हुआ था। अतएव सदासुखजीसे कुछ छोटे होनेके कारण प० जगमोहनदासका जन्म सवत् १८६५ और मृत्यु १९३५ मे हुई है। परमेष्ठीसहायने अर्थप्रकाशिकाको सवत् १९१४ मे पूर्ण किया है। धर्मरत्नोद्योतकी अन्तिम प्रशस्ति निम्न है—

"मिती कार्त्तिक कृष्ण १० संवत् १९४५ पोथी दान किया बाबू परमेष्ठीसहाय भार्या जानकी बीबी आरेके पंचायती मन्दिरजीमे पोथी धर्मरत्न ग्रन्थ" ।

कविताकी दृष्टिसे प० जगमोहनदासकी रचनामे शैथिल्य है। छन्दोभगके साथ प्रवाहका भी अभाव है , पर जैनागमका सार भाषामे अवश्य इनकी रचनामे उपलब्ध होगा । छप्पय, सवैया, दोहा, चौपाई, गीतिका आदि छन्दोका प्रयोग किया है।

जैनेन्द्रकिशोर—नाटककार और कविके रूपमे आरानिवासी बाबू जैनेन्द्रकिशोर प्रसिद्ध है। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला अष्टमी सवत् १९२८ मे हुआ था। इनके पिताका नाम बाबू नन्दकिशोर और माता-का नाम किसमिसदेवी था। यह अग्रवाल थे। आरा नागरी प्रचारिणी सभाके सस्थापक और काशी नागरी प्रचारिणी सभाके सदस्य थे। इन्होने अग्रेजी और उर्दूकी शिक्षा प्राप्त की थी। इनमे कविताकी शक्ति जन्म-जात थी। नौ वर्षकी अवस्थामे इन्होने सम्मेदशिखरकी वर्णनात्मक स्तुति लिखी थी। इन्होने अपने साहित्यगुरु श्री किशोरीलाल गोस्वामीकी प्रेरणासे ही 'भारतवर्ष' पत्रिकामे सर्वप्रथम 'वेश्याविहार' नामक नाटक प्रकाशित कराया। उपन्यास और नाटक रचनेकी योग्यता एव उर्दू शायरीकी प्रतिभा इन दोनोका मणिकाञ्चन सयोग हिन्दी कविताके साथ इनके व्यक्तित्वमे निहित था। इनके उर्दू शायरीके गुरु मौलवी 'फजल' थे। मुशायरोमे इनकी उर्दू शायरीकी धूम मच जाती थी। इन्होने लेखक और कविके अतिरिक्त भी अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभाके कारण 'जैन गजट' और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सुयोग्य सपादक, स्याद्वाद विद्यालय काशीके मन्त्री, 'हिन्दी सिद्धान्त-प्रकाश'मे उर्दूका इतिहास लिखनेके पूर्ण सहयोगी एव 'जैन यग एसोशियेशन'के प्रान्तिक मन्त्री आदिके कार्य-भारका वहन बडी सफलताके साथ किया था।

इन कार्योंके अतिरिक्त आपने सन् १८९७ मे 'जैन नाटकमण्डली'की स्थापना की थी। कलिकौतुक, मनोरमा, अजना, श्रीपाल, प्रद्युम्न आदि आपके द्वारा रचित नाटक तथा सोमासती, द्रौपदी और कृपणदास आदि आपके द्वारा लिखित प्रहसनोका सुन्दर अभिनय कई बार हुआ था। उपन्यासोमे इनकी निम्न रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

१. मनोरमा २. कमलिनी ३ सुकुमाल ४ गुलेनार ५. दुर्जन ६. मनोवती।

ब्र० शीतलप्रसाद—ब्रह्मचारीजीका जन्म सन् १८७९ ई० मे

लखनऊमे हुआ था। इनके पिताका नाम मक्खनलाल और माताका नाम नारायणीदेवी था। इन्होने मैट्रिक्यूलेशनकी परीक्षा उत्तीर्ण कर एकाउण्टेण्टशिपकी परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आप अच्छी सरकारी नौकरीके पदपर प्रतिष्ठित थे। सन् १९०४ की प्लेगमे इनकी विदुषी पत्नी और छोटे भाईका स्वर्गवास हो गया। इस अन्तःवेदनाको आपने जैन ग्रन्थोके स्वाध्याय द्वारा शमन किया। समाज सेवाकी लगन तो पहलेसे ही थी, किन्तु अब निमित्त मिलते ही यह भावना और बलवती हो गयी। फलतः सन् १९०५ मे आपने सरकारी नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया और सन् १९११ मे सोलापुरमे ब्रह्मचर्य दीक्षा धारण की। जैनमित्र और वीरके सपादक वर्षोंतक रहे। आपके द्वारा विरचित और अनूदित ७७ ग्रन्थ है, जिनका विभाजन विषयोके अनुसार निम्न प्रकार है

अध्यात्मविषयक २६, जैन दार्शनिक और धार्मिक १८, नैतिक ७, अहिसाविषयक २, जीवनचरित्र ५, अन्वेषणात्मक और ऐतिहासिक ६, काव्य २, कोप १, प्रतिष्ठापाठ १ एव तारण साहित्य ९। ब्रह्मचारीजीकी विशेषताऍ श्री गोयलीयजीके निम्न उद्धरणसे अवगत की जा सकती है—

“जैनधर्मके प्रति इतनी गहरी श्रद्धा, उसके प्रसार और प्रभावनाके लिए इतना दृढप्रतिज्ञ, समाजकी स्थितिसे व्यथित होकर भारतके इस सिरेसे उस सिरेतक भूख और प्यासकी असह्य वेदनाको वश किये रातदिन जिसने इतना सुभ्रमण किया हो, भारतमे क्या कोई दूसरा व्यक्ति मिलेगा”

इनकी मृत्यु लखनऊमे ही १० फरवरी १९४२ मे हुई।

अनुक्रमणिका

लेखक एवं कवि

ग्रन्थोंकी अनुक्रमणिका